साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२३ अंक-९ ❖ पृष्ठ ८८ | बैसाख, संवत्-२०७५ | अप्रैल २०१८

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर *(US$4)*
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर *(US$45)*

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय

२०१९ के आम चुनाव की ओर ४

प्रतिस्मृति

वंदे मातरम् के उद्घोषक : बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय/ *आशारानी व्होरा* ११

कहानी

वंदनवार/ *विद्या विंदु सिंह* १३
डायल सौ नंबर/ *दया दीक्षित* १९
एक छत के नीचे/ *उषा यादव* २८
झूठा सच/ *अमिताभ शंकर राय चौधरी* ३६
फतुआ/ *परमेश चंद्र वशिष्ठ* ५८
जूते की नोक पर/ *रमाकांत शर्मा* ६८
भारत में इंडिया/ *परमात्मा स्वरूप तिवारी* ७६

आलेख

साहित्य-सृजन से राष्ट्रार्चन/ *बद्री नारायण तिवारी* १६
अकबर इलाहाबादी/ *हेरंब चतुर्वेदी* ४०
झालावाड़ की अचर्चित चित्रांकन परंपरा/ *ललित शर्मा* ६०

लघुकथा

अहंकार का आवरण/ विजयप्रकाश त्रिपाठी ३१
जीवन का गणित/ कृष्ण मनु ३५
सार्थक सोच/ कृष्ण मनु ५१

कविता

दिव्य आत्मा बेटियाँ/ प्रेमकिशोर पटाखा ५०
गुँथे फूल घुँघरू से/ *सुभाष यादव* ५९
इतनी काली सुबह न हो/ *सत्येंद्र कुमार रघुवंशी* ६५
आई बसंत की वेला है/ *वेद मित्र शुक्ल* ७५

भाषा-प्रयोग

हिंदी की प्रकृति के…/ *बदरीनाथ कपूर* २२

व्यंग्य

आम आदमी, खास आदमी/ *एम.एल. खरे* २७

ललित-निबंध

नदी और मनुष्य/ *राजीव रंजन* ३२

राम झरोखे बैठ के

अपने मोहल्ले के लोग/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४७

स्मरण

डॉ. बलदेव वंशी : बातें-मुलाकातें/ *अशोक बैरागी* ५४

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

गया था बुद्ध गया/ *ना मोगसाले* ५७

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

प्रतिभा/ *अंतोन चेखव* ६३

लोकपर्व

हमारे पुरखों का फास्ट फूड : सत्तू/ *मालती शर्मा* ६६

लोक-साहित्य

भवाई लोकनाट्य/ *बलवंत जानी* ७८

यात्रा-संस्मरण

प्रयाग से रामेश्वरम्/ *शिवमूर्ति सिंह* ७१

बाल-संसार

ओवरकोट/ *बद्री प्रसाद वर्मा अनजान* ८०

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८१
वर्ग-पहेली ८२
साहित्यिक गतिविधियाँ ८३

२०१९ के आम चुनाव की ओर

नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा और एन.डी.ए. सरकार अजेय है, ऐसे नैराश्य और हतोत्साह की भावना एवं वातावरण से मुख्य विरोधी पक्ष कांग्रेस तथा अन्य विरोधी दल क्षुब्ध थे। समझ नहीं पा रहे थे कि अपने अस्तित्व को बचाने के लिए कौन सी रणनीति अपनाई जाए। राजस्थान में लोकसभा के दो उपचुनावों अजमेर और अलवर तथा विधानसभा के एक उपचुनाव में कांग्रेस विजयी रही। ये सीटें पहले भाजपा के पास थीं। गुजरात विधानसभा चुनाव में कांग्रेस का प्रदर्शन पहले की तुलना में कहीं अच्छा रहा, इससे कांग्रेस में एक नई स्फूर्ति का संचार हुआ। उन्हें आशा बँधी कि राहुल गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस फिर सत्ता में आ सकती है। लेकिन त्रिपुरा, मेघालय तथा नागालैंड, उत्तर-पूर्व के इन प्रदेशों में भाजपा अथवा भाजपा समर्थित सरकार बनने से विपक्षी खेमे में फिर उदासी छा गई। विशेषतया त्रिपुरा में, जहाँ २० वर्ष से सी.पी.एम. की सरकार थी, भाजपा की जीत विस्मयकारी रही। सी.पी.एम. का गढ़ ध्वस्त हो गया। मेघालय कांग्रेस के हाथ से निकल गया। बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी समय-समय पर भाजपा का विकल्प बनाने की बात करती रही हैं। तेलंगाना के मुख्यमंत्री चंद्रशेखर राव ने जब तीसरे फ्रंट का सुझाव दिया, यानी भाजपा और कांग्रेस दोनों को छोड़कर सबका स्वागत किया। शीघ्र मिलकर दोनों के बीच परस्पर बातचीत करने की संभावना है।

उत्तर प्रदेश में फूलपुर और गोरखपुर में उपचुनाव हुए, क्योंकि गोरखपुर से योगी आदित्यनाथ पाँच बार लोकसभा का चुनाव जीते थे तथा फूलपुर से केशव प्रसाद मौर्य। १९१७ में भाजपा की २११ सीटों पर बड़ी जीत हुई। योगी आदित्यनाथ मुख्यमंत्री बने और मौर्य उप-मुख्यमंत्री। दोनों अब विधान परिषद् के सदस्य हैं। अतएव दोनों स्थानों पर पुन: उपचुनाव हुए। दोनों सीटों पर सपा के प्रत्याशी जीते। यह भाजपा के लिए करारा झटका है। यही नहीं, चुनाव के कुछ दिनों पहले मायावती ने घोषणा की कि बसपा सपा का समर्थन करेगी। हालाँकि उन्होंने किसी चुनावी सभा में भाग नहीं लिया। बसपा को २०१४ में लोकसभा में एक भी स्थान प्राप्त नहीं हुआ था। यह घोषणा भी उन्होंने चुनाव के चंद दिन पहले की। बसपा के कार्यकर्ता सक्रिय हो गए और यह सिद्ध हो गया कि मायावती अपने वोट ट्रांसफर करा सकती हैं।

किसी को विश्वास नहीं था कि १९९५ की घटना के बाद, जहाँ मायावती की इज्जत का सवाल था कि वह कभी सपा से हाथ नहीं मिलाएगी, दोनों में साँप और नेवले जैसी दुश्मनी थी। तब भाजपा के कुछ लोगों ने मायावती को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया था, उन दिनों मुलायम सिंह सपा के नेता और उ.प्र. के मुख्यमंत्री थे; और अब बेटा अखिलेश, जिसने 'बुआ' मायावती को मना लिया। मायावती की घोषणा के सरप्राइज एलीमेंट ने भाजपा को हतप्रभ कर दिया। भाजपा ने इस मेल-जोल को गंभीरता से नहीं लिया और उसका क्या नतीजा हो सकता है, इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। भाजपा की हार के कारणों की बाद में चर्चा करेंगे, हालाँकि अभी पार्टी को ही अपनी जाँच करनी होगी। खैर, मायावती ने अपनी घोषणा में कहा था कि यह समर्थन केवल इन उप-चुनावों तक सीमित है और २०१९ के आम चुनाव के बारे में समय आने पर निर्णय करेंगी। अब ऐसा लगता है कि मुँह में खून लग गया है। दोनों भाजपा को हराने के लिए २०१९ में भी कुछ ऐसा समझौता कर सकते हैं।

अखिलेश मायावती को धन्यवाद देने उनके निवास-स्थान पर गए और कहा जा रहा है कि दोनों के बीच इस मुद्दे पर भी बातचीत हुई। मुलायम सिंह, जो अखिलेश से अलग हो गए थे, अब सपा के पक्ष में २०१९ के आम चुनाव में हर जगह जाने को तैयार हो गए हैं। अखिलेश का कहना है कि आगे के लिए पुरानी बातों को भूल जाना पड़ता है। कांग्रेस ने भी गोरखपुर और फूलपुर में अपने प्रत्याशी खड़े किए थे, पर उनकी जमानत जब्त हो गई। कांग्रेस का उत्तर प्रदेश में कोई वजूद नहीं है, न संगठन और न कोई विश्वसनीय नेता। २०१७ के दो युवा भाई एक साथ न हो सके, हालाँकि अखिलेश ने राहुल से अपने प्रत्याशियों को वापस लेने को कहा था। इधर सोनिया गांधी ने संसद् के दूसरे भाग के पहले विपक्ष के नेताओं को अपने यहाँ रात्रि-भोजन के लिए आमंत्रित किया और भाजपा को २०१९ के आम चुनाव में हराने के लिए एक सम्मिलित रणनीति बनाई। ममता, मायावती और अखिलेश स्वयं इसमें शामिल न हो सके, पर उनके प्रतिनिधि वहाँ मौजूद थे। इस भोज में करीब छोटे-बड़े बीस दलों ने शिरकत की।

एन.सी.पी. के शरद पवार भी वहाँ उपस्थित थे। राहुल से उनकी बातचीत होती रही, बाद में भी राहुल उनसे मिलने गए। वास्तव में शरद पवार इन सबसे वरिष्ठ एवं अनुभवी नेता हैं। राजनीति के मँजे हुए खिलाड़ी हैं। वे तीन दशक से प्रधानमंत्री का पद हाथ लगने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर अभी तक यह नहीं हो सका है। उन्हें यह आखिरी अवसर नजर आ रहा है। संविधान बचाने के नाम पर उन्होंने अन्य विरोधी दलों को निमंत्रित किया था, पर उनका लक्ष्य एक ही है। यदि यह संभव न हो

तो महाराष्ट्र ही उनके हाथ में आ जाए। पर वहाँ की सत्ता बिना कांग्रेस के तालमेल के संभव नहीं है। आगे देखना है कि इनके बीच किस प्रकार का समझौता होता है। वे शिवसेना के दोनों गुटों से संपर्क बनाए हुए हैं। राज ठाकरे ने पूना में उनका लंबा साक्षात्कार किया। अब गुड़ी पड़वा के अवसर पर शरद पवार को अपने आयोजन, यानी एक बड़ी सभा में निमंत्रित करने गए थे।

इधर भाजपा के सहयोगियों में सरकार चलाने को लेकर कुछ असंतोष झलकता है। इनका कहना है कि हमारी बात नहीं सुनी जाती है, हमसे अहम मुद्दों पर बात नहीं होती है और जो सम्मान सहयोगी दलों का होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। वाजपेयी सरकार की तरह इस समय एनडीए में कोई कोऑर्डिनेटर नहीं है। शिवसेना ने तो पहले ही कह दिया था कि २०१९ का आम चुनाव और अगले विधानसभा चुनाव अपने बलबूते पर लड़ेंगे, भाजपा के साथ मिलकर नहीं।

अकाली दल भाजपा के साथ है, पर वह भी कभी-कभी अपनी माँगें पेश करता है। बिहार में नीतीश कुमार के जेडीयू से माझी ने अपने दल को अलग कर लिया है। महादलितवाली स्ट्रैटेजी कहाँ तक प्रभावी होगी, कहा नहीं जा सकता है। इसके अलावा लोकसभा की सीट जेडीयू के हाथ से निकल गई। इससे नीतीश का कद कुछ छोटा हो गया। लालू के जेल में रहने पर भी राजद काफी मजबूत है। बिहार में यादवों के दिमाग में यह बात घर कर गई है कि भ्रष्टाचार के मामलों में केवल पिछड़े लोग ही पकड़े जाते हैं, उच्च वर्गवाले नहीं। लालू के पुत्र तेज प्रसाद यादव का नेतृत्व असरदार रहा। बिहार का यह महागठबंधन कारगर होता है या नहीं, यह देखने की बात है। वैसे इस समय २१ राज्यों में एनडीए शासन कर रहा है। आंध्र प्रदेश में चंद्रबाबू नायडू की टीडीपी भी अलग हो गई है, क्योंकि मोदी सरकार ने आंध्र प्रदेश को विशेष राज्य का दर्जा नहीं दिया है। उन्होंने अपने दोनों मंत्रियों को मंत्रिमंडल से इस्तीफा दिलवा दिया। भाजपा के मंत्रियों ने भी आंध्र मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया है। विशेष राज्य का दर्जा देने की माँग केवल बहाना है।

वाई.एस.आर. कांग्रेस आंध्र के हितों की रक्षा के नाम पर अधिक जनप्रिय हो रही थी, तो नायडू ने अपनी लोकप्रियता बचाने के लिए यह चाल चली। वाई.एस.आर. कांग्रेस ने कहा कि वे मोदी सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाएँगे। नायडू ने पहले तो कहा कि वे प्रस्ताव का समर्थन करेंगे, परंतु फिर अपना अलग प्रस्ताव लाने की बात कही। बीजेडी ने अपने पत्ते नहीं खोले हैं। शायद वह अविश्वास प्रस्ताव में वोटिंग ही न करे। वैसे मोदी सरकार को कोई खतरा नहीं दिखता है, किंतु इतने बड़े बहुमत के होते हुए अविश्वास प्रस्ताव के आने से सरकार की छवि कुछ धूमिल तो होगी ही। इससे जनता में अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो जाती है। देश देवगौड़ा, गुजराल और चंद्रशेखर की सरकारों को देख चुका है। विकास के लिए और अंतरराष्ट्रीय जगत् में समभाव के लिए देश स्थिरता चाहता है। अन्य अनेक पहलू हैं, पर उनकी चर्चा संभव नहीं है।

कांग्रेस में जो नई ऊर्जा पैदा हुई है, इसी कारण इंडिया टूडे के बॉम्ब एन्क्लेव में सोनिया गांधी ने बड़े जोश से कहा कि २०१९ में 'अच्छे दिन' का नारा कांग्रेस के लिए वही काम करेगा, जो 'शाइनिंग इंडिया' या 'उज्ज्वल भारत' ने २००४ में किया था। १६, १७ और १८ फरवरी को कांग्रेस के महाधिवेशन में राहुल गांधी के कांग्रेस अध्यक्ष बनने की औपचारिकताएँ पूरी की गईं। स्वराज-प्राप्ति के पहले मोतीलाल नेहरू और उनके बाद पुत्र जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष बने। इंदिरा गांधी स्टेडियम में वर्षों बाद वही दृश्य देखा गया, जब सोनिया गांधी के बाद उनके पुत्र राहुल कांग्रेस के अध्यक्ष बने; इस आशा और आकांक्षा के साथ कि २०१९ में वे देश के प्रधानमंत्री बनेंगे। संयुक्त प्रगतिशील संगठन के अध्यक्ष ने जोशीला भाषण दिया और कहा कि मोदी के सबका विकास, सबके साथ, न खाएँगे और न खाने देंगे आदि नारे सत्ता हथियाने के हथकंडे थे। उनको ड्रामाबाज की संज्ञा दी गई। बदले की भावना से प्रेरित अहंकारी आदि कहा गया। भाषण में आगे कहा गया कि कांग्रेस न कभी पहले झुकी है और न झुकेगी। समान विचारधारावाले दलों से गठबंधन करेंगे, ताकि भाजपा को हराया जा सके। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल ने कहा कि कांग्रेस ही देश को आगे ले जा सकती है और देश में एकता बनाए रख सकती है। जनता ऊब चुकी है। किसानों और युवाओं के लिए मोदी कोई रास्ता नहीं निकाल पाए हैं। राहुल ने यह भी कहा कि युवाओं को प्राथमिकता मिलेगी, किंतु वे अनुभवी नेताओं को साथ लेकर चलेंगे। इस महाधिवेशन में तीन प्रस्ताव पास हुए। जब कांग्रेस सत्ता में होगी तो किसानों के कर्जे माफ होंगे। ई.वी.एम. की जगह मतपत्रों से चुनाव की माँग की गई, यद्यपि २००४ और २००९ में उसी के जरिए उनकी जीत हुई थी। साथ ही लोकसभा और विधानसभा के चुनाव एक साथ कराने के प्रस्ताव का विरोध किया। अन्य लोकलुभावने वादे किए गए। संगठन को मजबूत और सक्रिय करने की बात कही गई। कर्नाटक, जहाँ चुनाव होनेवाले हैं, पूरे सत्र में छाया रहा। देखना है कि अब किस प्रकार की व्यावहारिक रणनीति बनाई जाती है।

जैसाकि हम इस स्तंभ में पहले ही चर्चा कर चुके हैं, २०१९ का चुनाव भाजपा के लिए सहज और सरल नहीं होगा। इस समय संगठन और सरकार दोनों को आत्ममंथन करना होगा। कांग्रेस और अन्य विरोधी दल सोच रहे हैं कि राजस्थान और मध्य प्रदेश में सत्ता पके हुए फल की तरह है, जिसे वे तुरंत प्राप्त कर सकते हैं। इस समय भाजपा सरकार को निष्पक्ष होकर उन खामियों पर ध्यान देना होगा, जिनकी वजह से उत्तर प्रदेश में योगी को हार का मुँह देखना पड़ा। आरोप और प्रत्यारोप शुरू हो गए हैं। कहा जाता है कि योगी आदित्यनाथ का तालमेल न भाजपा के कार्यकर्ताओं से है और न राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्यों से। वे अपनी वाहिनी पर विश्वास करते हैं। दूसरी तरफ कहा जा रहा है कि दिल्ली मुख्यमंत्री के सुझावों की अनदेखी कर रही है। खेदजनक है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध की बात भी गोरखपुर के संबंध में हुई। फूलपुर और गोरखपुर दोनों जगह कम वोट डाले गए, जो कि

कार्यकर्ताओं की निष्क्रियता का परिचायक है। कार्यकर्ताओं ने चुनाव में आवश्यक दिलचस्पी नहीं ली। दूसरी तरफ यह भी कहा जा रहा है कि कार्यकर्ताओं और सांसदों तथा विधायकों को खुलकर अपनी बात कहने का मौका नहीं मिलता है। उनमें बहुत खिन्नता है। यदि ऐसा है तो क्यों है, इसका निराकरण शीघ्र ही करना होगा। २०१९ की डगर कठिन और पथरीली है। यह स्पष्ट हो रहा है कि राजनीति में न कोई स्थायी मित्र होता है और न दुश्मन। नरेंद्र मोदी की साख और विश्वसनीयता अब भी सबसे ऊपर है। इसीलिए विरोधी समय-बेसमय तरह-तरह से उनकी छवि पर आक्रमण करते हैं, किंतु यदि कार्यकर्ता, विधायक और सांसद ही उदासीन रहेंगे तो ऐसे में मोदी अकेले कहाँ तक बोझ उठा सकते हैं? मोदी की नीतियाँ और कार्यक्रम सही ढंग से जनता की जानकारी में नहीं आ रहे हैं। अनुपालन में भी शिथिलता है।

एक खेदजनक प्रसंग है कि २०१८-१९ का बजट बिना किसी विचार-विमर्श या संसद् में बिना किसी बहस के पास हो गया, क्योंकि मुख्य प्रतिपक्ष और अन्य विरोधी दल संसद् की काररवाई चलने नहीं दे रहे थे। लोकसभा में तो पास हो गया, लेकिन यदि राज्यसभा में कुछ सुझाव दिए जाते हैं, तो यह सरकार पर निर्भर है कि वह माने या न माने। यह पहली बार नहीं हुआ है। दो बार पहले भी हो चुका है, पर है यह चिंताजनक। यह अवसर होता है जनता के अभाव-अभियोगों को प्रस्तुत करने का और अर्थव्यवस्था में सुधार के सुझाव देने का। कांग्रेस इस मौके का फायदा उठा सकती थी। पंजाब नेशनल बैंक में नीरव मोदी और चौकसी घोटाले के प्रारंभिक घोटालों के अतिरिक्त और भी कुछ कारनामे तथा घोटाले सामने आ रहे हैं। कानून अपना काम कर रहा है, पर बहस में प्रतिपक्ष सरकार की अन्य कमजोरियों का पर्दाफाश कर सकता था, परंतु विफल रहा। यह दृष्टिगोचर हो रहा है कि बैंकों के कर्ज देने के जो नियम हैं, उनका अरसे से उल्लंघन हो रहा है। बैंकों के अधिकारियों और कर्ज लेनेवाले व्यापारियों में साँठगाँठ है। यह भी अजीब है कि कुछ संवेदनशील पदों पर नियुक्तियों में दस-दस साल कोई परिवर्तन नहीं किए गए, अतएव घोटालों पर परदा डालना आसान हुआ। ऑडिट चाहे वह आंतरिक है अथवा बाहर की स्वतंत्र इकाई द्वारा, दोनों बिल्कुल असफल रहे अथवा वे ऑडिट भी इस गठजोड़ में शामिल रहे और हेरा-फेरी चलती रही। ऐसे में पूरी बैंकिंग व्यवस्था का पुनर्निरीक्षण आवश्यक है।

कुछ अर्थवेत्ताओं ने सुझाव दिए हैं कि पब्लिक सेक्टर के बैंकों का निजीकरण होना चाहिए। यह सुझाव भी संदेह से परे नहीं है। हाँ, यह आवश्यक है कि बैंकों के बोर्ड में योग्य और ईमानदार डायरेक्टर होने चाहिए और उन्हें अपने काम में स्वायत्तता मिलनी चाहिए। बैंकों को किसी प्रकार के राजनैतिक और अन्य बाहरी दबावों से सुरक्षित रखना अनिवार्य है। एक चिंता का विषय यह भी है कि वित्त मंत्रालय ने नियमानुसार बैंकों पर निगरानी न रखने की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक पर डाली। रिजर्व बैंक के गवर्नर ने कहा कि पब्लिक सेक्टर के बैंकों के संबंध में उसके अधिकारों में कमी की गई है, वह अधिकारियों की अदला-बदली नहीं कर सकता। रिजर्व बैंक ने कर्ज देने की कुछ प्रणालियों पर रोक लगा दी है। इससे देनदार और ईमानदार व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को भी कठिनाई होगी। रिजर्व बैंक ने वित्त मंत्रालय पर इसका दायित्व डाल दिया। जब दो बड़ी पब्लिक इकाइयों के मतभेद सामने आएँ, तो यह चिंता का विषय हो जाता है, जबकि स्वस्थ बैंकिंग व्यवस्था के लिए दोनों में तालमेल आवश्यक है। जब देश की आर्थिक व्यवस्था सुधर रही है और उन्नति हो रही है, तो ऐसे में इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है।

सावरकर के चार मुख अभियोग

२६ फरवरी को दिल्ली के जाने-माने हिंदी भवन में डॉ. हरींद्र श्रीवास्तव लिखित पुस्तक 'फोर स्टॉर्मी ट्रायल्स ऑफ वीर सावरकर' का लोकार्पण हुआ। इस दिन, यानी २६ फरवरी, १९६६ में वीर सावरकर ने स्वेच्छा से शरीर छोड़ा था। कृति का लोकार्पण राज्यसभा के सदस्य और सुप्रसिद्ध पत्रकार डॉ. विप्लव दास गुप्ता ने किया। आयोजन की अध्यक्षता करने का हमारा दायित्व था। सावरकर के आत्म-समर्पण का दिवस उनकी सोच की गरिमा और गंभीरता, दोनों को उद्घाटित करता है। हरींद्र श्रीवास्तव की सावरकर विषयक (हिंदी और अंग्रेजी में) करीब दस पुस्तकें हैं। १९८१ में उनकी पुस्तक 'फाइव स्टॉर्मी ईयर्स इन लंदन' प्रकाशित हुई तो उसकी बहुत सराहना हुई। उसका हिंदी अनुवाद 'उदित मार्तंड सावरकर लंदन में' नाम से राजपाल ऐंड संस द्वारा १९८४ में निकला और तीन संस्करणों के बाद भी आज वह पुस्तक अनुपलब्ध है। दोनों पुस्तकों का पुनः प्रकाशन होना चाहिए। हरींद्र श्रीवास्तव स्वयं दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे हैं। उन्होंने सावरकर के साहित्य पर शिवाजी यूनिवर्सिटी, कोल्हापुर से डी.लिट. की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने वीर सावरकर पर एक फिल्म भी बनाई है। श्रीवास्तव को हिंदी और उर्दू में भी उतनी ही महारथ हासिल है, जितनी कि अंग्रेजी में। हमने एक बार उनको 'सावरकर का दीवाना' कहा था, और उन्होंने हँसकर कहा, यह सही है।

पुस्तक के विषय में अपने एक परिचयात्मक आलेख का पाठन सहपाठी और मित्र डॉ. कौल ने किया। श्रीवास्तव ने बड़े भावभीने शब्दों में सावरकर के जीवन के आखिरी सात दिनों की दिनचर्या की व्याख्या की, जिसे सुनकर श्रोताओं की आँखों में आँसू आ गए। लोग भाव-विह्वल हो गए। अपने विद्वत्तापूर्ण उद्बोधन में डॉ. विप्लव दास गुप्ता ने कहा कि पूर्ववर्ती सरकारों तथा कुछ अन्य लोगों ने उनकी लोकप्रियता को देखते हुए उनकी अवहेलना की, उनके विचारों को गलत ढंग से पेश किया। इसका एक कारण यह है कि सावरकर एक राजनेता या एक दल हिंदू महासभा के नेता थे। उनका व्यक्तित्व और प्रतिभा बहुमुखी थी। वे मौलिक चिंतक थे, कवि और उपन्यासकार थे, जीवनी लेखक थे, इतिहासकार थे, स्वतंत्रता सेनानी थे तथा राजनीति के दार्शनिक विवेचक थे।

आज आवश्यकता है कि उनकी मूल विचारधारा को उचित प्रकार से विश्लेषित किया जाए। उन्होंने मराठी में बहुत कुछ लिखा है, उसका

सम्यक् विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण अभी बाकी है। इस पुस्तक में सावरकर के विरुद्ध चार मुकदमों का विश्लेषणात्मक विवरण है। विशद विषय है, विस्तार से लिखा है। हरींद्र श्रीवास्तव ने देश और विदेश में शोध कर सामग्री एकत्र की है। यह पुस्तक उनकी पूरी जीवनी नहीं है, किंतु एक संक्षेप वृत्त उन्होंने दे दिया है। इंग्लैंड जाने के पहले उनकी नाशिक और पूना की राजनैतिक गतिविधियों और ब्रिटेन की साम्राज्यवाद विरोधी कारवाइयों एवं भारत की स्वतंत्रता का प्रचार करने के कारण, विशेषतया मदनलाल धींगरा द्वारा कर्जन वायली के वध के बाद भारत की ब्रिटिश सरकार बहुत विचलित थी और येन-केन-प्रकारेण सावरकर को गिरफ्तार करना चाहती थी। स्वास्थ्य लाभ के लिए उन दिनों सावरकर फ्रांस में थे, जबकि उनके बड़े भाई गणेश सावरकर और अन्य कई साथी भारत में गंभीर धाराओं में पकड़ लिये गए। सरकार विनायक दामोदर सावरकर को भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालक और धुरी मानती थी। श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम कामा आदि शुभचिंतकों के मना करने पर भी वे लंदन वापस आ गए, क्योंकि उनके दिल में यह भावना घर कर गई कि उनके सहयोगी यातनाएँ भुगत रहे हैं, उसमें उनकी भी भागीदारी होनी चाहिए।

लंदन लौटते ही वे गिरफ्तार कर लिये गए। मजिस्ट्रेट ने उन्हें ब्रिक्सटन जेल भेज दिया। जमानत नामंजूर कर दी, इस बिना पर कि पूरे केस के कागजात आने चाहिए। भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार मिलीभगत से नहीं चाहती थीं कि मुकदमा लंदन में सुना जाए, क्योंकि वहाँ के कानून के अंदर सावरकर को दोषी करार देना आसान न था। हालाँकि सावरकर विद्या-अध्ययन के लिए सब औपचारिकताएँ पूरी कर और भारत सरकार के नियमानुसार विलायत गए थे; फिर भी सरकार ने उन्हें कानून से भगोड़ा बताकर अदालत से भारत भेजने की माँग की, क्योंकि वहाँ का न्यायतंत्र पूरे तौर पर उनके हाथ में था। सावरकर के वकील रेजीनल्ड वाहन ने बहुत कोशिश की कि मुकदमा ब्रिटिश अदालत में चले, पर वे सफल नहीं हुए। कोर्ट ऑफ अपील ने भी भारत सरकार के अनुरोध पर सावरकर को भारत भेजने के निर्णय की तस्दीक कर दी, जस्टिस कोलरिज का मत इसके विपरीत था। विंसटन चर्चिल ने, जो उस समय ब्रिटिश सरकार में होम सेक्रेटरी थे, तुरंत सावरकर को भारत भेजने के आदेश दे दिए। यह था उनपर पहला मुकदमा।

सावरकर बराबर अन्याय के शिकार होते रहे। हम चारों मुकदमों की तफसील में यहाँ नहीं जा सकते हैं, उसके लिए तो पुस्तक को ही पढ़ना होगा। इस निर्णय के बाद उनके सहयोगियों ने सोचा कि सावरकर को ले जानेवाला पानी का जहाज जब फ्रांस के मार्सेलीज बंदरगाह पर कार्यवश रुकेगा, क्यों न उन्हें वहीं पर छुड़ा लिया जाए। सावरकर को यह जानकारी जेल में पहुँचा दी गई थी। टॉयलेट जाने के बहाने कोजेट के रास्ते मार्सेलीज के पास सावरकर समुद्र में कूद गए। पुलिसकर्मियों ने उनपर गोलियाँ दागनी शुरू कीं और पीछा करने लगे। सावरकर तैरते हुए फ्रांस के समुद्र-तट पर पहुँच गए। पुलिस उनका पीछा 'चोर-चोर' कहकर कर रही थी। फ्रांस के एक कनिष्ठ पुलिस अधिकारी को सावरकर ने भीगे जाँघिया और कमीज पहने टूटी-फूटी फ्रेंच में यह बताने की कोशिश की कि वे एक राजनैतिक कैदी हैं, चोर नहीं, और उनको अपने उच्च अधिकारियों के पास ले जाने का अनुरोध किया। लेकिन ब्रिटिश और भारत की पुलिस, जो उनको बंबई ला रही थी, के दबाव में उस जूनियर पुलिस अधिकारी ने सावरकर को उनके सुपुर्द कर दिया। वे उन्हें फिर ब्रिटिश जहाज में ले गए। उनपर निगरानी बहुत कड़ी कर दी गई। उधर कार खराब हो जाने के कारण उनको छुड़ाने के प्रयास में उनके साथी घटनास्थल पर कुछ देर से पहुँच पाए। यह समाचार-पत्रों में छपा, बड़ा राजनैतिक बावेला शुरू हुआ। एक राजनैतिक व्यक्ति को, जो फ्रांस में शरण माँग रहा था, गलत तरीके से ब्रिटिश और इंडियन पुलिस क्यों ले गई? यह राजनैतिक शरण माँगने का मामला था। अखबारों में इसकी बहुत राजनैतिक गरमागरमी रही। फ्रांस के राजनेताओं ने फ्रांस सरकार और ब्रिटिश सरकार की बड़ी आलोचना की। बहुत कोशिश के बाद मामला हेग के अंतरराष्ट्रीय ट्रिब्यूनल को सौंपा गया। ट्रिब्यूनल ने सरकारों की आलोचना की, पर अंत में निर्णय ब्रिटिश सरकार के पक्ष में रहा; जिनके कब्जे में सावरकर थे। सावरकर का यह मुकदमा अंतरराष्ट्रीय कानून का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन गया। हेग ट्रायल अंतरराष्ट्रीय कूटनीति का अपने आप में एक विचित्र अध्याय है। प्रज्ञस चाहता था, ट्रिब्यूनल ने भी कहा था कि भारत में उनके अभियोग पर कारवाई शुरू नहीं होनी चाहिए, जब तक कि वह पूरे विवादास्पद मामले को सुनकर निर्णय न दे। भारत के गवर्नर जनरल और बंबई के गवर्नर तो तुले हुए थे कि शीघ्र मुकदमा शुरू हो, क्योंकि शेर उनके पिंजड़े में आ ही गया था, किसी-न-किसी तरह उनको कालापानी भेजा ही जाए।

तीसरा मुकदमा भारत में नाशिक षड्यंत्र केस के रूप में शुरू हुआ, साधारण अदालत में नहीं, एक विशेष ट्रिब्यूनल बनाया गया। बंबई हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस वैसिल स्काट अध्यक्ष, जस्टिस एन.जी. चंदावर्कर (जो कांग्रेस के अध्यक्ष भी बने) और जस्टिस हियटन सदस्य। उनका निर्णय अंतिम था। तीनों मामलों में सावरकर को आरोपी बनाया गया। सरकारी वकील थे एडवोकेट जनरल जार्डीन तथा अन्य तीन प्रसिद्ध वकील। मैडम कामा के अनुरोध पर सावरकर के बचाव पक्ष के वकील बने जोसेफ बैपतीस्टा, जो तिलक के होमरूल में सहयोगी थे तथा कुछ अन्य प्रतिष्ठित एडवोकेट। सावरकर ने अपने बचाव में कुछ कहने से इनकार किया, क्योंकि ट्रिब्यूनल को अधिकार नहीं है उनके विरुद्ध आरोप सुनने का। फ्रांस की भूमि पर जब वे शरणार्थी के अधिकार (राइट टू एसाइलम) माँग रहे थे, अंतरराष्ट्रीय परंपरा का उल्लंघन कर उनको गिरफ्तार किया गया, अत: उनकी गिरफ्तारी अंतरराष्ट्रीय कानून के खिलाफ है। उन्होंने कहा कि वह फ्रांस पर, जो स्वयं को स्वतंत्रता, समता और भाईचारे का जनक मानता है, अपना मामला उसके विवेक पर छोड़ते हैं।

ट्रिब्यूनल ने फ्रांस की उनकी गिरफ्तारी की अवैधता को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि वह तो अभी हेग में विचाराधीन है।

जैसा अंदेशा था, सावरकर को आजीवन कारावास और उनकी पूरी जायदाद की जब्ती की सजा सुना दी गई। बंबई के गवर्नर चाहते थे कि २५ साल के कारावास के बाद भी सावरकर भारत में वापस न आ सकें। उनपर उसी ट्रिब्यूनल के सामने एक मुकदमा और चलाया गया कि नाशिक के कलक्टर जैक्सन हत्याकांड में उन्होंने पिस्तौल भेजी थी, वे हत्याकांड को बढ़ावा देने और उसमें सहायक होने के आरोपी हैं। इस मुकदमे में भी ट्रिब्यूनल ने उन्हें दूसरी बार आजीवन कारावास का दंड दिया। किसी को दो आजीवन कारावास की सजा का यह पहला और अपने आप में एक ही उदाहरण है। काला पानी में पचास साल कारावास का दंड। उसके बाद ३ जुलाई, १९११ से अंडमान का प्रकरण तथा दस साल के बाद भारत में रत्नागिरि जेल में। उसके उपरांत रत्नागिरि से घर में नजरबंदी और सरकार द्वारा उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर। १० मई, १९३७ को उनकी रिहाई तथा उसके उपरांत हिंदू महासभा के अध्यक्ष, अंत में अस्वस्थता के कारण सक्रिय राजनीति से संन्यास।

चौथा मुकदमा स्वतंत्र भारत में उनपर चला, जब उनको गांधी हत्याकांड में आरोपी बनाया गया। बहुत कम लोग शायद यह जानते हैं कि सावरकर और गांधी का परिचय लंदन से था। दो-तीन बार उनकी मुलाकातें भी हुईं। उस समय तक शायद गोखले को छोड़कर कांग्रेस के किसी नेता से इतना पुराना परिचय शायद ही रहा हो। भारतीय विद्यार्थियों ने लंदन में विजयादशमी का आयोजन किया। इस अवसर पर दोनों ने अपने विचार प्रकट किए। अहिंसा के विषय में दोनों में मतभेद था, पर कोई वैयक्तिक रंजिश नहीं थी। रत्नागिरि में भी गांधीजी और कस्तूरबा गांधी सावरकर से मिले। हरिजन समस्या पर बातचीत हुई। सावरकर उस समय अस्पृश्यता निर्मूलन के कार्य में संलग्न थे। किसी प्रकार के पारस्परिक या व्यक्तिगत विद्वेष का प्रश्न ही नहीं था। फिर भी गांधीजी की नीतियों से उनका खुला विरोध था, खासकर मुसलिम तुष्टीकरण और भारत विभाजन के सवाल पर। फिर भी गांधी-हत्या के आरोप में सावरकर गिरफ्तार किए गए। गोडसे तथा सावरकर के अपने बयान से स्पष्ट हो जाता है कि सावरकर का गांधीजी की हत्या से कोई संबंध नहीं है। उसने सावरकर और अपने संबंधों का खुलासा किया कि किस प्रकार उनका सम्मान करते हुए वह गांधी के स्वतंत्रता के बाद के विचारों से सहमत नहीं था। लालकिले में स्पेशल कोर्ट में मुकदमा चला। जस्टिस आत्माराम ने उन्हें सादर मुक्त कर दिया, क्योंकि उनके विरोध में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं था। बचाव पक्ष में उनके मुख्य अधिवक्ता थे सी.आर. दास के भाई एस.आर. दास। फिर भी कुछ लोग समय-समय पर उन्हें यह दोष देते रहते हैं।

तुषार गांधी ने इस विषय पर एक पुस्तक गांधी 'लेट्स किल' (रूपा, दिल्ली) लिखी है और उसमें जो तर्क दिए, उनका हरींद्र श्रीवास्तव ने निराकरण किया है। उन्होंने ध्यान आकर्षित किया है मनोहर मोलगांवकर की किताब का, उसके द्वितीय संस्करण, २००८ (रोलो बुक्स, दिल्ली), जहाँ उन्होंने बताया है कि किस प्रकार डॉ. अंबेडकर, जो उस समय विधि मंत्री थे, ने एल.वी. भोपटकर को बताया कि सावरकर के खिलाफ कोई साक्ष्य नहीं है, वे निर्दोष घोषित होंगे। कैबिनेट के कुछ अन्य मंत्री भी ऐसा सोचते हैं, केवल प्रधानमंत्री नेहरू के ही कारण वे आरोपी बनाए गए हैं। पहले संस्करण में मोलगांवकर ने लिखा है कि जो आपातकाल में प्रकाशित हुआ था, इन बातों की चर्चा नहीं कर सके। देश की स्वतंत्रता के बाद जिस आजादी के लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया और यातनाएँ सहीं, इससे सावरकर के स्वास्थ्य और मनोदशा को बहुत धक्का लगा। वे अत्यंत अंतर्मुखी हो गए, पुराने परिचितों और सहयोगियों से भी मिलना-जुलना छोड़ सा दिया। एक विडंबना यह देखिए कि १८५७ की क्रांति पर सावरकर ने भारतीय दृष्टिकोण से प्रथम स्वातंत्र्य समर ग्रंथ लिखा, शोध और मूल दस्तावेजों के आधार पर, जो उन्हें ब्रिटिश लाइब्रेरी में उपलब्ध हुए; और छपने के पहले ही ब्रिटिश सरकार ने उसे प्रतिबंधित कर दिया तथा जिसके प्रकाशन का अपना गरिमामय इतिहास है, उसके लेखक को १९५७ में शताब्दी वर्ष के किसी आयोजन में मो. आजाद या प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा आमंत्रित नहीं किया गया। किंतु कुछ जन-संस्थाओं ने उस अवसर पर वीर सावरकर को आमंत्रित किया और उन्होंने पुरजोर भाषण दिया। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि जब इंग्लैंड में सावरकर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन कर रहे थे, जिससे ब्रिटिश सरकार परेशान थी, उस समय नेहरू भी वहाँ विद्यार्थी थे। अपनी आत्मजीवनी में नेहरू ने बहुत कुछ उस समय की घटनाओं की चर्चा की है, पर सावरकर और इंडिया हाउस का कोई जिक्र करना उन्होंने उचित नहीं समझा। शायद लालकिले के मुकदमे के उपरांत दिल्ली में यह पहला और अंतिम आयोजन था, जिसमें सावरकर ने भाग लिया। सावरकर का हर मुकदमा अपना महत्त्व रखता है। सावरकर का जीवन समुद्र की तरह है—कितना और क्या लिखा जाए? विद्वान् लेखक हरींद्र श्रीवास्तव ने इस पुस्तक में उनको संक्षेप में समाहित किया है। वे साधुवाद के पात्र हैं। २६ फरवरी के आयोजन में यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उन्होंने इस पुस्तक का हिंदी रूपांतर तैयार कर लिया है, जो संभवत: वीर सावरकर के जन्मदिवस मई, २०१८ तक प्रकाशित हो जाएगा।

कन्नौज नाम कैसे पड़ा?

इस स्तंभ में 'वैचारिकी', भारतीय विद्यामंदिर की द्विभाषिक शोध-पत्रिका की समय-समय पर चर्चा होती रही है। 'वैचारिकी' जुलाई-अगस्त, २०१७ के अंक में एक महत्त्वपूर्ण आलेख डॉ. भँवरलाल जोशी का 'एक अद्‌भुत व्युत्पत्ति कोश' देखने को मिला। उन्होंने उसमें राजस्थान की एक विलक्षण प्रतिभा की ऐतिहासिक देन की चर्चा की है। वे किसी विद्यालय में नहीं पढ़े। गरीबी के कारण विधवा माँ के भरण-पोषण के लिए १६ वर्ष की आयु तक गाय चराने का काम करते रहे। उसके उपरांत उन्होंने स्वाध्याय एवं निदिध्यास से आठ भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त की। वे भाषाएँ हैं—अरबी, फारसी, तुर्की, उर्दू, संस्कृत, प्राकृत, हिंदी और अंग्रेजी। अपनी आयु के चालीस वर्षों में उन्होंने करीब ४५ हजार पृष्ठों के अद्‌भुत 'व्युत्पत्ति कोश' की रचना की। ९३ वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया। कोश अपूर्ण और अप्रकाशित

रहा। डॉ. भँवरलाल जोशी का कहना है कि उन्होंने अपने ज्ञान को सदैव गुप्त रखा, जिससे कि उनकी खोज का श्रेय कोई दूसरा न ले ले। स्व. श्री लक्ष्मीलालजी जोशी, जो राजस्थान के एक वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी, शिक्षाविद् तथा व्युत्पत्तिकार के मित्र थे, अरबी के कुछ भाग लिप्यंतरण के लिए राजस्थान अकादमी, उदयपुर से कोशिश की, पर प्रयास सफल नहीं हुआ। विद्वान् लेखक ने किसी प्रकार व्युत्पत्तिकार, विद्वान् राजवैद्य डॉ. घनश्याम शर्मा शास्त्री, अलिमे फाजिल फारसी से निकटता बढ़ाकर और उनका विश्वास अर्जित कर करीब सौ शब्दों की व्युत्पत्तियाँ प्राप्त कर अपनी शोधपूर्ण विस्तृत भूमिका के साथ बानगी के तौर पर १९७३ में 'अपूर्व हिंदी व्युत्पत्ति कोश : परिचायिका' प्रकाशित करवाई। भँवरलालजी का यह कार्य स्तुत्य है। उन्होंने जो लेख 'वैचारिकी' में लिखा, वह कम-से-कम राजस्थान के सत्ताधारियों और विद्वानों के संज्ञान में आना चाहिए। डॉ. जोशी के सहयोग से राजस्थान सरकार को इस धरोहर के संरक्षण का प्रयास करना चाहिए।

इतिहास और साहित्य में रुचि तथा कुछ समय तक राजस्थान में कार्यरत रहने के कारण इस ओर हमारा थोड़ा सा लगाव रहा है। एक और विशेष कारण यह रहा कि डॉ. जोशी ने कन्नौज शब्द की व्युत्पत्ति का विवरण दिया है। यह हमारे पूर्वजों का आदिस्थान है। आज भी कन्नौज से १०-१५ किलोमीटर की दूरी पर हमारा पैतृक घर है। कन्नौज अब एक जिला या जनपद है। कन्नौज का लोकेशन स्ट्रेटेजीकली काफी महत्त्व का है। डॉ. जोशी ने अपने आलेख में कन्नौज की व्युत्पत्ति का उदाहरण दिया है, अतएव इसमें हमारी दिलचस्पी होना स्वाभाविक है। हम लेख के उस भाग को 'वैचारिकी' के सौजन्य और डॉ. जोशी को धन्यवाद सहित उद्धृत कर रहे हैं। संयोग से जो ग्रंथ, जैसे डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी के 'कन्नौज का इतिहास', इलियट डाउसन के संपूर्ण आठ वॉल्यूम 'द हिस्टरी ऑफ इंडिया वाई इरस हिस्टोरिज्म' एवं 'उर्दू-हिंदी कोश' हमारे संग्रह में उपलब्ध हैं, उनको देखा। इसके अतिरिक्त आनंदस्वरूप मिश्र के 'कन्नौज का इतिहास', हिंदी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित ग्रंथ भी देखा। कन्नौज की उपर्युक्त व्याख्या वहाँ भी नहीं है। यह अवश्य कहना चाहेंगे कि यह ग्रंथ प्राचीन भारत के इतिहास को समझने के लिए बहुत लाभदायक है। यह एक नई व्याख्या है, जो व्युत्पत्तिकार ने विद्वत्तापूर्वक निकाली है, यह विचारणीय भी लगती है। कन्नौज कभी भव्य और खुशहाल नगरी रही है, देश की राजधानी रही और कश्मीर तक उसका राज्य रहा है। इसीलिए मुसलिम आक्रमणकारियों और इतिहासकारों ने नगरी का नाम कन्नौज रखा। 'कन्नौज' नाम कैसे पड़ा, इस दिशा में एक नई खोज है।

English has derived from French, many words which had been borrowed from the Germanic tribes, Franks, Goths and from the Arabs, and from Spanish Words borrowed from Goths as well as from the Arabs and celts. (Webster's New World Dictionary, Second Edition, Page XXXI).

एक अन्य शब्द देखिए 'कनोज'। यह उत्तर प्रदेश के एक शहर का नाम है, जिसे वर्तमान में कन्नौज लिखा जा रहा है। उक्त व्युत्पत्ति कोश में इसे अरबी भाषा से हिंदी में आया हुआ बताया गया है, जबकि हिंदी के भाषाविद् इसे संस्कृत के 'कान्यकुब्ज' शब्द का तद्भव रूप मानते हैं। इन दोनों में से कौन सा मत सत्य है, यह प्रकट करने से पहले मैं यहाँ कन्नौज के इतिहास पर शोध करनेवाले विद्वान् डॉ. आर.एस. तिवारी का उल्लेख करना चाहूँगा। डॉ. तिवारी अपने शोध-प्रबंध 'हिस्टरी ऑफ कन्नौज' में 'कन्नौज' नाम के संबंध में संस्कृत के साहित्यिक ग्रंथों और पुराणों के अनेकानेक उद्धरण प्रस्तुत करने पर भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके कि 'कन्नौज' नाम निर्विवाद रूप से 'कान्यकुब्ज' नाम का अपभ्रंश रूप है। 'अपूर्व हिंदी व्युत्पत्ति कोश' के विद्वान् लेखक के मतानुसार उत्तर प्रदेश के उक्त प्रसिद्ध शहर 'कन्नौज' (जो कभी उत्तर भारत की राजधानी भी था) को यह नाम अरबों ने दिया था और यह नाम उक्त शहर की पुरानी आर्थिक समृद्धि की ऐतिहासिक पहचान का वाचक है। व्युत्पत्ति कोश का लेखक बताता है कि इस शहर का यह नाम जिस शब्द से बना है, वह मूल शब्द है 'कनूज'। यह शब्द अरबी भाषा के 'कंज' शब्द का बहुवचन है। कंज का अर्थ है—भंडार, खजाना। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित मुहम्मद मुस्तफा खाँ मद्दाह के उर्दू-हिंदी शब्दकोश में भी 'कंज' शब्द को अरबी भाषा का ही बताकर इसका अर्थ निधि या खजाना लिखा हुआ है (पृ.सं.९२)। इससे 'कनूज' का अर्थ हुआ 'बहुत खजाने'। फारसी तवारीखों के लेखक भी इस शहर का नाम 'कनोज' और 'कनूज' दोनों रूपों में लिखते रहे हैं। अरबी के भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी 'कन्नौज' शब्द को 'कनूज' से बना हुआ बताना अनुचित नहीं है। इस प्रकार 'कनूज' (बहुत खजाने) से संबद्ध 'कन्नौज' (या कनोज) का अर्थ होता है—'बहुत खजानेवाला'।

निष्कर्ष है कि यह शहर अपने इस नाम की व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'बहुत खजानोंवाला' शहर सिद्ध होता है और फारसी तवारीखों में यह अपनी इसी विशेषता से पहचाना जाता रहा था। इसका प्रमाण 'कामिल-उत-तवारीख' तथा 'तारीख-इ-यमीनी' आदि कई इतिहास-ग्रंथों के आधार पर लिखित सर एच.एम. इलियट के ग्रंथ 'हिस्टरी ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियंस' में भी मिलता है। सर इलियट के उपर्युक्त इतिहास-ग्रंथ में लिखा मिलता है कि गजनविदे साह मसूद तृतीय (४९२-५०९ हिजरी सन्) ने कन्नौज को जीतने के लिए अपनी फौज को रवाना करते समय कहा था, ''हिंद की राजधानी कन्नौज, शमन्स का काबा और कृष्यभूमियों का किबला है, जहाँ हिंद के सारे खजाने उसी तरह एकत्र हैं, जिस तरह नदियों का जल समुद्र में एकत्र होता है।'' (Kananj the capital of Hind...The Kaba of the Shamans and the Kibla of infields where the treasures of Hind were collected just as all the rivers flow into the sea. (Eliot, history of India as told by its own Historians. Vol. IV, page 526).

इस ऐतिहासिक प्रमाण से यह प्रकट होता है कि 'कनोज' नाम इस शहर की प्राचीन समृद्धि का परिचायक है। इससे यह परिचय मिलता है कि अरब आदि पश्चिमी यवन देशों के बादशाहों के दिलों में भारत के इस शहर की प्राचीन अतुल आर्थिक समृद्धि के प्रति प्रबल आकर्षण रहा था। 'कान्यकुब्ज' नाम से 'कनोज' या कन्नौज शब्द का विकास मानने पर इस शहर की वैसी कोई इतिहास-प्रसिद्धि प्रमाणित नहीं होती, जैसी अरब भाषा के 'कनूज' या तत्संबद्ध 'कनोज' से 'कन्नौज शब्द का विकास मानने से होती है। कन्नौज अति प्राचीन नगर है, और भारतीय इतिहास तथा संस्कृति का केंद्रबिंदु रहा है। इस विषय में समयानुसार आगे और जानने का प्रयास होगा।

पूर्व राष्ट्रपति के संस्मरण

पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी के अपने संस्मरण के दो भाग पूर्व में उनके राष्ट्रपति के कार्यकाल में प्रकाशित हो चुके थे और इस स्तंभ में उनकी चर्चा भी हुई थी। तीसरा खंड 'द कोलिएशन ईयर्स', यानी 'मिली-जुली सरकार के वर्ष' हाल ही में प्रकाशित हुआ। प्रकाशक हैं रूपा, दिल्ली। चूँकि पहले दो खंडों के प्रकाशन के समय लेखक देश के राष्ट्रपति के दायित्व का निर्वहण कर रहे थे, उनको पढ़ते समय कभी-कभी ऐसा लगता था कि वे व्यक्तियों और समस्याओं के बारे में कुछ और कहना चाहते हैं, लेकिन कह नहीं पा रहे हैं। तीसरे खंड में लेखक अधिक मुखर हैं। राष्ट्रपति के दायित्व का बंधन नहीं है। वैसे प्रणब मुखर्जी बहुत सोच-विचारकर और संतुलित ढंग से अपने शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो कहते हैं, उससे और काफी इशारे मिल जाते हैं। यह उनकी राजनैतिक परिपक्वता का परिचायक है। उनके तीसरे खंड का कालखंड काफी उथल-पुथल भरा और संवेदनशीलता का था। मिली-जुली सरकार को चलाना आसान नहीं होता है। उसकी पेचीदगियाँ समझना और उनका निराकरण करना बड़ी कुशलता का काम है। प्रणब मुखर्जी इसमें बहुत माहिर हैं। वैसे उन्होंने सोनिया गांधी से अपने संबंध, दो बार प्रधानमंत्री बनने के आसार, पर दोनों बार आशा फलीभूत न हो पाना आदि के बारे में खुलेपन से लिखा है।

देवगौड़ा और गुजराल की सरकारों के प्रति कांग्रेस का रवैया कैसा और क्यों रहा, उसपर अच्छा प्रकाश डाला है। वे कांग्रेस की मिलीजुली सरकार में रक्षा मंत्री, विदेश मंत्री और पुन: वित्त मंत्री बने, इन बातों का उन्होंने अच्छा विवरण दिया है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और वित्त मंत्री चिदंबरम से किन मामलों में उनका मत या सोच अलग रही, उसका भी उन्होंने खुलासा किया है। प्रणब मुखर्जी ने कांग्रेस की मिली-जुली सरकार और पार्टी में भी समय-समय पर संकटमोचनक की भूमिका निभाई। अमरीका से न्यूक्लियर डील के विरोध में सी.पी.एम. ने साथ छोड़ दिया, तब भी उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ से कार्य किया, ताकि कांग्रेस की सरकार चलती रहे। कैबिनेट में जब किसी मामले में आम सहमति नहीं हो पाती तो उसे एक समिति पर छोड़ दिया जाता था और उसके अध्यक्ष प्रणबजी होते तथा वे कोई-न-कोई हल निकाल लेते थे। राजनीति में साम, दंड, भेद का कहाँ और किस प्रकार प्रयोग हो, वे अच्छी तरह जानते हैं। उनका राजनीति और संसदीय अनुभव काफी लंबा रहा। उनकी स्मरण-शक्ति अद्‌भुत है। वे संविधान और संसद् के नियमों के आधार पर विशेषज्ञ हैं। दुविधा के समय वे अपनी याददाश्त से कोई-न-कोई पुराने निर्णय या संस्मरणों का आधार निकाल ही लेते हैं। उनका यह तीसरा खंड भारतीय राजनीति और संसदीय कार्यप्रणाली को समझने के लिए एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। आशा है, उनके राष्ट्रपति-काल के संस्मरण इस वर्ष के अंत तक प्रकाशित होकर आ जाएँगे। पूर्व राष्ट्रपति मुखर्जी सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयोजनों में सक्रिय हैं। शिक्षा और विकास की समस्याओं में उनकी विशेष दिलचस्पी है। शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने एक फाउंडेशन की स्थापना की है, जो इस क्षेत्र में शोध करेगा और समस्याओं के निदान के लिए सुझाव देगा तथा जनता में जागृति पैदा करने का प्रयास करेगा।

आपातकाल की त्रासदी

इमरजेंसी या आपातकाल पर अंग्रेजी में अनेक पुस्तकें आई हैं। भुक्तभोगियों और राजनीतिक टिप्पणीकारों ने अपने संस्मरण लिखे हैं अथवा जो उन्होंने देखा, उसका विवेचन किया है। आपातकाल ने देश की मनोदशा पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है। देश प्रतिवर्ष उस समय की स्थिति को स्मरण करता है, और नहीं चाहता कि देश को पुन: उस प्रकार की स्थिति देखनी पड़े। हिंदी में भी कुछ पुस्तकें अवश्य निकली हैं, पर उनमें समग्रता के साथ आपातकाल का आकलन नहीं हुआ। शुभ्र ज्योत्स्ना की 'कैसे भूलें आपातकाल का दंश' पुस्तक प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से अभी प्रकाशित हुई है। ग्रंथ के प्रणयन करनेवाले संपादक मंडल के सदस्य हैं—डॉ. चंद्रशिखा, डॉ. अशोक गर्ग एवं सुभाष आहुजा। पुस्तक का उपशीर्षक रेखांकित करता है कि आपातकाल (२६ जून, १९७५ से २१ मार्च, १९७७) अँधेरे के खिलाफ संघर्ष है। पुस्तक में कुछ अखबारों के फोटो तथा तरह-तरह के चित्र एवं तसवीरें हैं, जो उस समय के हालात पर रोशनी डालती हैं। यह ग्रंथ आपातकाल का समग्रता से आकलन करता है, तथ्य प्रस्तुत करता है। वास्तव में बारह अध्यायों में आपातकाल से रूबरू कराता है। पाँचवें अध्याय में लोकनायक जयप्रकाश नारायण तथा प्रतिरोध के अन्य मुख्य नायकों के स्केच अत्यंत सार्थकता से प्रस्तुत किए गए हैं। यह एक संग्रहणीय ग्रंथ है। कम-से-कम हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों के जन-पुस्तकालयों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में यह ग्रंथ अवश्य उपलब्ध होना चाहिए, ताकि आगे आने वाली पीढ़ियाँ जान सकें कि किस प्रकार थोथे कारणों से देश पर आपातकाल थोपा गया था, देश ने क्या-क्या यातनाएँ सहन कीं और किस प्रकार जनता ने अपने प्रयास से लोकतंत्र के प्रकाश का पुन: स्थापन किया।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

वंदे मातरम् के उद्घोषक : बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय

● **आशारानी व्होरा**

अपनी पुस्तकों—'महिलाएँ और स्वराज्य' तथा 'क्रांतिकारी महिलाएँ' पर काम करते हुए मैंने 'संन्यासी विद्रोह' के बारे में जाना और देवी चौधरानी के वीर कृत्य से भी परिचित-प्रभावित हुई। अंग्रेज शासकों द्वारा छोड़े गए रिकॉर्ड में विद्रोही संन्यासियों को 'लुटेरे' कहा गया है; इसी तरह वीरांगना देवी चौधरानी को भी 'दस्यु रानी'। देवी चौधरानी के बारे में पढ़कर लगता था कि यह रचनाकार की औपन्यासिक कल्पना है। यह चरित्र ऐतिहासिक है या लोककथाओं की नायिका का? इसपर इतिहासकारों में देर तक बहस भी चलती रही थी, जब तक कि ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिल गए।

(२७-६-१८३८—८-४-१८९४)

संन्यासी विद्रोह के प्रसिद्ध लड़ाके मजनू शाह फकीर ने सन् १७७४-७५ में एक विशाल विद्रोही संगठन बनाया था। उन्होंने सन् १७७६ में कंपनी सरकार से कई बड़ी टक्करें लीं। फिर २९ दिसंबर, १७८६ को अंग्रेजी सेना से एक मुठभेड़ में गंभीर रूप से घायल हो जाने पर अगले दिन उनकी मृत्यु हो गई थी। उनके शिष्य भवानी पाठक उन दिनों बार-बार अंग्रेजी नावों पर हमला करके उनका माल-असबाब लूट ले जाते थे। सन् १७८८ में वह भी एक बजरे में अपने साठ बरकंदाजों के साथ पकड़े गए और मार डाले गए। ये लोग अंग्रेजों के स्थानीय जमींदारों के साथ किए गए गठबंधन के शिकार गरीब किसानों और कारीगरों पर अत्याचार का बदला लेने के लिए छापामार लड़ाइयाँ लड़ रहे थे और लूट के माल से शोषित-पीड़ित गरीब जनता की मदद करते थे, अन्यथा संन्यासियों को अपना अध्यात्म-साधना का मार्ग छोड़ इस तरह का काम क्यों करना पड़ता? हमारी ऋषि-परंपरा शास्त्र के साथ, समय की जरूरत पर, शस्त्र-साधना की भी रही है। महाभारत इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। आजादी की लड़ाई के प्रारंभिक काल में अन्य विद्रोहों के साथ संन्यासी विद्रोह की भी यही पृष्ठभूमि है, जिसके विस्तार में जाना यहाँ संभव नहीं।

संन्यासी विद्रोह की सूत्रधार देवी चौधरानी विद्रोही संन्यासियों की मुखिया थीं, जिन्हें शक्ति-उपासना के दैवी प्रतीक के रूप में जाना-समझा जा सकता है। उस समय के अंग्रेज लेफ्टिनेंट ब्रेनन की एक रिपोर्ट के अनुसार, भवानी पाठक की गतिविधियों के पीछे देवी चौधरानी का हाथ था, जो अपने अधीन अनेक वेतनभोगी बरकंदाजों की सेना के रख-रखाव के लिए भवानी पाठक से लूट के माल में से हिस्सा लेती थीं। भवानी पाठक मारे गए, तब भी देवी चौधरानी ने न हार मानी थी, न अंग्रेजों के हाथ आई थीं। कथाकार बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित शेष कहानी में कल्पना का पुट हो सकता है। पर देवी चौधरानी का चरित्र उनकी कल्पना की उपज नहीं, ऐतिहासिक चरित्र है, यह बात अब प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है। ब्रेनन की रिपोर्ट के अनुसार, भवानी पाठक के दल की इस 'क्रूर' नेत्री की गिरफ्तारी के लिए 'ऊपर' से आदेश प्राप्त किए गए थे। पर यह बहादुर, निर्भीक नेत्री, जो नदी में बजरा डाले राजरानियों की तरह रहती थी, कभी भी अंग्रेजों के हाथ नहीं आई। सभी संन्यासी योद्धा उनकी वीरता का लोहा मानते थे और उनके पास छापामार बरकंदाजों की एक अच्छी फौज थी। पर अनेक संन्यासी नेताओं के मारे जाने के बाद भी वह अंत तक नहीं पकड़ी गईं। अगर पकड़ी जातीं तो उन्हें गिरफ्तार करने या प्राणदंड देने का शेखी भरा बयान अंग्रेजों के छोड़े रिकॉर्ड में अवश्य मिलता। दमन-चक्र के समय अपनी सेना को भंग कर वह स्वयं कहाँ रहस्यमय ढंग से गायब हो गईं, इस बारे में इतिहास मौन है; जबकि इधर एक टी.वी. धारावाहिक 'देवी चौधरानी' में उन्हें घर लौटकर गृहस्थी बसाते दिखाया गया है, जो असंभव सी बात लगती है। घर लौटतीं तो क्या उनके खून के प्यासे अंग्रेजों की निगाह से छुपी रहतीं? हो सकता है, नए शोधकर्ता उनकी अधूरी कहानी को कभी पूरा कर सकें! बहरहाल, संन्यासी विद्रोह हमारे स्वतंत्रता-संग्राम का वह प्रथम उज्ज्वल अध्याय है, जिसका मूल्यांकन किया ही जाना चाहिए कि आनेवाले समय में उससे प्रेरणा ली जा सके।

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय इस इतिहास को कथा में पिरोकर असंख्य पाठकों के सामने न लाते तो संन्यासियों का उद्घोष 'वंदे मातरम्' हमारे पूरे स्वतंत्रता-संग्राम की प्रेरणा बन उसे शक्ति कैसे प्रदान करता! और वर्तमान में भी हमारा राष्ट्रगान कैसे बनता! स्वतंत्रता-सेनानी इस गीत को मातृ-वंदना के रूप में गाते थे और इसी जयघोष के साथ हँसते-हँसते हथकड़ियाँ पहनते व फाँसी का फंदा गले में डलवाते थे। राष्ट्रवादी साहित्यकारों में इसीलिए बंकिम चंद्र को शीर्ष स्थान प्राप्त है।

बंकिम चंद्र का जन्म २६ जून, १८३८ को चौबीस परगना के काठालपाड़ा में हुआ था। पिता यादव चंद्र चट्टोपाध्याय एक सरकारी कर्मचारी थे, पर साधु-संन्यासियों के भक्त थे। उनकी जीवन शैली का प्रभाव बालक बंकिम पर भी पड़ा और वह भी बड़े होकर सरकारी नौकरी के साथ इस ओर रुचि रखने लगे। सन् १८५८ में प्रेसीडेंसी कॉलेज से बी.ए. करके (जो उस समय के युवक के लिए एक बड़ी उपलब्धि थी, उसपर कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम स्नातक होने का गौरव!) वह डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुए, फिर डिप्टी

कलेक्टर बने। इस तरह सभी वर्गों के लोगों के संपर्क में आने का अवसर उन्हें मिला और अंग्रेज अधिकारियों के कारनामों को निकट से जानने का भी। एक ओर उन्हें यह अनुभव अपने लेखन में काम आया, दूसरी ओर अपनी नौकरी व लेखन में तालमेल बैठाने में। जन-मन का अध्ययन यदि उन्हें देशवासियों को संगठित कर उनके चरित्र की कमजोरियों को सुधारने में सहायक हुआ तो सरकारी अधिकारी के नाते ऊँचे तबके के अंग्रेजों व अंग्रेज अधिकारियों के संपर्क में रहकर उनके आचार-व्यवहार को समझने में भी। इसीलिए उनकी विचार-पद्धति का सम्यक् ज्ञान पाकर वह उनसे व्यावहारिक स्तर पर निबटने में सफल हो सके।

बंकिम चंद्र की साहित्य-साधना उनके छात्र जीवन से ही आरंभ हो गई थी। सन् १८५३ से १८५६ तक उनकी अनेक गद्य व पद्य रचनाएँ 'संवाद प्रभाकर' और 'संवाद साधुरंजन' में छप गई थीं। सन् १८५८ में बी.ए. करने के बाद उन्होंने १८५९ में बी.एल. की परीक्षा भी पास कर ली थी। सन् १८९१ तक वह सरकारी नौकरी में रहे, फिर अवकाश-प्राप्ति के बाद पूरी तरह साहित्य-सृजन को समर्पित हो गए। यद्यपि इसके बाद तीन वर्ष तक ही जीवित रहे। लेखन का प्रारंभ उन्होंने अंग्रेजी से किया था; पर जल्दी ही उन्हें लगा, यह परितृप्ति नहीं दे सकेगा तो बँगला में लेखन करने लगे। सन् १८६५ में 'दुर्गेशनंदिनी', सन् १८६६ में 'कपाल कुंडला' कृतियाँ रचित व प्रकाशित हुईं और वह बंगाल के सुधी वर्ग में चर्चित व ख्यात हो गए। तीन साल बाद 'मृणालिनी' उपन्यास छपा। इसके बाद १८८२ में 'राज सिंह', १८८२ में ही 'आनंद मठ' और १८८४ में 'देवी चौधरानी'। इसके बाद सन् १८८७ में 'सीताराम' नामक उपन्यास भी छपा। इनके बीच 'इंदिरा', 'विष वृक्ष', 'युगलांगुरीय', 'चंद्रशेखर', 'राधारानी', 'रजनी', 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' भी; पर इनके बाद और 'सीताराम' से पहले छपे 'आनंद मठ' और 'देवी चौधरानी' ने उन्हें स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में अमर कर दिया, विशेष रूप से 'आनंद मठ' ने।

बंग भाषा और साहित्य के उत्कर्ष में तथा बंगवासियों के जातीय चरित्र-गठन व चरित्र-नियंत्रण में 'वंदे मातरम्' मंत्र के उद्घोषक ऋषितुल्य साहित्य-सम्राट् बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय का अवदान अद्वितीय है। अपने जीवनकाल में ही वे एक श्रेष्ठ उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। बाद में भी उनकी कुछ रचनाएँ कालजयी हुईं। जिस उद्देश्य के लिए उन्होंने लेखनी उठाई, उस अभीष्ट की सिद्धि में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। यद्यपि एक सरकारी अधिकारी के नाते उनके लेखकीय मार्ग में कठिनाई उपस्थित थी, विशेष रूप से संन्यासी विद्रोह की सच्चाई और देवी चौधरानी जैसे चरित्र को वाणी देने में, पर उन्होंने पर्याप्त चतुराई से काम लिया था। ऊपर से वह राजभक्ति का प्रदर्शन भी करते थे और अंग्रेजों की समझ में न आनेवाली भाषा में अपने काम की सफाई भी दे लेते थे। अंग्रेजी छोड़कर बँगला में लिखने का एक कारण यह भी था और यह भी कि अपने उस काल में उन्होंने 'आनंद मठ' को लेकर बंग समाज में कोई आंदोलन नहीं उठने दिया। उनकी मृत्यु के बारह वर्ष बाद, जब तत्कालीन अंग्रेज अधिकारी ने अदूरदर्शिता का परिचय दे 'बंग-भंग' का आह्वान किया तो 'स्वदेशी आंदोलन' उठ खड़ा हुआ था, जिसमें 'वंदे मातरम्' का खुलकर उपयोग हुआ था और आंदोलन की उग्रता देखकर सरकार को 'बंग-भंग' के अपने प्रस्ताव को वापस लेना पड़ गया था। यही नहीं, उस अंग्रेज अधिकारी को भी वापस इंग्लैंड बुला लिया गया था।

'बंकिम ग्रंथावली' के तीन खंडों में उनकी कृतियाँ हिंदी के पाठकों को भी सुलभ हैं, पर बंकिम चंद्र का साहित्य केवल ग्रंथ-रचना तक ही सीमित न था। सन् १८७२ में उन्होंने 'बंग दर्शन' नामक पत्रिका भी निकाली थी, जिसका बंग साहित्य के क्षेत्र में ऐतिहासिक स्थान है। अनेक तत्कालीन मनीषियों व साहित्यकारों ने उसमें लिखा—साहित्य, दर्शन, समाज-विज्ञान, इतिहास, पुरातत्त्व, भाषा-विज्ञान, समीक्षा, संगीत, अध्यात्म, कलाएँ आदि सभी विषयों पर। उस समय के मापदंड से बंग साहित्य में आधुनिकता का समावेश भी इस पत्रिका से हुआ। बंकिम चंद्र के उपन्यासों की लोकप्रियता का कारण था—तत्कालीन बंग समाज का सजीव वर्णन और कुरीति-निवारण के साथ एक स्वस्थ समाज का निर्माण, जिसे उनकी मौलिकता, प्रसाद गुण, सहजता और जीवंतता ने जन-जन तक पहुँचा दिया। उनका स्थान बँगला के प्रथम उपन्यासकार के रूप में है, फिर भी उन्होंने इतनी परिपक्वता प्रदर्शित की और पाठकों को इतना अनिर्वचनीय आनंद प्रदान किया कि न केवल उनकी रचनाएँ कालजयी हुईं, बल्कि उनकी लोकप्रियता आज तक जस-की-तस बनी हुई है।

अठारहवीं शताब्दी का बंग समाज अधिकतर बंकिम के उपन्यासों में ही व्यवहृत हुआ है। इतिहास व समाज के प्रति निष्ठा, समसामयिक मूल्य-बोध, तत्कालीन समाज की संकीर्णताओं से मुक्ति का आह्वान और कल्पना की रोचक उड़ान उनके लेखन की लोकप्रियता के कारण थे ही, राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा ने उसमें और चार चाँद लगा दिए थे। यद्यपि जिस समाज से वे जुड़े थे उस सामंती समाज को ही उनकी रचनाओं में प्रमुख स्थान मिला है; पर उनकी कृतियों में मानव हृदय के अंतर्द्वंद्व, वेदना और उल्लास की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं को सुधी जनों के बीच स्थापित कर सकी और उनमें निहित मूल्य उन्हें जन-जन में लोकप्रिय बना सके। बंग साहित्य में एक नवीन नारी-दर्शन का सूत्रपात भी उनके लेखन की विशेषता है, जिसने बीसवीं शताब्दी के घात-प्रतिघात के बीच दो सदी पूर्व के 'देवी चौधरानी' जैसे चरित्र को भी ला बिठाया था। कथा के माध्यम से देशभक्ति का उनका यह प्रदर्शन उन्हें उनके बाद भी जन-जन में जीवित रख सका।

उनके अंतिम दिनों में उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। अवकाश-प्राप्ति के बाद वे केवल कुछ वर्ष ही जीवित रहे, फिर ८ अप्रैल, १८९४ को कीर्ति-शेष हो गए। उनकी पत्नी राजलक्ष्मी देवी अपनी तीन पुत्रियों के साथ उनके जाने के बाद भी कई वर्षों तक जीवित रही थीं। रवींद्रनाथ से लेकर बंग साहित्य के अनेक युवा लेखक लंबे समय तक उनसे प्रेरणा पाते रहे। उनकी प्रेरणा का वह अक्षय स्रोत आज भी चुका नहीं है, युगों-युगों तक रहेगा। सा.अ.

('स्वाधीनता सेनानी लेखक-पत्रकार' पुस्तक से साभार)

वंदनवार

• विद्या विंदु सिंह

पारिजात की माँ ने गाँव के नाई के हाथ गृहस्थी का बहुत सारा सामान लादकर भेज दिया था। घी, तेल, गुड़, आटा, दाल, चावल, सब्जी, मसाले, जो भी उनके खेत और पशुधन से जुट पाया, सबकुछ भेजा था।

नाई ने संदेश दिया कि माँ और पिताजी कल आ जाएँगे।

पारिजात के लिए माँ और पिताजी का आना किसी उत्सव से कम नहीं था। उन्हें देखकर उसे लगता कि वह सारी चिंता-तनाव से मुक्त होकर पुराना पारिजात हो गया है, जो न कभी चुप बैठता और न किसी को मुँह लटकाए बैठा हुए देख पाता था। उसे वे सारी स्मृतियाँ मुदित कर जाती थीं, जिसमें वह सबको हँसाने के लिए नए-नए चुटकुले और व्यंग्य गढ़ा करता था।

इधर वर्षों से वह गाँव नहीं जा पाया था। माँ और पिताजी की खोज-खबर भी नहीं ले पाता था। पिताजी ने गाँव में टेलीफोन लगवा लिया था। वे लोग फोन पर ही यहाँ का हालचाल लेकर और अपनी बताकर संतुष्ट हो जाया करते थे।

पारिजात ने शहर में नया मकान बनवाया है, यह माता-पिता के लिए विशेष प्रसन्नता का समाचार था। क्योंकि वे बराबर कहा करते थे कि अपना घर छोटा हो या बड़ा, अपना ही होता है। किराये के मकान में कब तक रहोगे?

माँ और पिताजी का सपना पूरा हुआ। वे लदे-फँदे सामान के साथ पहुँच गए। दूसरे दिन सुबह पूजा की तैयारी की गई।

पारिजात ने माँ के आदेशानुसार आम्र पल्लव से वंदनवार सजाना शुरू किया। माँ ने अपने लाए हुए भारी-भरकम थैलों में से एक थैला उसे थमा दिया था। इस थैले में आम के पल्लव, हरी दूब, आम की सूखी लकड़ी, गाय का गोबर, कलश, जौ और केले के पत्ते थे।

पारिजात को पल्लव निकालते समय अपना बचपन याद आने लगा। किस तरह वह पेड़ पर चढ़कर पत्ते तोड़ता था। हवन के लिए आम की सूखी टहनियाँ तोड़कर लाता था। इस स्मृति से मन में एक उमंग उठी और वह पूजा के दिन दादी के कंठ से निकले गीत गुनगुना उठा—

आज अइहैं मोरे राम, हो शबरी के घरवाँ,
केसिया से अपनी सबरी बहारैं दुवरवा।
यही रहिया अइहैं भगवान् हो सबरी के घरवाँ। आज अइहैं··
गंगा-जमुनवा क जल भरि लावैं,
राम करिहैं स्नान, हो सबरी के घरवाँ। आज अइहैं··
सुरही क गोबरा से अँगना लिपावैं,
बेदिया बैठिहैं भगवान् हो, सबरी के घरवाँ। आज अइहैं··
चखि-चखि बैरिया सबरी दोनिया सजावैं,
भोगवा लगइहैं भगवान् हो, सबरी के घरवाँ। आज अइहैं··

सुपरिचित लेखिका। कहानी, उपन्यास लोक-साहित्य, नाटक, निबंध, बाल-साहित्य आदि विषयों पर ९८ कृतियाँ तथा बीस संपादित कृतियाँ प्रकाशित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केंद्रों से निरंतर प्रसारण। ८१ संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं पुरस्कार।

उसने पत्तों को रस्सी में सजाकर रख लिया और एक सिरे से दूसरे सिरे पर बाँधने जा रहा था। तभी पत्नी रूपा ने आकर उसे झिड़कना शुरू कर दिया, जो अभी-अभी ब्यूटी पार्लर से लौटी थी।

रूपा कहने लगी, ''यह सब क्या कर रहे हो? मैंने इतनी सुंदर बिजली की झालर लाकर रखी है, उसका क्या होगा?''

पारिजात की स्वर-लहरी गुम हो गई, उसने उत्तर दिया, ''मैं तो माँ की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। तुम जो कहो, वह भी कर दूँगा। पहले घर में जाकर बच्ची को सँभालो। वह रो-रोकर माँ को परेशान कर रही है।''

इतना सुनते ही रूपा ने आवाज और तेज करके कहा ''तुम बच्ची को नहीं सँभाल सकते थे, यह जाहिलोंवाला काम करना ज्यादा जरूरी था? यह मेरा घर है, आपकी माँ का नहीं। उनसे कहो कि अपने घर में जाकर ये घास-फूस, पत्तों के वंदनवार सजाएँ। मेरे घर में यह सब नहीं चलेगा। एक तो बिना बुलाए आ धमकीं, दूसरे अंट-शंट सजावट करा रही हैं।''

माँ के अपमान से पारिजात का चेहरा काला पड़ गया। वहाँ बाहर से आए कुछ और लोग भी मौजूद थे। पत्नी के इस बरताव से वह आजिज आ चुका था। एक ओर माँ और पिता हैं, जो गाँव में जी तोड़ मेहनत करके खेती करा रहे हैं और जो भी पैदावार होती है, उसे हर महीने यहाँ देने आते हैं। जो अनाज बचता है, उसे बेचकर हमारे बैंक खाते में डालते रहते हैं। मैंने कई बार समझाया भी कि अपने लिए बचाकर कुछ

धन रखिए। आपकी दवा आदि के लिए किसी से माँगना न पड़े, पर माँ और पिताजी दोनों का ही कहना है कि हमें भगवान् ने परिवार दिया है तो वे हमारी सेवा करेंगे ही। दोनों बेटियों की शादी कर दी है। तुम्हारा भी विवाह कर दिया। तुम्हें अच्छी नौकरी मिल गई है। अब हमें किसी बात की चिंता नहीं है।

माँ ममता की प्रतिमूर्ति हैं। तरह-तरह की सौगातें, पकवान लेकर बिना बुलाए कभी पिताजी को भेज देती हैं तो कभी स्वयं आ जाती हैं। माँ-पिताजी कैसे मानें कि उनके बेटे का घर उनका अपना नहीं है।

माँ और पिताजी जिस समय में जीते थे, उसमें घर किसी एक का नहीं होता था। उसके पूरे परिवार, नाते-रिश्तों को होता था। घर किसी एक परिवार का भी नहीं होता, पूरे टोले-मोहल्ले, पूरे गाँव का होता था।

किसी के घर मेहमान आए और सोने की जगह न हो तो वे हमारे घर पर रुकते थे, खाते-पीते थे। पारिजात ने पिता का वह घर देखा था। जहाँ हमेशा नाते-रिश्तेदारों की भीड़ रहती थी।

पिता ने जब शहर में घर बनवाया तो वहाँ भी पूरे गाँव के लोग उसे अपना घर समझकर आते थे, रुकते थे। किसी को कोर्ट-कचहरी का काम हो, अस्पताल में मरीज दिखाना हो, वर दिखाई के लिए आना हो, शहर का घर सबके लिए खुला था। माँ का सारा समय रसोई में कटता था।

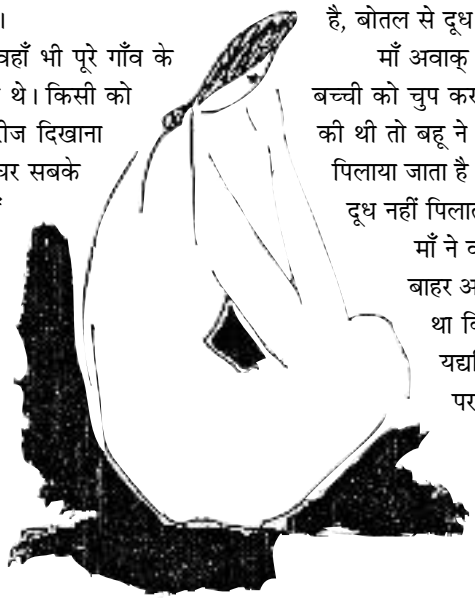

पारिजात और बहनों की पढ़ाई के लिए गाँव से सटे शहर में उन्होंने घर बनवाया था, पर अन्य रिश्तेदारों तथा गाँव के बच्चे भी यहीं रहकर पढ़ते थे।

माँ को रात-दिन रसोई में खटते देखकर पारिजात कभी-कभी पिता पर नाराज भी होता था, 'बाबूजी! आप माँ का भी खयाल करिए, आपकी मेहमाननवाजी में उन्हें कितनी मेहनत पड़ती है।' पिता शांत स्वर में उत्तर देते थे, 'बेटा! पता नहीं, किसके आशीर्वाद, पुरखों के पुण्य-प्रताप से हम इस लायक बने हैं कि लोगों को खिला सकते हैं। तुम्हारी माँ को मैं जानता हूँ, उसे सबको खिलाने में सुख मिलता है। आज तक कभी उसने शिकायत नहीं की कि उसे मेहनत करनी पड़ती है। यदि एक सप्ताह तक कोई मेहमान न आए तो वह चिट्ठी भेजकर नाते-रिश्तेदारों को बुला लेती है कि बहुत दिन हो गए मिले हुए। मौका निकालकर आ जाओ।'

वही माँ उसकी पदोन्नति की खबर सुनकर आई थीं। इसी अवसर पर नए मकान में गृह-प्रवेश की खुशी मनाने का भी मौका था।

नए घर में वास्तु देवता की पूजा और सत्य नारायण की कथा कराने की योजना माँ की ही थी। पहले कथा कराकर फिर शाम को दावत देने सलाह दी थी।

रूपा को अपने पति की पदोन्नति और विशाल बँगले का वैभव दिखाने का अवसर मिल रहा था तो उसने उत्साहपूर्वक तैयारी शुरू कर दी थी।

कल शाम को पारिजात ने माँ-पिताजी को ताँगे से उतरते हुए भारी बैग तथा बड़ा बक्सा उतरवाते देखा तो लपककर पैर छुए और सामान भीतर लाने में मदद की।

रूपा ने चिढ़कर अपनी सहेली से कहा, ''आ गए श्रवण कुमार के माता-पिता। अब तो सारा इंतजाम मुझे ही करना पड़ेगा। श्रवण कुमार तो उन्हीं के पास मँडराते रहेंगे।''

वह भुनभुनाती हुई भीतर चली गई।

बच्ची को कंधे पर थपकियाँ देकर सुलाते हुए माँ कमरे भर में चक्कर लगा रही थीं, पर बच्ची रोती ही जा रही थी।

रूपा ने तेजी से आकर बेटी को सास की गोद से खींच लिया और बोली, ''जरा सी बच्ची को नहीं सँभाल पा रही हैं। उसे भूख लगी है, बोतल से दूध तो पिला ही सकती थीं।''

माँ अवाक् रह गई थीं। अभी कल ही तो उन्होंने रोती हुई बच्ची को चुप कराने के लिए बोतल से दूध पिलाने की कोशिश की थी तो बहू ने झिड़क दिया था, ''दूध घड़ी देखकर टाइम से पिलाया जाता है। जाहिलों की तरह हरदम जब भी बच्चा रोये मैं दूध नहीं पिलाती।''

माँ ने वहाँ से हट जाना ही बेहतर समझा और चुपचाप बाहर आ गईं। उन्हें मन-ही-मन लज्जा का बोध हो रहा था कि कहीं किसी ने बहू की बातें सुन न ली हों। यद्यपि सुननेवाला बहू को ही सरासर गलत ठहराता, पर इसमें उनकी अपनी भी प्रतिष्ठा कम होगी।

कमरे से बाहर निकलते ही उन्होंने देखा कि बहू की एक सहेली उसको ढूँढ़ती हुई भीतर आ रही थी। उसने पूछा, ''माँजी! रूपा कमरे में है?'' उन्होंने 'हाँ' में सिर हिला दिया।

आँगन में आईं तो देखा, बेटा हाथ में वंदनवार की रस्सी थामे विमूढ़ सा बैठा है। आस-पास बैठे खड़े लोगों की चुप्पी से वे समझ गईं कि यहाँ कुछ घटित हुआ है।

माँ अपने बेटे की खुशी के मौके पर उसे चिंतित नहीं होने देना चाहती थीं। उन्हें देखते ही बेटा उठ खड़ा हुआ और खुली वंदनवार को लपेटने लगा।

पारिजात का दोस्त बोल उठा, ''आंटी! यहाँ शहर में आम्र-पल्लव के वंदनवार का महत्त्व कोई नहीं समझता। यहाँ बिजली की झालर लगनेवाली थी, इसीलिए पारिजात चिंता में है कि आपकी आज्ञा का पालन कैसे करे?''

माँ के चेहरे पर मुसकान उभरी, पर देखनेवाले समझ गए थे कि इस मुसकान के पीछे कितनी गहरी पीड़ा है।

माँ ने वंदनवार को बेटे के हाथ से लेकर प्यार से लपेटते हुए कहा, ''कोई बात नहीं बेटा! मैं इसे वापस ले जाऊँगी। अपने छोटे से

आँगन और द्वार पर सजाकर वहाँ पूजा करवा लूँगी। घर तो तुम्हारा ही है, यहाँ भी, वहाँ भी। पूजा का कलश कहीं भी रखा जाए, वंदनवार सजे, तुम्हारा मंगल होगा। वास्तु देवता छोटे से गृह के देवता नहीं हैं, उनका तो पूरे ब्रह्मांड में स्थान है। कहीं भी पूजन करो, वे प्रसन्न होते हैं। पूजा तो मन से होती है। ये सब रीति-रिवाज, सजावट के उपकरण तो अपने संतोष के लिए होते हैं।''

माँ ने वंदनवार को धरती पर रखा। हलदी-सिंदूर से धरती को टीका कर प्रणाम किया और अपने आँचल से बुहारकर माथे से लगा लिया। किसी के पैरों से रौंदने से यह पूजन-स्थली बच जाए, शायद यही माँ का उद्देश्य था।

माँ ने बड़े से बैग में वंदनवार वापस रख लिया। बहुत दिनों के बाद बेटे ने यह वंदनवार बनाया है, इसके माध्यम से मेरे बेटे का हाथ उस आँगन में पहुँच जाएगा, जहाँ उसने जन्म लिया और पला-बढ़ा। वास्तु देवता पुरखों की धरती पर आसन पाकर प्रसन्न हो जाएँगे। आखिर उसी पुराने मकान की नींव ने तो इस नई नींव को जन्म दिया है। जड़ को सींचो तो फुनगी हरियाती ही है।

माँ संतुष्ट-प्रसन्न मुद्रा में बाहर आकर पिता के पास बैठ गईं तो पारिजात का सिर स्वत: मन-ही-मन अपने जन्मदाता के चरणों में बिछ गया।

पारिजात की आँखों के सामने बचपन के वंदनवार झूलने लगे। पत्नी की ओर से मलिन हुआ मन भी साफ हो गया। माँ को किसी के भी मन का मालिन्य दु:ख देगा, क्योंकि वे साक्षात् क्षमा की प्रतिमूर्ति हैं। वह वापस आकर बिजली की सजावट कराने में व्यस्त हो गया।

रूपा बाहर आई तो मन में सोचे हुए उसके सारे वाक् आयुध धराशायी हो गए। सामने कोई प्रतिद्वंद्वी था ही नहीं।

रूपा ने पूछा, ''वंदनवार कहाँ है?''

पारिजात ने माँ के बड़े बैग की ओर इशारा कर दिया।

रूपा ने बैग खोलकर वंदनवार निकाला और पति को थमाते हुए बोली, ''आपसे कोई काम पूरा ही नहीं होता। सारा दिन लगा दिया और वंदनवार तक नहीं टाँग पाए।''

इतना कहकर वह बच्ची को सास की गोद में डालते हुए बोली, ''लीजिए, सँभालिए इसे और यहीं बैठे-बैठे बताती जाइए कि पूजा के लिए क्या-क्या सजावट व तैयारी करनी है। पंडितजी पहुँचनेवाले हैं।'' सबने अनुभव किया कि धूपबत्ती के बिना जले ही सुगंध पूरे वातावरण में फैल गई।

रूपा ने थाल में माँ के थैले से गोबर, हरी दूब, कदली-पत्र आदि निकालकर रखना शुरू कर दिया।

श्रीवत्स, ४५ गोखले विहार मार्ग
लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९३३५९०४९२९

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चेक अथवा बैंक-ड्राफ्ट **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. ११११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

साहित्य-सृजन से राष्ट्रार्चन

● बद्री नारायण तिवारी

भारत की सर्वाधिक प्राचीन भाषा 'संस्कृत' है। उसका अपार साहित्य देश में राष्ट्रीयता के भावों को हृदयंगम करता है, तभी आदिकवि वाल्मीकि का यह वाक्य 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' राष्ट्र-प्रेमियों का 'बोध वाक्य' बन गया कि मातृभूमि स्वर्ग से भी महान् है। देश की एकता को एक सूत्र में बाँधने हेतु महान् अर्थशास्त्री, राजनीति के प्रणेता चाणक्य, उपनाम कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' को सर्वोच्च संस्कृत ग्रंथों में मान्यता प्राप्त है। संस्कृत साहित्य में इस ग्रंथ के सूत्र वाक्य राजनीति के साहित्य में अति उच्चकोटि के माने गए हैं। भारत जब छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित होकर संकट के दौर से गुजर रहा था, ऐसे में महान् सम्राट् चंद्रगुप्त का निर्माण चाणक्य के द्वारा इन्हीं सूत्रों से सफलता को प्राप्त हुआ। संस्कृत साहित्य में 'विदुर नीति', नीतियों पर 'पंचतंत्र' का कई भाषाओं में अनुवाद किया गया। हम तो भारतीय मिथकों, प्रतीकों, बिंबों में जीनेवाले लोग हैं। हम रामायण, महाभारत, भवभूति, कालिदास को छोड़कर न जी सकते हैं, न परंपरा का अर्थ पा सकते हैं। जो लोग साहित्य में युग-परिवर्तन चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परंपरा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। देश अखंड बन सका था, इसी महान् राजनीति के ग्रंथ को आधार बनाकर। अर्थनीति द्वारा चाणक्य ने अखंड भारत का अपना लक्ष्य पूरा किया।

जिस प्रकार बंगाल में क्रांतिकारियों ने 'आनंदमठ' से 'वंदेमातरम्' गाते हुए और देशभक्ति का मूल मंत्र लेते हुए फाँसी पर चढ़कर देशहित में बलिदान दिए, उसी तरह संस्कृत से प्रेरणा लेकर बँगला उपन्यास में संन्यासियों के 'वंदेमातरम्' से देश गुंजायमान हो उठा। देश में राष्ट्रीयता की भावना को साहित्य से बहुत शक्ति मिलती है। विदेश में बँगलाभाषी नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने 'आजाद हिंद फौज', जिसमें जापानियों द्वारा अंग्रेजों की ओर से लड़नेवाले भारतीय युद्धबंदियों की, जो विभिन्न प्रदेशों के भाषा-भाषी होते हुए भी हिंद का प्रयाण-गीत 'कदम-कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा, यह जिंदगी है कौम की, कौम पर लुटाए जा···' लिखकर भारतीय झंडे को विदेश में भारत की ओर से फहराया था। इसी परिप्रेक्ष्य में हम उन पुनर्उत्थानवादियों का विरोध करते हैं, जो समाज में विघटन करानेवाले साहित्य परोसने में ही अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। वे जाति-बिरादरी, सांप्रदायिकता और अंधविश्वासों का साहित्य निर्माण कर पाखंडी साधु-संतों के तथाकथित साहित्य-लेखन को बढ़ावा दे रहे हैं। इसीलिए पाँच सौ वर्ष हुए विश्वकवि तुलसी ने अपने कालजयी साहित्यिक ग्रंथों में कलियुग के नाम पर 'बेचहिं वेद धरम दुहि लेहीं' नामक धार्मिक साहित्य का प्रकाशन-प्रवचन देकर साहित्य को प्रदूषित करने का स्पष्ट संकेत भी दे दिया। स्वर्णित लंका विजय कर, वहीं पर स्थायी शासन कर निवास बनाने की अपेक्षा स्वदेश के 'मम पुरी सुहावन' अयोध्या वापस लौटे। यही तुलसी के शब्दों की राष्ट्रार्चना है।

सुपरिचित लेखक। २९ पुस्तकें एवं लगभग १५० लेख प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित। कई प्रतिष्ठित सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध। मानस संगम कानपुर के संस्थापक अध्यक्ष।

समाज में अनेक समस्याएँ आने पर ही विभिन्न प्रकार का साहित्य अनेक नामों से प्रचारित हो रहा है। दलितोत्थान, नारी समाज पर आधारित दहेज, बाल-विवाह, तलाक, भ्रूण-हत्या तथा अशिक्षा पर आधारित साहित्य-सृजन, नारी साहित्य, दलित समस्याओं पर केंद्रित दलित साहित्य का निर्माण हो रहा है। दलितोत्थान साहित्य-सृजन समाज का उत्थान करनेवाला है, किंतु वहीं पर कामसूत्र का यौन विकृत साहित्य क्लब तथा कॉकटेल पार्टी के द्वारा समाज को विकृत कर रहा है। दूसरी ओर फुटपाथी साहित्य में अपराध कथा को भी बलात्कार कर उसे समाज को अपराध कथा साहित्य नाम से बढ़ावा दे रहा है। यह समाज व देश को प्रदूषित कर रहा है, ऐसे प्रकाशन पर रोक लगनी चाहिए। राष्ट्राराधना में राजनीति को प्रेमचंद के शब्दों के कहे अनुसार 'साहित्य राजनीति के आगे चलनेवाली मशाल की तरह होती है', किंतु इसके ठीक विपरीत हमारे लिए ऐसे राष्ट्रवाद का कोई महत्त्व नहीं, जो हमें वेदों, रामायण, महाभारत, गौतम बुद्ध, महावीर, आदि शंकराचार्य, गुरुनानक, राणा प्रताप, शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, रानी चेन्नम्मा, स्वामी दयानंद, गीता रहस्य के रचयिता बाल गंगाधर तिलक के गणेशोत्सव की स्थापना के साथ ही 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसे हम लेकर रहेंगे' का उद्घोष राष्ट्रीय साहित्य का एक सूत्रवाक्य स्थापित होकर राष्ट्रार्चना में मील का पत्थर बना।

राष्ट्रीयता और संस्कृति पर महाकवि इकबाल की पंक्तियाँ 'यूनान मिस्र रोमां सब मिट गए जहाँ, अब तक मगर है बाकी नामो-निशां हमारा कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा'। इस प्रकार तुलसी के सैकड़ों वर्ष पूर्व अमीर खुसरो ने सर्वप्रथम हिंदवी न जाननेवाला हिंदुस्तानी नहीं हो सकता, यही 'हिंदवी' अपभ्रंश होकर 'हिंदी' कही जाने लगी, जिसे तत्कालीन राजभाषा फारसी में व्यक्त किया, किंतु राष्ट्रार्चना में मशाल बना—'तुर्क हिंदुस्तानियम मन हिंदी गोयम जवाब। शक मिस्त्री न दारम कज अरब गोयम सुखन।' यानी मैं हिंदुस्तान का तुर्क हूँ और हिंदवी में उत्तर देता हूँ। मेरे पास मिश्री की मिठास नहीं कि मैं अरबी में बात करूँ! ज्ञातव्य है कि अमीर खुसरो के समकालीन 'हिंदी' को 'हिंदवी' ही कहा जाता था। यही राष्ट्रार्चन साहित्य-सृजन का परिचय संपूर्ण माना जाएगा।

देश में प्राचीन संस्कृत साहित्य ने 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' से राष्ट्रार्चना कर शुभारंभ किया। वही धारा 'पृथ्वी-राज रासो', 'आल्हा' में मिलती है। मुगल काल में महाकवि भूषण शिवाजी महाराज के साथ युद्धक्षेत्र में जाकर देशप्रेम की ज्वाला को साहित्य में वीर रस में प्रवाहित करते थे, भूषण की 'शिवा बावनी' महाकवि राष्ट्रार्चना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। अंग्रेजों के शासन काल में भी स्वाधीनता की लौ प्रज्वलित करने में प्रात:काल से ही सेनानी कवि पं. वंशीधर शुक्ल की प्रभात फेरियों के जुलूस से गली-कूचों, गाँवों-नगरों में 'उठो सोनेवालो सबेरा हुआ है, वतन के फकीरों का फेरा हुआ है' का उद्घोष राष्ट्रीय धारा को प्रवाहित करने लगा। इसी प्रकार कानपुर के सेनानी कवि पद्मश्री श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' की एक राष्ट्रीय रचना उसी धारा को प्रवाहित करने लगी। एक राष्ट्रीय रचना 'झंडा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा···' ने आंदोलित देशभक्त इस राष्ट्रीय तराने को गाते हुए देश में करोड़ों लोगों को राष्ट्रार्चना से संलग्नता प्रदान की। देश के कोने-कोने से सड़कों पर जुलूसों में गिरफ्तारी देने लगे। इस गीत को साहित्यिक गीत न माननेवालों को राष्ट्रकवि पद्मश्री सोहनलाल द्विवेदी ने स्पष्ट कहा, 'जो रचना मन को झंकृत न करे, उसे मैं काव्य की दृष्टि में मानता ही नहीं हूँ।' महात्मा गांधी ने 'खादी' तथा 'नमक' आंदोलन का शुभारंभ किया, जिसे राष्ट्रकवि द्विवेदी ने राष्ट्रीय धारा से संबद्ध कर एक नई दिशा दी। अमर बलिदानी चंद्रशेखर आजाद की इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क की शहादत के बाद राष्ट्रकवि द्विवेदीजी द्वारा रचित यह रचना, 'वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो, हो जहाँ बलि शीश अगणित एक सिर मेरा मिला लो,' अभी तक समय-समय पर गाई जाती है, जो राष्ट्रार्चना की जीवंतता को शाश्वत रूप प्रदान किए हुए है। इसी तरह की इन पंक्तियों को राष्ट्रीय कवि जगदंबा प्रसाद 'हितैषी' ने अपनी लेखनी से लिखा, जो देश के कोने-कोने में गूँजने लगा—'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले, वतन पर मिटनेवालों का यही बाकी निशां होगा।'

नेताजी ने भारत के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जानेवाली हिंदी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा बनाने का पूर्ण समर्थन किया। विदेश से देश को सर्वप्रथम स्वाधीनता का रेडियो-संदेश भी हिंदी में ही दिया था। गुजराती भाषी महात्मा गांधी के अनुसार, 'बिना राष्ट्रभाषा हिंदी के देश गूँगा रहेगा।' सर्वप्रथम देश में सभी देशों ने अपने राष्ट्रों के झंडे फहराए, उस विदेशी शासन में जर्मन भूमि में भारत को पारसी लेडी मैडम कामा ने 'वंदेमातरम्' लिखे झंडे को भारत की ओर से फहराया था। कानपुर के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' की ये पंक्तियाँ राष्ट्रार्चना की ओर स्पष्ट दिग्दर्शन करती हैं—

अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है,
मुरदा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।
जहाँ नहीं साहित्य, वहाँ देश कहाँ है?
जहाँ नहीं आदर्श, वहाँ उत्कर्ष कहाँ है?

सेनानी महाकवि-मनीषी, सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के कथनानुसार, 'जब हम राजनैतिक दृष्टि से पराधीन थे, तब तो हमारे पास स्वाधीन भाषा थी। जब स्वाधीन हो गए, तब हमारी भाषाएँ पराधीन हो गईं।' आज हम देश की नदियों, सड़कों को जोड़ रहे हैं, जो देश के विकास को गति प्रदान करेंगी। देश की भाषाओं को परस्पर संबद्ध करने से ही देश एकता के सूत्र में होकर विकास-यात्रा की ओर अग्रसर होगा। इन सभी भाषाओं को एक सूत्र में पिरोने का कार्य केवल 'हिंदी' ही कर सकती है। यह राष्ट्रार्चना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसी संदर्भ में कवियों के निर्माता सुकवि गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का नाम प्रमुख है। इनकी एक रचना ही राष्ट्रार्चना की पहचान है—

पावन पुजारी बस एक देश-देवता के,
चाहे जिस पंथ में हों, चाहे जिस देश में।

स्वाधीनता के बाद दो घटनाक्रम ऐसे दृष्टिगत हुए, जिसमें राष्ट्रार्चना का स्वरूप स्पष्ट देखने को मिला। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार, ''इन हजार वर्षों में भारतवर्ष का हिंदीभाषी जन-समुदाय क्या सोच-समझ रहा था, इस बात की जानकारी का एकमात्र साधन हिंदी साहित्य है। हिंदी साहित्य अपने आपमें एक ऐसी शक्तिशाली वस्तु है कि उसकी उपेक्षा भारतीय विचारधारा को समझने में घातक होगी।''

देश को स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् भारत की राजभाषा हिंदी को बनाने हेतु देश की संविधान सभा में मराठी भाषी बाबा साहब भीमराव अंबेडकर, जो लंदन से बैरिस्टर बने, राष्ट्रीय एकता की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत हैं उद्बोधन के कुछ अंश—

''मैं ऐसे प्रांत का हूँ, जिसका अपना इतिहास है और उस इतिहास पर मुझे शर्म आने का कोई कारण नहीं है। मेरी भाषा में ऐसा साहित्य है, जिसका मुझे अभिमान है। इतना होते हुए भी जाहिर करना चाहता हूँ, समूचे हिंदुस्तान की एक ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। उसके लिए मेरी भाषा बलिदान करने को तैयार हूँ। वरना हमारी अखिल भारतीय की बातें खोखली ही ठहरेंगी।'' इसके पश्चात् यह विचार संविधान सभा में अहिंदी भाषी विद्वान् गोपालास्वामी आयंगर ने प्रस्तुत किया था।

अंत में एक बात, जो राष्ट्रार्चना को साकार करने का प्रत्यक्ष दर्शन कराएगी। आप इस घटनाक्रम को जब अनुभव करेंगे कि क्या यह सपना

लघु भारत में दक्षिणी तट पर अनेक द्वीपों का एक समूह, जिसे अंडमान निकोबार द्वीप समूह कहा जाता है, यह केंद्र शासित प्रदेश है। सर्वप्रथम अमर शहीद भगत सिंह के क्रांतिकारी साथी शिव वर्माजी थे। उन्होंने इसी अंडमान द्वीप समूह में २० वर्षों की लंबी सजा काटी थी। अंग्रेजी शासन में लंबे वर्षों की सजावाले कैदियों को यहीं भेजा जाता था, जिसे 'काला पानी' कहा जाता था। वहाँ की आपबीती घटनाएँ तो कभी-कभी शिव वर्माजी स्वयं पूछने पर वर्णन किया करते थे। वर्माजी ने अंग्रेजी-हिंदी में लगभग डेढ़ दर्जन क्रांतिकारी जीवन की घटनाओं पर पुस्तकें लिखीं। इसके पश्चात् मित्रवर युवा साहित्यकार श्री कृष्ण कुमार यादव (आई.पी.एस.) मेरे निवास के सन्निकट कानपुर मुख्यालय डाकघर के उच्च प्रशासनिक पद पर कयरत थे। उनकी पदोन्नति होकर निदेशक डाक सेवाओं के रूप में अंडमान-निकोबार तबादला हो गया। उनसे फोन पर लंबी वार्त्ता में वे बताया करते थे कि यह 'लघु भारत' का स्वरूप है। वहाँ पर सभी प्रदेशों के विभिन्न भाषा-भाषी लंबी सजा पानेवाले भारत के कैदी 'सेल्युलर' जेल में बंद थे। उनके बीच संपर्क भाषा के रूप में विभिन्न प्रांतों के भाषा-भाषी कैदियों की संपर्क भाषा हिंदी को ही माध्यम बनाया गया। नरपुंगव बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर को दो जीवन की सजा दी गई। उन्होंने ही जेल के अधिकारियों तथा विभिन्न प्रदेशों के भाषा-भाषी कैदियों की बोल-चाल की संपर्क भाषा हिंदी को बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। अधिकारियों को कैदियों से संपर्क भाषा हिंदी पुस्तकों के मँगाने के सुझाव पर परस्पर राष्ट्रभाषा में वार्त्ता तथा आजीवन सजा प्राप्त कैदियों के परिवार अंडमान-निकोबार में स्थायी रूप से बस गए। वे सभी हिंदी भाषी ही बने। वहाँ से सभी वर्गों-जातियों के लोग हिंदी भाषी सांसद निर्वाचित कर लोकसभा में भेजते रहे।

''मैं ऐसे प्रांत का हूँ, जिसका अपना इतिहास है और उस इतिहास पर मुझे शर्म आने का कोई कारण नहीं है। मेरी भाषा में ऐसा साहित्य है, जिसका मुझे अभिमान है। इतना होते हुए भी जाहिर करना चाहता हूँ, समूचे हिंदुस्तान की एक ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। उसके लिए मेरी भाषा बलिदान करने को तैयार हूँ। वरना हमारी अखिल भारतीय की बातें खोखली ही ठहरेंगी।''

भारतवर्ष की जीवन-शैलियों, रीति-रिवाजों, आस्था-विश्वासों, भाषा और बोलियों को लघु कलेवर में सँजोए अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह सही अर्थों में 'लघु भारत' है। कभी काला पानी नाम से कुख्यात अंडमान-निकोबार द्वीप समूह अब 'मुक्ति तीर्थ' के रूप में समादृत है। स्वतंत्रता-सेनानियों की चरणरज से पावन यह धरती 'पुण्य भूमि' है। अंग्रेजों की दुर्दमनीयता के विरुद्ध 'वंदे मातरम्' का जयघोष करनेवाले स्वाधीनता-संग्राम के महानायकों के अदम्य साहस और निर्भयता की भूमि है। मानव के कोल्हू में जोते जाने की नृशंसता और करुण गाथा की भूमि है। यह द्वीप समूह स्वामी विवेकानंद के सपनों को साकार रूप देता हुआ समाज के जाति-पाँति, छुआछूत और ऊँच-नीच की दुर्भावनाओं से सर्वथा मुक्त है। इसीलिए लेखक-संपादक 'द्वीप लहरी' डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी ने वहाँ निवास करते हुए अपनी काव्य-पंक्तियों में द्वीप समूह के जनजीवन के संदर्भ में प्रस्तुत पंक्तियों में रेखांकित किया है—'वर्ण-वर्ण के खिले फूल सम, आदिम, नागर अधिवास यहाँ जन-मन की डाली पर हरदम/छाया रहता मधुमास जहाँ।' हर तरह के लोग, हर तरह की जातियाँ, हर तरह की परंपराएँ देखने को मिलती हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड़, उड़िया, मलयालम, पंजाबी, असमी, गुजराती, मराठी, बँगला आदि भाषाओं का प्रयोग होता है; किंतु संपर्क भाषा के रूप में 'हिंदी' ही समादृत होती है। यह उन दिनों से ही यहाँ संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग होती है, जब स्वतंत्रता-संग्राम सेनानियों अथवा अपराधियों का प्रथम दल बंदी के रूप में इस द्वीप समूह पर आया था। सेल्यूलर जेल में विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच हिंदी ही संपर्क भाषा थी। सावरकर ने न केवल कैदियों, बल्कि जेल अधिकारियों को हिंदी सिखाने का कार्य किया था। उनके कथनानुसार कि हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। उन्होंने ही कैदियों से हिंदी पुस्तकें मँगाने की बात कही।

वास्तविकता में अंडमान-निकोबार में स्त्री शिक्षा, यानी महिलाओं का शिक्षण प्रतिशत पुरुषों की तुलना में कम नहीं है। परदा प्रथा का प्रचलन नहीं है और सभी विभागों में निम्न से उच्च पदों पर महिलाएँ कार्यरत हैं। इसीलिए स्वामी विवेकानंद तथा महात्मा गांधी का राष्ट्रार्चना का सपना इस द्वीप में ही साकार रूप ले सका है। यहाँ राष्ट्रार्चना का सपना छुआछूत और ऊँच-नीच अथवा समाज जाति-पाँति के कथन से पूर्णरूपेण मुक्त है। देश में यही एकमात्र सर्वप्रदेशीय एवं विभिन्न भाषी होने के बाद भी लोकसभा में हिंदी वक्ता ही सदैव निर्वाचित होता है। इसीलिए इस द्वीप समूह को स्वामी विवेकानंद तथा महात्मा गांधी के सपने को साकार करनेवाला प्रदेश कहा जाता है। इसका मूल कारण राष्ट्रभाषा हिंदी द्वारा राष्ट्रार्चना की महत्ता और इसके द्वारा उद्देश्य का सपना साकार होना है। इसीलिए केरल के लेखक एवं कविवर डॉ. एन. रमन नायर (अध्यक्ष, हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, कोचीन) द्वारा 'राष्ट्र भारती' शीर्षक की पंक्तियों में राष्ट्रार्चना की मूल भावना समाहित है—

राष्ट्र राष्ट्र की राजधाती है। राष्ट्र राष्ट्र का राष्ट्रगीत है।
राष्ट्र राष्ट्र का संविधान है। राष्ट्र राष्ट्र का राष्ट्र केतु है॥
राष्ट्र चिह्न है, राष्ट्र पक्षी है। राष्ट्र राष्ट्र की राष्ट्र वाणी है॥
हिंदी हमारी राष्ट्रवाणी है। हम एक चित्त हैं, हम कटिबद्ध हैं॥
हम एक कंठ हो करेंगे नारा। राष्ट्रभारती हिंदी की जय हो।
हिंदी हमारी राष्ट्र वाणी है। हिंदी हमारी राष्ट्र भाषा है॥
जय हिंदी। जय नागरी॥

'मानस संगम', महाराज प्रयाग नारायण मंदिर, शिवाला
कानपुर-२०८००१ (उ.प्र.)

डायल सौ नंबर

● दया दीक्षित

संगोष्ठी अब तक तो शुरू हो चुकी होगी! शायद कृति लोकार्पित भी हो गई हो। 'शीघ्र आइए' का आयोजकों का यह अनुरोधी फोन आए हुए भी आधा घंटे से ज्यादा समय हो गया था। वह स्वयं समय की बेहद पाबंद थी। समय की कीमत वह जानती थी, प्रतिक्षण की परवाह थी उसे। पर वह करे भी तो क्या? उससे 'वह' नहीं हो पाता! मगर इस समय उसे लग रहा था, रोहन की बात मानकर 'नहीं है' कहला देती तो कम-से-कम समय पर तो पहुँच जाती। महीनों का समय लगता है, योजनाएँ बनती हैं, लोगों से संपर्क साधा जाता है, तब कहीं एक अच्छा कार्यक्रम अस्तित्व लेता है। उसमें समय से न पहुँचना अपने साथ-साथ उन सबके प्रति अन्याय है, ज्यादती है, जो वहाँ बैठे तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं।

अगर उद्वेलितजी को 'न' कह देती, उनसे न मिलती तो इस समय संगोष्ठी की शोभा बढ़ा रही होती! वाकई उसे अपना स्तर, महत्त्व और गरिमा बनाकर रहना चाहिए।

'अपना स्टेटस मेनटेन करो।' कहते-कहते थक गए पतिदेव! पर उससे कभी सध नहीं पाया। द्वार आए हुए को 'नहीं है' के झूठ का डंडा मारकर भगाने का शऊर! शऊर नहीं, यह तो बेशऊर होना है उसके तईं। लेकिन रोहन का कहना है, 'अस्मिता, यह बेशऊरी नहीं, नीतिगत शऊर है। सज्जनता का ठेका तुम्हीं ने ले रखा है क्या? उन्हें आने से पहले फोन करना चाहिए था कि नहीं? क्या वे तुम्हारी नौकरी की व्यस्तताएँ नहीं जानते? जब उन्हें तुम्हारे समय की, तुम्हारी कोई कीमत नहीं, चिंता नहीं, जब वे इतने बेशर्म हैं, तो तुम्हीं क्यों सिरदर्दी लेती हो।

'और फिर यह भी तो देखो कि तुम कहीं जाती हो, तो फोन करके, समय लेकर जाती हो। तुम्हारे पास भी लोग फोन करके ही आते हैं। फिर ये कौन से ऐसे तीसमार खाँ हैं, जो जब चाहा, मुँह उठाकर चले आए!

'ढीठ इतने कि तुम्हारे साथ मैंने भी कई बार शिष्टता से इनसे कहा है कि फोन करके ही आया करें। हर तरह से ऐसा करना ठीक है। कैसे पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी हैं? उसपर ऐसा भी नहीं कि तुम्हें घर पर ही रहना कहा है, तो चलो कोई बात नहीं। खुद तैयार हो रही हो जाने के लिए, ड्राइवर मारुतिकमल तो गाड़ी सड़क पर निकाल चुका है और तुम हो कि यह बेसबब मिलना···भई, मुझे तो समझ में नहीं आता, फिर जैसी तुम्हारी मरजी! अभी उन्हें अपना समय दोगी और फिर ड्राइवर को परेशान करोगी—जल्दी चलो···जल्दी चलो, तेज भगाओ। वह बेचारा कितना भगा पाएगा? आखिर मारुति है, मारुतिनंदन तो नहीं कि हवा में उड़ा और पलक झपकते ही पहुँचा दिया।'

यह सब सोचते-सोचते हँसी आ गई अस्मिता को। रोहन भी क्या-क्या बोलते चले जाते हैं?

सुपरिचित लेखिका एवं प्राध्यापिका। अब तक एक कथा-संग्रह, चार संपादित एवं पाँच कृतियाँ समीक्षात्मक। नौ सम्मान तथा एक पुरस्कार प्राप्त। दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण। छोटे-बड़े दस सम्मान प्राप्त।

ड्राइवर मारुतिकमल ने चौंककर अस्मिता की ओर देखा मिरर में। सिर घुमाकर पूछने लगा, ''मैम, कुछ कहा क्या?''

''नहीं, कुछ नहीं!'' कहते-कहते उसने सड़क पर देखा, जहाँ कुछ ही दूरी पर पर्स पड़ा हुआ है। पर्स का आकार औसत से कुछ बड़ा था, जैसा कि आमतौर पर कार्यालयी महिलाओं का होता है। अस्मिता का कर्तव्यबोध तत्क्षण जाग्रत् हो गया, उसने मोबाइल निकाला और सौ नंबर डायल करके इस पर्स की जानकारी दी। सौ नंबर पर पुलिस से उसे संबंधित चौकी का नंबर मिला, अस्मिता ने अविलंब वहाँ फोन कर सारी जानकारी दी। चौकी इनचार्ज से अस्मिता को पिकेटिंग में लगे पुलिसकर्मियों में से एक का नंबर दिया गया। संपर्क करने पर पिकेट पुलिसकर्मी ने अस्मिता को वहीं रुकने को कहा, चंद मिनटों में दो पुलिसकर्मी गाड़ी के पास खड़े थे। अस्मिता ने अपनी उपस्थिति में वह पर्स पिकेटवालों को ले जाते देख इत्मीनान की साँस ली।

इधर ड्राइवर मारुतिकमल ने चुपचाप यह घटनाक्रम देखा। यह वह सोचकर हैरान था कि कैसे अजीब होते हैं ये लेखक भी! जब घर से निकली थीं, तब कितनी व्यग्र और उतावली थीं—जल्दी चलो, तेज चलो के अलावा मैडम को कुछ नहीं सूझ रहा था! अभी अचानक हँसने लगी थीं। और अब देखो? पर्स और पुलिस में पड़ गईं! कोई पूछे इनसे, यह सब करने में देर नहीं हो रही?

अब बेचारे ड्राइवर को कौन बताए, कौन समझाए कि तुम्हारी मैडम की प्राथमिकताएँ वैसी नहीं हैं, जैसी दुनियादारों की होती हैं। जिन बातों पर दुनिया मरती है, उनमें से कई को तो तुम्हारी मैडम दो कौड़ी मोल से ज्यादा भाव नहीं देतीं।

□

लाजिमी था कि संगोष्ठी में देर से पहुँचने की कैफियत अस्मिता को देनी पड़ती। मगर आयोजकों को ही क्या, पूरे नगर को यह मालूम उसके विषय में कि समय की पाबंद अस्मिता हर जगह नियत समय पर पहुँचती है। आज निश्चित रूप से किसी अपरिहार्य वजह से ही उन्हें

विलंब हुआ है, सो किसी ने भी न उनसे कैफियत तलब की, और न ही 'सर्फाट' के फेर में अस्मिता ने गोष्ठी का समय बरबाद किया।

दो दिन बाद के 'दैनिक जागरण' अखबार में अस्मिता ने जो खबर पढ़ी, उससे वह आत्मसंतोष और आनंद से प्रफुल्लित हो उठी। मगर पति को जब उसके आनंद का कारण मालूम हुआ तो वे भड़क उठे। उन्होंने अस्मिता को आड़े हाथों लिया—''क्या जरूरत थी लावारिस सामान को देखने-ताकने की? उस पर्स में कुछ विस्फोटक होता, तो लेने-के-देने पड़ जाते। पुलिस परेशान करती सो अलग। मतलब से मतलब नहीं रखती हो, दूसरों के फटे में टाँग अड़ाने की बुरी आदत है तुममें।''

अभी पति की नाराजगी और बढ़ती कि अस्मिता बीच में ही तुनक उठी, ''अच्छा, मैं दूसरों के फटे में टाँग अड़ा रही थी। और तुम! तुम कुछ कम हो क्या?''

''मैं?'' रोहन के स्वर में आश्चर्य था।

''हाँ तुम, बन तो ऐसे रहे हो, जैसे कभी कुछ नहीं किया। उस दिन सामनेवाले अग्निहोत्रीजी के यहाँ चोर घुस आए थे। पूरा मुहल्ला देखता रहा, किसी की हिम्मत नहीं थी कि अग्निहोत्रीजी के घर में झाँकता। और तुम? दरवाजे के पीछे रखी कुल्हाड़ी लेकर भागे थे उनके यहाँ? चोरों को खदेड़ दिया था तुमने। तो वो क्या था? वह दूसरों के फटे में टाँग अड़ाना नहीं था क्या? कितना खतरा मोल लिया था तुमने उस मौके पर?''

पतिदेव तुरंत बोले, ''मैं मर्द हूँ। मुझे वह शोभा देता है। मगर तुम औरतजात हो। कहीं कुछ हो जाता तो?''

''ऐसे कैसे हो जाता? और ये मदर-औरत क्या लगा रखा है? मर्द, औरत से बढ़कर एक जिम्मेदार नागरिक और संवेदनशील व्यक्ति हूँ मैं।''

''वाह री संवेदना! वहाँ कार्यक्रम में जो तुम्हारा इंतजार कर रहे थे, उनके लिए तुम्हारी संवेदना नहीं थी क्या? तुम्हारी वजह से इतने बड़े कार्यक्रम में व्यतिक्रम हुआ होगा। इसका तुम्हें कोई अफसोस नहीं? सड़क पर एक तुम्हीं अकेली तो नहीं थी और भी तो कई लोग गुजर रहे होंगे?''

''फिर तो तुम यह भी कहोगे कि और लोग भी तो हैं, वे क्यों नहीं हैं लेखक? क्यों नहीं है संवेदनशील···ये तुम्हारी बिल्कुल नासमझी की बातें! मैं भी कह सकती हूँ कि एक तुम्हीं तो नहीं, और भी तो लोग थे मुहल्ले में? तुम्हीं क्यों कुल्हाड़ी लेकर भागे चोरों को खदेड़ने?

तुम कार्यक्रम की बात कर रहे हो, मुझे अफसोस था देर से जाने का। मगर मेरी वजह से व्यवधान नहीं हुआ। यही तो हुआ कि पहले न बोलकर, दो वक्ताओं के बाद बोली। मुझे बोलने का जो दायित्व दिया गया था, उसे मैंने सफलतापूर्वक पूरा किया। मगर पर्स का ध्यान न करती, अनदेखा करती, तो कोई भी उसे उठा ले भागता।

''सौ नंबर रिसीव करनेवाली ने भी मुझसे कहा था, 'मैडम, आप ही पर्स को उठाकर थाने में दे देतीं।' तब मैंने उनसे कहा था, 'मैम, पुलिस को इत्तला देना मैंने ठीक समझा। अब आगे का काम पुलिस का है। किसी लावारिस वस्तु को उठाकर मैं अनावश्यक रूप से परेशान होना नहीं चाहती। पता नहीं पर्स में क्या हो?' मेरी ये बातें सुनकर उसने थानेदार का नंबर दिया था, और मजे की बात यह कि थानेदार ने भी मुझसे यही कहा था। तब थानेदार से ही मैंने पूछा था कि आपके थाने में पिकेट ड्यूटी नहीं होती क्या? मेरे मुँह से यह सुन उसे बोध हुआ तो उसने पिकेटिंगवालों के मोबाइल नंबर मुझे दिए थे।

''अब इसमें खतरे की कौन सी बात थी। यह क्यों नहीं सोचते कि उस पर्स की खबर अखबारवालों ने छापी और अगले ही दिन इस खबर को पढ़ वह महिला थाने में जाकर अपना पर्स ले आई। आज तुमने भी तो अखबार में यह घटना पढ़ी है। तारीफ भी कर रहे थे कि धन्य है वह अनजान महिला, जिसने इतनी जहमत उठाई, थाना-पुलिस में पड़ने का जोखिम लिया। और अब यह जानकर कि वह धन्य महिला मैं ही थी, तो भड़क रहे हो!''

अस्मिता के इन ठोस तर्कों के आगे पतिदेव निरुत्तर हो गए। इतना ही कहा, ''अपने मन की ही करो, जो अच्छा लगे। तुमसे तो बहस करना ही बेकार है।''

अस्मिता को चुहल का मौका मिल गया, ''निमंत्रण-पत्र तो दिया नहीं था, फिर क्यों चले आए बहस करने।''

शरारत भरी शोख नजरों से उसने पति को देखा। आँखों के इस खुले आमंत्रण से पतिदेव भला क्यों अछूते रहते! जब तक वे अस्मिता को आलिंगनबद्ध करते, उससे पहले ही वह फुरती से स्नानगृह की ओर हँसती हुई भागी। गरमी का मौसम था, अस्मिता की आदत सी बन गई थी कि दिन में वह दो-तीन बार स्नान करती थी। अभी भी वह स्नान करने ही आई थी। वस्त्र उतारकर रखते वह अनोखे आनंद में निमग्न थी। आईना चकित होकर उसकी मुसकराहट देख रहा था। दीवारें परस्पर 'क्या बात है आज' बतिया रही थीं। 'आज कुछ खास बात ही है', कहती हुई नन्ही सी ट्यूबलाइट की दूधिया उजली हँसी से पूरा स्नानगृह प्रकाशित हो उठा था।

स्नान करती, आत्मिक सुख में डूबी अस्मिता सोच रही थी कि उसके कर्तव्यबोध और सजगता ने किसी का जीवन बचा लिया था, शिक्षा बचा ली थी, धन बचा लिया था···सचमुच वह साहित्य के हित-सहित को जीना सीख रही है। हे ईश्वर, तुम्हें लाखों-लाख धन्यवाद! प्रभु, मेरी ऐसी ही गति-मति बनाए रखना। अस्मिता भावुक हो उठी। भावविभोर अस्मिता की आँखों से निकले आँसू स्नानजल से मिलकर एकाकार हो गए। मन हलका और प्रफुल्लित हुआ, प्रफुल्लित मन की आवाज होंठों तक आई और गीत निसृत होने लगा—'अपने लिए जिए तो क्या जिए, ऐ दिल, तू जी जमाने के लिए···

''कॉफी ठंडी हो रही है'' कहते-कहते पतिदेव ने स्नानगृह के द्वार को थपथपाया।

''आ रही हूँ···'' अस्मिता ने पति को उत्तर देने के साथ ही साथ सिर पर पानी ढारना बंद कर दिया। चंद मिनटों में बाहर आ गई। दंपती सुखी मन से कॉफी पीने लगे।

''चाचा अस्वस्थ हैं, उन्हें देखने जा रहा हूँ। तुम्हें चलना है?'' रोहन के पूछने पर अस्मिता ने असहमतिसूचक सिर हिलाया।

बोली, ''तुम जा ही रहे हो, कल मैं चली जाऊँगी।'' इस तरह दोनों दिन उनके हालचाल भी मिल जाएँगे और अगर उनका कुछ काम हुआ तो वह भी हो जाएगा।''

रोहन के जाने के बाद द्वार बंद करके अस्मिता अपने कक्ष की ओर जा ही रही थी कि मोबाइल की रिंगटोन बज उठी।

''हैलो!''

''आप अस्मिताजी हैं?''

''जी हाँ, मैं अस्मिता; आप?''

''मैडम, मैं थाना चीमा से थानेदार राघव, पहचाना?''

''जी हाँ-जी हाँ, बताएँ?'' अस्मिता ने मुसकराकर जवाब दिया।

''मैडम, आपको धन्यवाद देना था। आप जैसे लोगों की आज बहुत जरूरत है।''

''और सर, आप जैसे जिम्मेदार ऑफिसर्स की भी आज बहुत जरूरत है। वरना तो···''

''मैडम, आप जो कहना चाहती हैं, मैं जानता हूँ। आप ही क्या आमतौर पर यह मान लिया गया है कि पुलिस नाकारा है, काहिल है, भ्रष्टाचारी है···होगी, पर इस महकमे में भी हर जगह की तरह कुछ दागदार तो कुछ बेदाग हैं। आपके कर्तव्यबोध ने मुझे भी प्रेरित किया, इसलिए उसी समय प्रेसवालों को पर्स की खबर करा दी और देखिए अगले ही दिन, यानी कल जब वह महिला पर्स लेने आई, तो पूछताछ-तफतीश से साबित हो गया कि पर्स उसी का है। उसी ने बताया कि पर्स में ए.टी.एम. मोबाइल, एक्सरे रिपोर्टस, शैक्षणिक दस्तावेज, प्रमाण-पत्र तथा बीस हजार रुपए हैं।''

''जी हाँ, यह तो मैंने भी पढ़ा था जागरण में।''

''मैडम, पर्स की सुपुर्दगी के वक्त मैंने एक बार फिर प्रेसवालों को बुलाया था। प्रेसवालों को संपूर्ण घटनाक्रम प्रेरक लगा, तो उन्होंने भी तफतीश से इस घटना को कवरेज दिया।''

''जी, बिल्कुल। और सर, उन लोगों को भी जवाब मिल गया है, जो कहते हैं कि सौ नंबर डायल करने से कुछ नहीं होता। जबकि मैंने तो जब भी सौ नंबर डायल किया, मुझे अपेक्षित सहायता मिली है।''

''ओ.के. मैम! एक बार फिर मैनी-मैनी थैंक्स।''

''जी, नमस्कार।''

१२८/३८७ वाई वन ब्लॉक,
किदवई नगर, कानपुर-२०८०११ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४१५५३७६४४

साहित्य अमृत

भारत सरकार (गृह मंत्रालय) के राजभाषा विभाग के
पत्रांक ११०१४/८/९६-रा.भा. (प) द्वारा
केंद्रीय सरकार के मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/
सार्वजनिक उपक्रमों/बैंकों/स्वायत्त निकायों/संस्थाओं आदि के लिए
एक विशिष्ट मासिक साहित्यिक पत्रिका के रूप में अनुशंसित एवं अनुमोदित।
एक प्रति का शुल्क : तीस रुपए
एक वर्ष का शुल्क : चार सौ रुपए
शुल्क मनीऑर्डर अथवा बैंक-ड्राफ्ट द्वारा 'साहित्य अमृत' के नाम
४/१९ आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२ के पते पर भेजा जा सकता है।
राजभाषा हिंदी तथा सत्साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए
संस्थाओं का सहयोग अपेक्षित है।

हिंदी की प्रकृति के भव्य दर्शनों के लिए कर्ता, कर्म, कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य आदि की परिभाषाएँ बदलना आवश्यक

● **बदरीनाथ कपूर**

यदि हमें हिंदी भाषा की रचना-प्रक्रिया, अर्थात् आंतरिक व्यवस्था के भव्य स्वरूप के दर्शन करने हों, तो हमें कर्ता, कर्म, कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य आदि हिंदी व्याकरण के इन मूलभूत पारिभाषिक शब्दों की प्रचलित परिभाषाओं को हिंदी की प्रकृति पर आधारित करना होगा। प्रश्न उठेगा कि क्या उक्त पारिभाषिक शब्दों की परिभाषाएँ हिंदी की प्रकृति पर आधारित नहीं हैं? विनम्रतापूर्ण उत्तर होगा—नहीं। कृपया, मेरे इस कथन को दंभपूर्ण या दुस्साहसिक न समझें। पिछले छह दशकों से इन परिभाषाओं पर मंथन करते हुए इनके खरेपन को विविध वाक्यों की कसौटी पर कसता रहा हूँ। अत: उक्त निष्कर्ष अनुमान-आधारित नहीं, वरन् अनुभव-आधारित है। प्रचलित परिभाषाओं में समय-समय पर तीन प्रकार के दोष दिखाई देते हैं। पहला दोष तो यह है कि ये परिभाषाएँ स्पष्ट नहीं हैं। विद्वानों में आज भी भ्रम रहता है कि अमुक वाक्य का कर्ता कौन सा नामपद है अथवा अमुक वाक्य कर्तृवाच्य है या कर्मवाच्य। दूसरा दोष है, इन परिभाषाओं में अव्याप्ति या अतिव्याप्ति होना। तीसरे, इन परिभाषाओं के आधार पर जो वर्गीकरण हुए हैं, उनका उपयोगी या संतोषप्रद न होना। इन दोषों का कारण संभवत: यह है कि प्रचलित परिभाषाएँ उधार की हैं, हिंदी की प्रकृति पर आधारित नहीं हैं।

अब प्रश्न है कि किस परिभाषा को हिंदी की प्रकृति पर आधारित माना जाए? उत्तर होगा, जो हिंदी भाषा-भाषियों की दृष्टि में स्पष्ट और बोधगम्य हो, अव्याप्ति या अतिव्याप्ति दोष से रहित हो और जहाँ तक हो सके, अपवादों से रहित हो।

पहले कर्ता और कर्म की परिभाषाओं पर विचार करेंगे, तत्पश्चात् कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य की परिभाषाओं पर। उक्त सभी पारिभाषिक शब्दों की तीन-तीन परिभाषाएँ दी गई हैं। हर पारिभाषिक शब्द की पहली परिभाषा आचार्य कामताप्रसाद गुरु की है, दूसरी आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की और तीसरी 'प्रस्तावित' है।

कर्ताकारक और कर्मकारक

१. कर्ताकारक

१. क्रिया से जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है, उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्ताकारक कहते हैं।

—पं. कामताप्रसाद गुरु

२. क्रिया के करने न करने में जो स्वतंत्र हो। (स्वतंत्र कर्ता)

—पं. किशोरीदास वाजपेयी

सुपरिचित कोशकार एवं लेखक। वैज्ञानिक परिभाषा कोश, अंग्रेजी-हिंदी पर्यायवाची कोश, शब्द-परिवार कोश, हिंदी अक्षरी, लोकभारती मुहावरा कोश, परिष्कृत हिंदी व्याकरण, सहज हिंदी व्याकरण, मीनाक्षी हिंदी-अंग्रेजी कोश, मीनाक्षी अंग्रेजी-हिंदी कोश, नूतन पर्यायवाची कोश, लिपि वर्तनी और भाषा, हिंदी व्याकरण की सरल पद्धति, आधुनिक हिंदी प्रयोग कोश, बृहत् अंग्रेजी-हिंदी कोश, व्यावहारिक अंग्रेजी-हिंदी कोश, मुहावरा तथा लोकोक्ति कोश, व्याकरण-मंजूषा, हिंदी प्रयोग कोश आदि। कई सम्मान तथा अनेक पुस्तकें उ.प्र. शासन द्वारा पुरस्कृत।

३. क्रियापद की मुख्य क्रिया से बना कर्तृवाचक कृदंत, जिसे इंगित करे, वह कर्ता। *—'प्रस्तावित'*

[आना, जाना, पढ़ना, लिखना आदि क्रियाएँ संज्ञा की तरह और पुंलिंग रूप में भी प्रयुक्त होती हैं। उसी संज्ञारूप में 'वाला' प्रत्यय के योग से कर्तृवाचक कृदंत बनता है—आना से आनेवाला, जाना से जानेवाला, पढ़ना से पढ़नेवाला, लिखना से लिखनेवाला आदि।]

२. कर्मकारक

१. जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को कर्मकारक कहते हैं।

—पं. कामताप्रसाद गुरु

२. 'हिंदी शब्दानुशासन' में कर्म की परिभाषा तो नहीं दी गई, परंतु विवेचित विवरण से निम्नलिखित अंश उद्धृत कर सकते हैं—

कर्ता के अनंतर कर्म ही महत्त्वपूर्ण कारक हैं, जिसका क्रिया से निकटतम संबंध है। क्रिया का फल भी उन दो कारकों पर पड़ता है, कभी कर्ता पर, कभी कर्म पर। अन्य किसी कारक पर कभी भी क्रिया का फल या परिणाम नहीं पड़ता। *—पं. किशोरीदास वाजपेयी*

३. क्रियापद की मुख्य क्रिया से बना कर्मवाचक कृदंत जिसे सूचित करे। *—'प्रस्तावित'*

[सकर्मक क्रियाओं के आकृदंत (भूतकृदंत) रूप में 'जानेवाला' के योग से कर्मवाचक कृदंत बनते हैं, जैसे 'पढ़ना' से पढ़ा जानेवाला, 'लिखना' से लिखा जानेवाला, 'देना' से दिया जानेवाला, 'करना' से किया जानेवाला।]

दो वाक्य लीजिए—

(१) कौआ उड़ता है। (२) पतंग उड़ती है।

गुरुजी के मत से 'कौआ' और 'पतंग' दोनों कर्ता हैं, क्योंकि 'उड़ना' क्रिया उनके संबंध में विधान करती है। वाजपेयीजी की परिभाषा के अनुसार 'कौआ' तो कर्ता है, क्योंकि वह उड़ने या न उड़ने के लिए स्वतंत्र है। परंतु 'पतंग' कर्ता नहीं, क्योंकि वह उड़ने या न उड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं है। 'प्रस्तावित' परिभाषा के अनुसार 'कौआ' और 'पतंग' दोनों कर्ता हैं। उड़नेवाला—'कौआ', उड़नेवाली—'पतंग'।

(३) रोटी बनती है। (४) खिचड़ी पकती है।

गुरुजी की परिभाषाओं के अनुसार 'रोटी' और 'खिचड़ी' दोनों संज्ञाएँ कर्ता भी सिद्ध होती हैं और कर्म भी। कर्ता इसलिए कि 'बनना' क्रिया 'रोटी' के संबंध में और 'पकना' क्रिया 'खिचड़ी' के संबंध में विधान करती हैं और कर्म इसलिए कि 'बनना' का फल 'रोटी' पर पड़ता है और 'पकना' का फल 'खिचड़ी' पर पड़ता है। वाजपेयीजी की परिभाषा के अनुसार रोटी और खिचड़ी बनने और पकने में स्वतंत्र नहीं, इसलिए कर्ता नहीं हैं। कर्ता की 'प्रस्तावित' परिभाषा के अनुसार 'रोटी' और 'खिचड़ी' दोनों कर्ता हैं। बननेवाली—रोटी और पकनेवाली—खिचड़ी। अर्थात् कर्तृवाचक कृदंत के अनुसार दोनों कर्ता हैं।

(५) घोड़ा एक जानवर है।

(६) मंत्री राजा हो गया।

(७) साधु चोर निकला।

(८) सिपाही सेनापति बन गया।

उक्त चारों वाक्य गुरुजी के व्याकरण से उद्धृत किए गए हैं। गुरुजी ने उक्त चारों वाक्यों में क्रमशः जानवर, राजा, चोर और सेनापति को कर्ता बताया है। सीधी सी बात है कि जो विधेय का अंश है, वह 'कर्ता' हो ही नहीं सकता। एक जानवर है, राजा हो गया, चोर निकला और सेनापति बन गया, ये विधेय हैं, जो कर्ता के संबंध में विधान करते हैं। आचार्य वाजपेयी के अनुसार मंत्री और सिपाही तो कर्ता हैं, क्योंकि 'राजा होने' और 'सेनापति बनने' के लिए स्वतंत्र हैं। परंतु 'घोड़ा' जानवर होने के लिए और 'साधु' चोर निकलने के लिए स्वतंत्र है कि नहीं, कहना कठिन है। 'प्रस्तावित' परिभाषा के अनुसार घोड़ा, मंत्री, साधु और सिपाही ही कर्ता हैं—

(जानवर) होनेवाला—घोड़ा

(राजा) होनेवाला—मंत्री

(चोर) निकलनेवाला—साधु

(सेनापति) बननेवाला—सिपाही

'हिंदी क्रियाओं की रूप-रचना' में सुझाव दिया गया है कि जब कर्ता की पहचान में भ्रम हो तो क्रिया के निकटस्थ पद की सहायता ली जा सकती है। हम यह भी कह सकते हैं कि पूरक की अपेक्षा कर्ता को ही प्रधानता मिलती है, जैसे—

(९) लड़का आगबगूला हो गया।

(१०) लड़की आगबगूला हो गई।

'आगबगूला' संज्ञा पुंलिंग तथा पूरक है। 'लड़की आगबगूला हो गई' में क्रिया कर्ता 'लड़की' स्त्रीलिंग एक वचन के अनुरूप है, पूरक 'आगबगूला' के लिंग-वचन के अनुरूप नहीं।

(११) राम को निमंत्रण-पत्र आया है।

(१२) मुझे संदेश मिला था।

(१३) उसके लड़का हुआ।

(१४) उसके तीन गाड़ियाँ हैं।

उक्त वाक्यों में विधान किसके संबंध में किया गया है, विवादास्पद है और कौन सा नामपद करने न करने, के लिए स्वतंत्र है; इसका निर्णय भी सरल नहीं है। हाँ, कुछ विद्वान् राम को, मुझे, उसके और उनके को कर्ता मानते हैं और कुछ निमंत्रण-पत्र, संदेश, लड़का और तीन गाड़ियों को कर्ता मानते हैं। सबके तर्क और दलीलें भी अलग-अलग हो सकती हैं। 'प्रस्तावित' परिभाषा के कर्तृवाचक कृदंत के अनुसार निमंत्रण-पत्र, संदेश, लड़का और तीन गाड़ियों को कर्ता कह सकते हैं—

आनेवाला—निमंत्रण-पत्र

मिलनेवाला—संदेश

होनेवाला—लड़का

होनेवाली—तीन गाड़ियाँ

एक बात और। राम को, मुझे, उसके और उनके को कर्ता माननेवाले निमंत्रण-पत्र, संदेश, लड़का और तीन गाड़ियों को कर्म भी मानते हैं। परंतु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। 'आना', 'मिलना' और 'होना' क्रियाएँ अकर्मक हैं। इनके कर्म हो ही नहीं सकते।

(१५) गुरु ने शिष्य को बुलाया है।

(१६) राम ने रावण को मारा।

(१७) सोहन ने पुस्तक खरीदी थी।

(१८) मोहन ने मकान बेचा होगा।

यहाँ बुलाना, मारना, खरीदना और बेचना चारों मुख्य क्रियाएँ सकर्मक हैं। इसलिए तीनों परिभाषाओं द्वारा कर्ता और कर्म की पहचान हो जाती है। परंतु 'प्रस्तावित' परिभाषाएँ अधिक सहायक सिद्ध होती हैं—

कर्तृवाचक कृदंत	**कर्ता**
बुलानेवाला	—गुरु (ने)
मारनेवाला	—राम (ने)
खरीदनेवाला	—सोहन (ने)
बेचनेवाला	—मोहन (ने)
कर्मवाचक कृदंत	**—कर्म**
बुलाया जानेवाला	—शिष्य (को)
मारा जानेवाला	—रावण (को)
खरीदा जानेवाला/खरीदी जानेवाली	—पुस्तक
बेचा जानेवाला	—मकान

(१९) लड़के को पत्र लिखना है।

(२०) लड़कों को परीक्षा देनी है।

(२१) कन्या को ही वर चुनना चाहिए था।

(२२) लोगों को पानी चाहिए होगा।

कर्तृवाचक कृदंत	**कर्ता**
लिखनेवाला	—लड़का (लड़के को)
देनेवाला/देनेवाले	—लड़के (लड़कों को)
चुननेवाला/चुननेवाली	—कन्या (कन्या को)
चाहनेवाला/चाहनेवाले	—लोग (लोगों को)
कर्मवाचक कृदंत	**कर्म**
लिखा जानेवाला	—पत्र
दिया जानेवाला/दी जानेवाली	—परीक्षा
चुना जानेवाला	—वर
चाहा जानेवाला	—पानी

दो बातों पर ध्यान देना है। पहली यह कि वाक्य की मुख्य क्रिया से बने कर्तृवाचक कृदंत से कर्ता इंगित होता है तो वाक्य में कर्ता की प्रधानता मानते हैं और दूसरे जब कर्ता 'ने' अथवा 'को' परसर्ग से युक्त रहता है, तब भी कर्ता की प्रधानता में अंतर नहीं आता। 'ने' परसर्ग को तो पहले ही कर्ताकारक का चिह्न मान लिया गया है, अब 'को' को भी कर्ताकारक का चिह्न माना जा सकता है। वस्तुत: नामपद ही कर्ता होता है, परसर्ग कर्ता नहीं होता। परसर्ग तो कर्ता का सूचक चिह्नमात्र है। यह कर्तृप्रयोग का विषय है।

(२३) मैं दिल्ली में दो बरस रहा।

(२४) मुझे दिल्ली में तीन महीने लगे।

'रहना' और 'लगना' दोनों अकर्मक क्रियाएँ हैं, इसलिए उक्त वाक्यों में कर्म का प्रश्न नहीं उठता। 'मैं दिल्ली में दो बरस रहा' में 'मैं' कर्ता के संबंध में कोई कठिनाई नहीं। परंतु 'मुझे दिल्ली में तीन महीने लगे' में 'मुझे' को कर्ता माना जाए या न माना जाए, इस संबंध में विवाद तो है ही। 'प्रस्तावित' परिभाषा के द्वारा उक्त वाक्यों के कर्ता की पहचान देखिए—

'रहना' क्रिया से कर्तृवाचक कृदंत बनेगा—रहनेवाला।

'लगना' क्रिया से कर्तृवाचक कृदंत बनेगा—लगनेवाला।

रहनेवाला—मैं (कर्ता)

लगनेवाला/लगनेवाले—तीन महीने (कर्ता)

अत: उक्त वाक्यों में क्रमश: 'मैं' और 'तीन महीने' कर्ता हुए। 'मुझे' को कर्ता मानना भूल है। वह संप्रदान कारक का रूप है।

(२५) यह काम सुशीला से ही होगा।

उक्त वाक्य 'हिंदी शब्दानुशासन' के पृष्ठ ४१२ से उद्धृत किया गया है। उक्त वाक्य में आचार्य वाजपेयी ने 'सुशीला से' को कर्ता बताया है और 'काम' को कर्म। यहाँ 'होना' क्रिया है, जो अकर्मक है। वाजपेयीजी का स्पष्ट अभिमत है कि अकर्मक क्रिया का कर्म नहीं होता। इसलिए आचार्य वाजपेयी के सिद्धांत से भी कर्म नहीं हो सकता। 'प्रस्तावित' परिभाषा के अनुसार 'होना' क्रिया से कर्तृवाचक कृदंत बनेगा—होनेवाला।

कर्तृवाचक कृदंत	**कर्ता**
होनेवाला	— काम

'काम' ही कर्ता है और 'सुशीला से' नामपद, जिसे वाजपेयीजी ने कर्ताकारक बताया है, वह करणकारक का रूप है। जरा निम्नलिखित वाक्यों का अवलोकन कीजिए—

यह काम हिम्मत से ही होगा।

यह काम कठिनाई से ही होगा।

यह काम प्रार्थना से होगा।

स्पष्ट है कि हिम्मत से, कठिनाई से, प्रार्थना से साधन के सूचक हैं, अत: करणकारक हैं।

(२६) चिट्ठी भेजी जाएगी।

उक्त वाक्य 'हिंदी व्याकरण' के पृष्ठ १८७ से लिया गया है, जिसमें आचार्य गुरु ने 'चिट्ठी' को कर्ता बताया है। वाजपेयीजी की परिभाषा के अनुसार 'चिट्ठी' भेजी जाने में स्वतंत्र नहीं है, इसलिए कर्ता नहीं हो सकती। 'प्रस्तावित' परिभाषा के अनुसार भी 'चिट्ठी' कर्म है। कर्तृवाचक कृदंत 'भेजनेवाला' का उत्तर नदारद है। कर्मवाचक कृदंत भेजा जानेवाला/भेजी जानेवाली 'चिट्ठी' कर्मकारक है।

कर्ता और कर्म की परिभाषाओं से अवगत होने के उपरांत अब हम कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य की परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य

'वाच्य' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका शब्दार्थ है—जिसके संबंध में कुछ कहना हो या कहा जाए।

१. कर्तृवाच्य

१. कर्तृवाच्य क्रिया के उस रूपांतर को कहते हैं, जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता है।

—पं. कामताप्रसाद गुरु

२. जब कर्ता के अनुसार क्रिया रूप ग्रहण करती है तो कर्तृवाच्य कहलाता है।

—पं. किशोरीदास वाजपेयी

३. जब क्रिया कर्ता के संबंध में कहे तो कर्तृवाच्य।

—'प्रस्तावित'

२. कर्मवाच्य

१. क्रिया के उस रूप को कर्मवाच्य कहते हैं, जिससे जाना जाता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्म है। *—पं. कामताप्रसाद गुरु*

२. जब क्रिया कर्म का अनुगमन करती है तो कर्मवाच्य।

—पं. किशोरीदास वाजपेयी

३. जब क्रिया कर्म के संबंध में कहे, तो कर्मवाच्य।

—'प्रस्तावित'

३. भाववाच्य

१. क्रिया के जिस रूप से यह जाना जाता है कि वाच्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता या कर्म नहीं है, उस रूप को भाववाच्य कहते हैं।

—पं. कामताप्रसाद गुरु

२. कभी-कभी क्रिया न कर्ता के अनुसार चलती है और न कर्म के। वह स्वतंत्र पद्धति ग्रहण करती है, तब उसे भाववाच्य कहते हैं।

—पं. किशोरीदास वाजपेयी

३. जब क्रिया भाव (क्रियार्थ) के संबंध में कहे, तब भाववाच्य।

—'प्रस्तावित'

जरा ध्यान दीजिए

(२७) मोहन ने घोड़ा खरीदा है।

(२८) सोहन ने गाय खरीदी है।

(२९) राम को घोड़े खरीदने हैं।

(३०) श्याम को गायें खरीदनी हैं।

आचार्य वाजपेयी के मत से चारों वाक्य कर्मवाच्य हैं, क्योंकि इनकी क्रिया कर्म का अनुगमन करती है। परंतु गुरुजी की परिभाषा के अनुसार कर्तृवाच्य हैं। गुरुजी का कथन है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता हो तो कर्तृवाच्य, जैसे नौकर ने दरवाजा खोला। अर्थात् खोलनेवाला—नौकर (कर्ता)। खरीदने की क्रिया कौन कर रहा है? मोहन, सोहन, राम और श्याम ही (क्रमशः) कर रहे हैं। इसलिए यहाँ कर्ता हुए। 'प्रस्तावित' पभिाषा का स्पष्ट कथन है कि जो क्रिया कर्ता के संबंध में कहे, वह कर्तृवाच्य। उक्त चारों वाक्यों की मुख्य क्रिया है—खरीदना। 'खरीदनेवाला' क्रमशः मोहन, सोहन, राम और श्याम को इंगित करता है। अतः यही कर्ता है। वाक्य में इन्हीं की प्रधानता है। इनके बिना वाक्य अधूरे हैं।

दोनों आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में कर्मवाच्य के संबंध में जो उदाहरण दिए हैं, वे सब-के-सब सचमुच संतोषजनक, निर्णायक और दिशाबोधक हैं। आचार्य गुरु के दिए हुए चार उदाहरण निम्न हैं—

(i) कपड़ा सिया जाता है।

(ii) चिट्ठी भेजी गई।

(iii) मुझसे यह बोझ नहीं उठाया जाएगा।

(iv) उसे उतरवा लिया जाए।

अब आचार्य वाजपेयी के उदाहरण लीजिए—

(i) राम से रोटी खाई जाती है।

(ii) लड़की से चने चबाए जाते हैं।

(iii) दर्द आदि के कारण सोया नहीं जाता।

(iv) मुझसे उठा नहीं जाता।

उक्त सभी (आठों) उदाहरणों का विश्लेषण करने पर छह बातें ध्यान में आती हैं—

(i) कर्मवाच्य में संयुक्त क्रिया होती है।

(ii) कर्मवाच्य की संयुक्त क्रिया की मुख्य क्रिया सकर्मक आकृदंत (भूतकृदंत) होती है और संयोज्य क्रिया 'जाना' होती है।

(iii) यदि मुख्य क्रिया का आकृदंत (भूतकृदंत) अकर्मक है तो क्रिया भाववाच्य होगी। आचार्य वाजपेयी के अंतिम दो उदाहरणों में मुख्य क्रिया अकर्मक है, इसलिए क्रिया भाववाच्य है। शेष छह वाक्यों की क्रिया कर्मवाच्य है, क्योंकि उनकी मुख्य क्रिया सकर्मक है।

(iv) कर्मवाच्य और भाववाच्य में कर्ता की स्थिति गौण होती है। आवश्यक नहीं कि कर्ता वाक्य में रहे ही। यदि कर्ता को रखना आवश्यक समझा जाए तो उसे करणकारक में रखा जा सकता है।

(v) यदि मुख्य क्रिया का रूप आकृदंत (भूतकृदंत) से भिन्न होगा तो क्रिया कर्मवाच्य या भाववाच्य नहीं होगी—

(३१) मोहन पुस्तक पढ़ता जाता है।

कर्तृवाचक कृदंत—पढ़नेवाला=मोहन (कर्ता)

(३२) सोहन कुरसी पर बैठ जाएगा।

कर्तृवाचक कृदंत—बैठनेवाला=सोहन (कर्ता)

उक्त दोनों वाक्यों में संयुक्त क्रियाएँ क्रमशः 'पढ़ता जाना' और 'बैठ जाना' है। दोनों की मुख्य क्रिया आकृदंत (भूतकृदंत) नहीं है। संयोज्य क्रिया 'जाना' होने पर भी क्रिया कर्ता को इंगित करती है। इसलिए क्रिया कर्तृवाच्य है।

(६) यदि संयोज्य क्रिया 'जाना' से भिन्न होगी तो भी क्रिया कर्मवाच्य या भाववाच्य की नहीं होगी। जैसे—

(३३) किसान ने ऋण लौटा दिया।

उक्त वाक्य में मुख्य क्रिया तो आकृदंत है, परंतु संयोज्य क्रिया 'जाना' नहीं है। इसलिए क्रिया कर्मवाच्य नहीं, वरन् कर्तृवाच्य है।

कर्तृवाचक कृदंत-लौटानेवाला—किसान (कर्ता)

खैर, यह तो हुई वैचारिक निष्कर्ष की बात। अब दोनों आचार्यों के आठों उदाहरणों को 'प्रस्तावित' परिभाषाओं पर कसते हैं। वास्तविकता यह है कि कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य की 'प्रस्तावित' परिभाषाओं के अनुसार दोनों आचार्यों के उदाहरणों को सुगमतापूर्वक कसौटी पर कसना संभव भी है, बोधगम्य भी और परिणाम की दृष्टि से सुखद भी।

(i) कपड़ा सिया जाता है।

संयुक्त क्रिया—सिया जाना

मुख्य क्रिया—सीना (सकर्मक)

कर्तृवाचक कृदंत—सीनेवाला

सीनेवाला—×(कर्ता)

सिया जानेवाला—कपड़ा (कर्म)

संयुक्त क्रिया—कर्मवाच्य

(ii) चिट्ठी भेजी गई।

संयुक्त क्रिया—भेजा जाना।

मुख्य क्रिया—भेजना (सकर्मक)

कर्तृवाचक कृदंत—भेजनेवाला

भेजनेवाला—×(कर्ता)

कर्मवाचक कृदंत—भेजा जानेवाला

भेजी जानेवाली—चिट्ठी (कर्म)

संयुक्त क्रिया—कर्मवाच्य

(iii) मुझसे यह बोझ नहीं उठाया जाएगा।

संयुक्त क्रिया—उठाया जाना

मुख्य क्रिया—उठाना (सकर्मक)

कर्तृवाचक कृदंत—उठानेवाला कर्ता (मुझसे)

कर्ता—करण कारक में
कर्मवाचक कृदंत—उठाया जानेवाला—
उठाया जानेवाला—यह बोझ (कर्म)
क्रिया—कर्मवाच्य
(iv) उसे उतरवा लिया जाए।
संयुक्त क्रियाएँ—१. उतरवा लेना २. लिया जाना
मुख्य क्रिया—उतरवाना
कर्तृवाचक कृदंत—उतरवानेवाला-कर्ता×
कर्मवाचक कृदंत—उतरवाया जानेवाला-वह (उसे)
वह (उसे)—कर्म
संयुक्त क्रिया—कर्मवाच्य

आचार्य वाजपेयी के कर्मवाच्य के चारों उदाहरणों में कर्ता को जगह मिली है, परंतु सभी कर्ता करणकारक में हैं—राम से, लड़की से, दर्द आदि के कारण और मुझसे। इस प्रकार कर्ता की अवस्था गौण रहती है। चारों क्रियाएँ—खाया जाना, चबाया जाना, सोया जाना तथा उठा जाना—रूप के विचार कर्मवाच्य या भाववाच्य हैं। खाया जाना और चबाया जाना कर्मवाच्य हैं, क्योंकि मुख्य क्रियाएँ 'खाना' और 'चबाना' सकर्मक हैं और सोया जाना तथा उठा जाना भाववाच्य हैं, क्योंकि 'सोना' और 'उठना' क्रियाएँ अकर्मक हैं। भाववाच्य की क्रिया पुंलिंग-एकवचन रहती है।

कोई दस-ग्यारह वर्ष पहले 'नवशती हिंदी व्याकरण' में उद्घाटित किया गया था कि 'जाना' के अतिरिक्त एक अन्य संयोज्य क्रिया 'बनना' भी कर्मवाच्य क्रिया-रूप होती है, जब तिर्यक् ताकृदंत अथवा तिर्यक् आकृदंत मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त हो, जैसे—

१. मुझसे रोटी खाते नहीं बनती।
२. मुझसे रोटी खाए नहीं बनी।
३. उससे कुछ करते नहीं बनेगा।
४. उससे कुछ किए न बना।
५. तुमसे खेलते ही नहीं बनता।
६. तुमसे खेले भी न बना।

यहाँ इस विषय पर स्पष्टीकरण आवश्यक है कि कर्ता तथा कर्म के साथ परसर्गों का प्रयोग होने पर वाच्य निर्धारण में कठिनाई या उलझन होती है। यदि यह कहा जाए कि वाच्य का कर्ता या कर्म के परसर्गों से कोई संबंध नहीं, तो अनुचित न होगा। यह विषय प्रयोग का है और कर्तृप्रयोग और कर्मणिप्रयोग के अंतर्गत आता है। यह पूर्ण रूप से स्थिर तथा निश्चित है और क्रियाओं के रूप पर आधारित है। निम्नलिखित स्थितियों पर ध्यान दें—

(i) क्रियापद निम्नलिखित क्रिया-रूप में हो तो कर्ता के साथ कोई परसर्ग नहीं रहता।

धातु—आ, जा, पढ़, लिख···
ताकृदंत—आता, जाता, पढ़ता, लिखता···
आकृदंत (अकर्मक)—आया, गया···
नाकृदंत—आना, जाना, पढ़ना, लिखना···
एकृदंत—आए, जाए, पढ़े, लिखे···
एगाकृदंत—आएगा, जाएगा, पढ़ेगा, लिखेगा···
इएकृदंत—(चाहिए को छोड़कर)
आइए, जाइए, पढ़िए, लिखिए···
इएगा कृदंत—आइएगा, जाइएगा, पढ़िएगा, लिखिएगा···
है
था
हो मूल क्रियाएँ
होगा

(ii) क्रियापद निम्नलिखित क्रियारूप में हो तो कर्ता में 'ने' परसर्ग आता है।

आकृदंत (सकर्मक)—पढ़ा, लिखा, देखा, किया आदि
आकृदंत (सकर्मक)+मूल क्रिया—
पढ़ा है, लिखा है, देखा है, किया है···
पढ़ा था, लिखा था, देखा था, किया था···
पढ़ा हो, लिखा हो, देखा हो, किया हो···
पढ़ा होगा, लिखा होगा, देखा होगा, किया होगा···

(iii) क्रियापद निम्नलिखित क्रिया-रूप हो तो कर्ता में 'को' परसर्ग रहेगा—

नाकृदंत+मूल क्रिया—
आना है, जाना है, पढ़ना है, लिखना है
आना था, जाना था, पढ़ना था, लिखना था
आना हो, जाना हो, पढ़ना हो, लिखना हो
आना होगा, जाना होगा, पढ़ना होगा, लिखना होगा
चाहिए+मूल क्रिया—चाहिए है, चाहिए था, चाहिए हो, चाहिए होगा

(iv) कर्ता में 'से' परसर्ग रहता है। यदि संयुक्त क्रिया आकृदंत (भूतकृदंत)+जाना हो···

राम से उठा जाता है।
मोहन से आम खाया जाता है।

संयुक्त क्रियाओं की कुछ संयोज्य क्रियाएँ अपने विशिष्ट स्वभावानुसार कुछ परिवर्तन दरशाती हैं, जिनका वर्णन विस्तार से 'हिंदी क्रियाओं की रूप-रचना' में आपको मिलेगा। किन-किन नामपदों में किन-किन कारकों में कौन-कौन परसर्ग कब-कब आएगा, यह भी प्राय: निश्चित है।

मुझे आशा है कि प्रबुद्ध भाषाभाषी 'प्रस्तावित' परिभाषाओं पर मनन करेंगे और अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराने की कृपा करेंगे। उनके सुझावों का सम्मान करूँगा और यदि कोई शंका हुई तो उसे दूर करने की चेष्टा करूँगा। भाषा के निखरे तथा उज्ज्वल रूप के उद्घाटन में सभी का सहयोग अपेक्षित है। सा.अ.

शब्दलोक, ४७, लाजपतनगर
वाराणसी-२२१००२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९३०५२८८३२१

आम आदमी, खास आदमी

• एम.एल. खरे

इधर कुछ वर्षों से आम आदमी खासतौर पर चर्चा में है। चुनाव के समय विशेष रूप से खास आदमी आम आदमी की बेहतरी के लिए चिंतित दिखाई देता है। आम आदमी के लिए भाँति-भाँति की लुभावनी योजनाएँ बनती हैं। यह बात दीगर है कि आम आदमी को इन योजनाओं का कुछ खास लाभ नहीं मिलता, वरन् कुछ खास आदमियों की चाँदी हो जाती है। नाम तेरा काम मेरा। आम आदमी का ढिंढोरा पिटते सुन-सुनकर मेरे दिमाग ने प्रश्न किया कि आम आदमी है कौन? उसकी परिभाषा क्या है? फौरन भीतर से उत्तर आया—''आम आदमी वह है, जिसमें कोई खासियत न हो।'' फिर सोचा, अरे! यह मैंने क्या कह दिया। बुद्धि ने तर्क किया कि कोई खासियत न होना भी तो एक खासियत है। मेरा प्रश्न बेताल की तरह कन्फ्यूजन के श्मशानी वृक्ष पर उल्टा लटक गया, बिना उत्तर पाए। अब मैं कोई विक्रम तो हूँ नहीं, जो सही उत्तर दे सकूँ, जिसे जानते हुए न देने पर सिर के हजार टुकड़े हो जाएँगे। तब विवेक ने कहा, परिभाषा को मारो गोली, परिभाषा देना आसान नहीं होता। परिभाषा आखिर क्या है? कुछ पहचाने शब्दों में परिभाष्य वस्तु या शब्द का वर्णन करना ही तो। अब आम आदमी को तो परिभाषा के बिना ही हम, तुम, सब जानते हैं तो फिर परिभाषा का क्या अचार डालना है?

खास आदमी वह है, जिसकी खबरें अखबारों में छपें, फोटो छपें, जो दूरदर्शन पर दिखाई दे। जिसका भाषण सुनने या दर्शन करने के लिए आम आदमियों की भीड़ इकट्ठा हो। जिसकी एक झलक पाने के लिए ठट्ठ-के-ठट्ठ लोग कूद पड़ें। वह अपना नाम भले ही आम आदमी रख ले, किंतु यथार्थ में वह खास ही होता है। वैसे अखबारों में खबर, फोटो और दूरदर्शन पर सूरत आम आदमी की भी दिख जाती है, भीड़, कतार या सिनेमा के परदे पर एक्टर के रूप में। परंतु आम आदमी की कोई खास पहचान नहीं होती, क्योंकि आम आदमी व्यक्तिवाचक संज्ञा न होकर जातिवाचक है। आम आदमी आपको सड़क पर दिखेगा, बाजार में, रेलवे स्टेशन पर, बस में दिखेगा और यदि आप खास नहीं हैं तो स्वयं में दिखेगा। खास पहचानवाला व्यक्ति आम नहीं होता, वह तो खास ही होता है।

वैसे हर औसत आदमी की दिली ख्वाहिश होती है कि वह कुछ खास दिखे। इसके लिए वह कुछ खास जतन करता है, एक कान में बाली पहनना, अलग तरह से बाल कटवाना, दाढ़ी बढ़ाना, बेढंगे कपड़े पहनना आदि। लेकिन वह आम ही रहता है। हाँ, कोई खास आदमी लीक से हटकर कोई खास अदा अपना ले तो वह बड़ी जल्दी फैशन बन जाता है। जैसे कुछ वर्ष पहले एक खास नेता साहब ने खसखसी दाढ़ी रखनी शुरू की तो वह फैशन बन गई। क्या नेता, क्या अभिनेता, सब आज खसखसी दाढ़ी रखने लगे, शायद यह जताने के लिए कि वे सादगी पसंद हैं या इतने व्यस्त हैं कि दाढ़ी बनाने/बनवाने की उन्हें फुरसत नहीं। यों तो फैशन प्राय: फिल्मी अभिनेताओं से चलता है, लेकिन शायद यह पहली बार है कि फैशन नेता से शुरू होकर अभिनेताओं तक पहुँचा।

कुछ अंग्रेजी पसंद लोग आम आदमी को 'मैंगो मैन' कहते हैं। हालाँकि कुछ मैंगो आम होकर भी खास होते हैं, जैसे कि हापुस, लँगड़ा, दसहरी आदि। यह कलमी आम आम आदमी के देशी आम की तरह सस्ते नहीं होते और न ही जंगल में पैदा होते हैं। वे कीमती, गुदारे, बहुत नफीश होते हैं, खास आदमी की तरह। इनकी बड़ी कदर होती है। पर जो आम तौर पर आम हैं, वे बेचारे तो आम आदमी जैसे मात्र चूसने और निचोड़ने का सामान हैं। उनकी कोई पूछ नहीं होती। उसे तो केवल देहाती, गरीब किसान-मजदूर ही जानते हैं। हाँ, आम आदमी की पूछ केवल चुनाव के समय होती है। तब प्रत्येक विशिष्टापेक्षी उसके हाथ जोड़ता है, पाँव छूकर आशीर्वाद माँगता है, अपनापन दिखाकर मिन्नतें करता है। उनमें से जो प्रत्याशी अधिकांश वोट निचोड़ पाता है, वह रातोरात खास बन जाता है और आम आदमी को वैसे ही भूल जाता है, जैसे देशी आम को चूसकर गुठली फेंक दी जाती है। आम की यही नियति है। खास आदमी वह है, जो चाहता है कि आम आदमी उसका मुरीद हो, दर्शनार्थी हो, उसकी प्रशंसा, जयजयकार करे, लेकिन उससे नजदीकी बढ़ाने की कोशिश न करे। खास और आम में दूरी बनी रहनी चाहिए।

आम और खास का विभाजन शायद प्रागैतिहासिक काल से चला आ रहा है। कबीलों में सरदार खास हुआ करता था, गाँव में मुखिया या जमींदार खास होता था, अब सरपंच खास हो जाता है। राजशाही के जमाने में राजा, उसके मंत्री और अन्य अमला खास माना जाता था। मध्यकालीन मुगलिया जमाने में दीवाने आम तथा दीवाने खास हुआ करते थे, आज भी हमारी संसद् में लोकसभा (आम) तथा राज्यसभा, (खास) हैं। इंग्लैंड की संसद् में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' (आम) तथा 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स (खास) हैं। सच पूछो तो इस प्रकार आम नाम भर के हैं। वास्तव में आम आदमी की तो संसद् में पहुँच ही नहीं होती, उसमें तो कुछ खास आदमी ही प्रवेश पा सकते हैं। वही जा सकता है, जिसे आम जनता चुनाव जिता दे। चुनाव में खड़े होते ही वह आधा खास बन जाता है और चुनाव जीतने पर पूरा खास। यदि मंत्री पद का जुगाड़ बन गया तो खास-उल-खास (वी.आई.पी.) बन जाता है।

एफ-२, ऋषि अपार्टमेंट्स
ई-६/१२४, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०१६ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९७५२७७७४६२

एक छत के नीचे

● उषा यादव

''तुम्हारी माँ कानपुर लौट आई हैं।'' पति प्रसून ने ऑफिस से आकर बताया। ''माँ लौट आई हैं? क्यों? वे तो लंबे इलाज के लिए दिल्ली गई थीं। इतनी जल्दी कैसे लौट आईं?'' रश्मि चौंक गई।

''क्या पता!'' प्रसून ने कंधे उचकाए, ''बहू से न पटी होगी, लौट आईं। सामान्य सी बात है, इसमें इतना चौंक क्यों रही हो?''

पर रश्मि सचमुच बहुत आहत हो उठी थी। वह अपनी माँ यशोदा को अन्यतम समझती थी। उन्हें कोई नापसंद भी कर सकता है, यह बात उसकी कल्पना से परे थी। अपना बचपन उसकी आँखों में घूम गया, जब माँ संयुक्त परिवार में बड़ी बहू के नाम से जानी जाती थीं। दोनों चाचियाँ खुद को बछेड़ी समझतीं, घर के काम-काज से कतराने की कोशिश करतीं। दोनों बुआएँ तो घर की बेटियाँ ही थीं, उनके बचपने को कौन नकार सकता था? ऐसे में सास-ससुर, पति, दो देवर-देवरानियाँ, दो ननदें और तीन-चार नन्हे-मुन्नों से भरे-पूरे घर में सिर्फ माँ ही कच्छप की तरह सारा भू-भार वहन किए हुए थीं। सुबह नाश्ते में यदि पराँठे सिंकने लगें, तो सबके दो-दो पराँठों में ही दो घंटे लग जाएँ। मुँह का स्वाद बदलने के लिए कभी हलवा, कभी पकौड़ियाँ और कभी इडली-डोसा जैसे व्यंजनों की यदि सामूहिक फरमाइश आ जाए, तब तो माँ की जान की साँसत ही समझो। नाश्ते का काम निपटा, तो दोपहर के भोजन का सरंजाम शुरू। सबकी अलग-अलग पसंद और पूर्ति हेतु अकेली माँ। वह माँ की पहली संतान थी। उस वक्त किशोर वय में पहुँच रही थी। घर का रंग-ढंग देखकर अकसर तिलमिला उठती, 'तुम घर की नौकरानी हो क्या? कामवाली भी महीने में ४-५ नागा कर लेती है, तुम तीसों दिन अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद रहती हो। कभी थकती-ऊबती नहीं हो, माँ?'

'कैसी थकान-ऊब?' माँ के होंठों पर एक सरल हँसी तैर उठती, 'सब अपने ही तो हैं। उनके लिए कुछ अच्छा-मनपसंद पकाकर खिलाते हुए मुझे दिली खुशी होती है?'

'लेकिन तुम मशीन नहीं, इनसान हो।' वह झिड़कती, 'रात-दिन खटती तुम हो, दिमाग मेरा झनझना उठता है।'

'क्यों झनझनाता है?' माँ शांत भाव से उसकी ओर देखतीं, 'तुझे भी पराए घर जाना है, बेटी। ऐसी असहिष्णु रही तो ससुराल में कैसे निभेगी?'

'माँ, वक्त बदल चुका है। लड़कियाँ पढ़-लिखकर नौकरी कर रही हैं। गुलामी का पट्टा सदा के लिए उन्हीं के गले में क्यों पड़ा रहे? देखना, मैं तो अपनी शर्तों पर जिऊँगी। तुम्हारी तरह कोल्हू का बैल बनकर कभी नहीं रहूँगी।'

वरिष्ठ कथाकार। 'हीरे का मोल' तथा 'सोना की आँखें' बाल-उपन्यास बहुत चर्चित हुए। उन्होंने बच्चों के लिए नाटक और कथात्मक शैली में जीवनियाँ भी लिखी हैं। उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल साहित्य भारती' पुरस्कार से सम्मानित।

'ठीक है, बेटी। तेरी सोच तेरे साथ, मेरी सोच मेरे साथ।' माँ हथियार डाल देतीं।

'इस तरह हार मानकर तुम बात को खत्म नहीं कर सकतीं माँ!' वह चिढ़ जाती, 'दोनों चाचियाँ भी तो तुम्हारी तरह इसी घर की बहुएँ हैं। वे घर का काम क्यों नहीं करतीं, घोड़ी की तरह कभी खुली छत पर कुदानें भरती हैं, कभी अपने मियाँ के साथ स्कूटर के पीछे बैठ पार्क की ठंडी हवा खाने के लिए उड़नछू हो जाती हैं।

'वे बच्चियाँ हैं अभी।'

माँ उसी शांत कंठ से कहतीं।

'और तुम बूढ़ी हो, क्यों?' वह और ज्यादा खीझ उठती, 'क्यों भूल जाती हो कि जब इस घर में आईं, सिर्फ अठारह साल की थीं। तभी से तुमने घर की जिम्मेदारी सँभाल ली थी और ये ३२-३५ साल की चाचियाँ बच्ची हैं? कुछ तो दिमाग का इस्तेमाल करो, माँ!'

पर माँ सिर्फ शांत भाव से मुसकरातीं, 'जिस दिन शरीर साथ न देगा, खुद चैन से बैठ जाऊँगी। अभी यह बात क्यों सोचूँ?'

सचमुच उन्हें कुछ नहीं सोचना पड़ा। बूढ़े सास-ससुर दिवंगत हो गए। ननदें ब्याही गईं। दोनों देवर अपना व्यवसाय खड़ा करके अलग हो गए। कायदे से अब माँ को गृहस्थी के जुए से आजादी मिल जानी चाहिए थी, पर ऐसा न हुआ। उनके तीनों बच्चे बड़े हो गए थे और जिम्मेदारियाँ अनंत हो उठी थीं। पहले बड़ी बेटी रश्मि का ब्याह किया, फिर माता-पिता दोनों बेटों की ऊँची महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने में जुट गए। सारी कमाई तो पहले ही ननदों-देवरों के नाम पर स्वाहा हो चुकी थी, अब अपने खुद के बच्चों के नाम पर···

माँ-पापा ने पहले अपना रहा-सहा बैंक बैलेंस शून्य किया, फिर माँ के बैंक-लॉकर में रखे गहने भी एक-एक करके बेटों की ऊँची पढ़ाई की भेंट चढ़ गए। बड़ी बेटी होने के नाते उसने माँ को समझाया भी था, 'सबकुछ क्यों निकाले दे रही हो? गहने तुम्हारा स्त्रीधन हैं। आड़े वक्त में काम आएँगे।'

माँ मुसकरा देतीं, 'मेरा स्त्रीधन तो मेरे तीनों बच्चे हैं। वक्त-जरूरत पर बेजान सोना नहीं, मेरे सजीव जवाहरात काम आएँगे।'

सचमुच बहुत महत्त्वाकांक्षी थे दोनों बेटे और अपने सपनों को साकार करने के लिए कड़ी मेहनत करना भी जानते थे। माता-पिता ने आर्थिक सहयोग दिया, अच्छी-से-अच्छी कोचिंग ज्वॉइन करने के लिए उत्साहित किया, तो इसका नतीजा भी सकारात्मक निकला। बड़ा बेटा संदीप देश के प्रतिष्ठित प्रबंधन संस्थान से एम.बी.ए. करके बहुत अच्छे पैकेज पर एक मल्टीनेशनल कंपनी में मुंबई में नियुक्ति पा गया। उसी कंपनी में कार्यरत एक महाराष्ट्रियन लड़की से शादी करके उसने अपना अलग नीड़ बसा लिया। छोटा मनदीप भी आई.ए.एस. की तैयारी करके पहले प्रयास में ही अपने लक्ष्य तक पहुँच गया। कैडर बदलने के चक्कर में एक पंजाबी लड़की से शादी करके उसने भी माता-पिता को बेटे का घर बसाने जैसी जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया। माँ अब भी निश्चिंत जीवन न जी सकीं। एक आकस्मिक सड़क दुर्घटना में पति को गँवाकर वे घर में एकदम अकेली पड़ गईं। तीनों बच्चों ने पता नहीं सच्चे मन से या सिर्फ दुनियादारी दिखाते हुए उन्हें अपने साथ रहने का निमंत्रण दिया, पर माँ ने सबको मना कर दिया। वे अपने जाने-पहचाने पड़ोसियों के बीच रहकर खुश थीं। लेकिन पिछले कुछ दिनों से उनका शरीर छीजने लगा था। फोन पर जब बात करतीं, आवाज शिथिल प्रतीत होती। जब-तब बुखार भी चढ़ जाता था। बेटे तो निर्लिप्त रहे, पर बेटी रश्मि ने ही अस्पताल जाकर संपूर्ण जाँच कराने की जिद की। जाँच का गंभीर नतीजा सामने आया, माँ कैंसरग्रस्त थीं।

चूँकि अब माँ को अकेला नहीं छोड़ा जा सकता था, इसलिए उनके लिए आश्रय-स्थली की तलाश शुरू हुई। एक ही शहर में रहने के बावजूद बेटी ने अपनी असमर्थता जता दी। आर्थिक दृष्टि से वह भाइयों की तरह मजबूत न थी। फिर एक नर्सरी स्कूल चला रही थी, अति व्यस्त थी। उसका इंजीनियर पति भी ऑफिस के काम के सिलसिले में महीने में पंद्रह दिन घर से बाहर रहता था। ऐसी ही असुविधा मुंबई की मल्टीनेशनल कंपनी में कार्यरत बड़े बेटे-बहू के साथ थी। रहा छोटा मनदीप, जो सपत्नीक दिल्ली में तैनात था। दोनों पति-पत्नी उच्च प्रशासनिक पदों पर थे, सरकारी आवास था, गाड़ियाँ थीं और बड़े-से-बड़े अस्पताल में उनके लिए चिकित्सा सुविधाएँ मुहैया थीं। सर्वसम्मति से तय हुआ, माँ दिल्ली जाकर मनदीप के साथ रहकर ही इलाज कराएँगी। इसी सिलसिले में पिछले सप्ताह दिल्ली गई थीं। किंतु सिर्फ सात दिन के भीतर यह वापसी!

''तुम्हें कैसे पता कि माँ कानपुर लौट आई हैं?'' रश्मि ने तनिक क्षुब्ध कंठ से पूछा।

''आज सुबह यात्रा के दौरान किसी ने उनका मोबाइल चुरा लिया। सारे नंबर उसी में फीड थे। तुम्हारा मोबाइल नंबर उन्हें याद नहीं था और मेरे ऑफिस का नंबर आसान होने के कारण उन्हें कंठस्थ था, इसलिए घर पहुँचकर उन्होंने लैंड लाइन से मुझे ये सारी सूचनाएँ दी थीं।''

''प्रसून, मैं अभी माँ के पास जा रही हूँ।'' रश्मि चिंतित चेहरा लिये उठ खड़ी हुई।

''मैं भी साथ चलता हूँ।'' प्रसून बोला तो उसने सहमति में सिर हिला दिया। उसी वक्त ऑटो करके पति के साथ पंद्रह मिनट में वह माँ के पास पहुँच गई । देखा, तो माँ पहले से कहीं ज्यादा बीमार और शिथिल लगीं।

रश्मि आँसू भरी आँखें लिये उनसे लिपट गई, ''माँ, तुम मनदीप के यहाँ स्वस्थ होने के लिए गई थीं। हफ्ते भर में और बीमार चेहरा लिये लौट आईं। आखिर यह सब क्या है?''

''मैं ठीक हूँ बेटी, तुम परेशान मत हो। सफर की थकान है, बस!'' माँ ने उसे दिलासा दिया।

''लेकिन इस तरह लौटने की वजह?''

''मुझे लगा कि एलोपैथिक इलाज शुरू करने की जरूरत नहीं है। यहाँ जो आयुर्वेदिक इलाज चल रहा है, उसे चलने दूँ। उससे कुछ फायदा महसूस हो रहा है।''

''माँ, तुम बात को टाल रही हो।'' रश्मि रोष से भर गई, ''सच-सच बताओ, तुम्हारे अफसर बेटे ने तुम्हें मान-सम्मान से नहीं रखा?''

''बेटी, ऐसा कुछ नहीं है।'' माँ के होंठों पर एक क्लांत मुसकान दौड़ गई, मनदीप-सुप्रिया ने मेरे पहुँचने से पहले ही मेरा कमरा ठीक करवा दिया था। सभी सुविधाएँ थीं वहाँ। कमरे से जुड़ा बाथरूम। समय पर जलपान-भोजन। मनोरंजन के लिए कमरे की दीवार पर बड़ा परदेवाला टेलीविजन। सुबह की चाय के प्याले के साथ अखबार।...तू ही बता, उनकी सेवा-टहल में कोई कमी थी क्या?''

''माँ, तुम हमेशा सहिष्णु रही हो। हर किसी की गलतियों पर परदा डालने की तुम्हारी आदत है। इस वक्त भी यही कर रही हो। पर मैं तुम्हारे झाँसे में आनेवाली नहीं। तुम्हें अपने बेटे-बहू के आचरण का कच्चा चिट्ठा मेरे सामने खोलना होगा...हाँ, प्रसून के सामने कुछ कहते संकोच हो रहा हो, तो इन्हें मैं घर भेजे देती हूँ।''

रश्मि का दृढ़ कंठस्वर सुनकर माँ विचलित हो उठीं। धीमी आवाज में बोलीं, ''प्रसून से क्या दुराव-छिपाव, यह तो मेरे बेटे जैसा है।''

''फिर बताओ, ऐसा क्या घटा, जिसकी वजह से तुमने घर लौटना मुनासिब समझा।'' क्षणिक चुप्पी के बाद माँ जो कुछ बोलीं, उसे सुनकर रश्मि स्तब्ध रह गई। उस सुविधा-संपन्न सरकारी आवास में पहुँचकर माँ को स्वागत की विरोधाभासी अनुभूति हुई थी। एक तरफ सुविधाओं का अंबार, दूसरी तरफ अपनों का अजनबी जैसा व्यवहार। बहू तो खैर गैर थी, पर आना रक्त-मांस का अंश ही पहले दिन शाम को सिर्फ दो मिनट की औपचारिक मुलाकात करके कमरे से निकल गया था। माँ ने खुद को समझाया, बड़े पद की बड़ी जिम्मेदारी के चलते बेटा इस समय तनावग्रस्त होगा। बाद में सहज भाव से मिलेगा।

पर एक के बाद एक करके और पाँच दिन निकल गए, बेटे के पास माँ के लिए फुरसत न रही। छठे दिन उसी पहले दिनवाली व्यस्तता ओढ़े हुए कमरे में आकर बोला, ''माँ, मैं जिस विशेषज्ञ चिकित्सक को

तुम्हें दिखाना चाहता हूँ, वे अभी शहर से बाहर हैं। लौटने में उन्हें दो दिन और लगेंगे। तब तक तुम अपनी पुरानी दवाइयाँ खाती रहो। और कोई दिक्कत हो, तो बताओ।''

''न बेटा, दिक्कत कैसी? मैं यहाँ पूरे आराम से हूँ।'' माँ ने उसे आश्वस्त किया तो वह सिर हिलाकर वापस लौट गया।

इसके कुछ देर बाद बगल के कमरे में बहू और मेड के मध्य होनेवाला संवाद उनके कानों में पड़ा। मेड सुनीता चकित कंठ से कह रही थी, ''मैडम, मैं तो माँजी को कोई मेहमान समझ रही थी। पर ये तो आपके घर की सदस्य हैं। साहब की मम्मी हैं।''

''न, इनकी मम्मी नहीं हैं। इनके साथ कॉलेज में पढ़नेवाले किसी नजदीकी दोस्त की मम्मी हैं। दोस्त की नौकरी मामूली है, माँ का लंबा इलाज नहीं करा सकता है। उसने साहब से जिक्र किया, तो यह पसीज गए। फौरन बोले, हमारे यहाँ भेज दो। जैसे तुम्हारी माँ, वैसे मेरी माँ। मैं इलाज का पूरा इंतजाम कर दूँगा।''

''साहब का दिल सचमुच बहुत बड़ा है।'' मेड अभिभूत होकर बोली, ''तभी मैं कहूँ कि यह माँजी तो बड़ी मामूली हैसियतवाली दिखाई दे रही हैं। आप लोगों की रिश्तेदार कैसे हो सकती हैं, पर अभी साहब के मुँह से इनके लिए 'माँ' सुनकर आपसे पूछना पड़ा।''

''अच्छा हुआ तुमने पूछ लिया।'' बहू हँसी, ''वरना अपने मन में इन्हें साहब की मम्मी ही समझती रहतीं। और देखो, तुमने भी तो इनके लिए माँजी ही कहा न! यह तो किसी बड़े-बूढ़े के साथ बात करने की तहजीब होती है।'' मेड मान गई, ''ठीक कहती हैं आप।''

''साहब की मम्मी क्या इनके जैसे होंगी?'' बहू का विद्रूप भरा कंठस्वर कानों में पड़ा, ''मेरे मम्मी-पापा को तो देखा है तुमने!''

''वही तो मैं कहूँ, आपके मम्मी-पापा आते हैं तो उनका रुतबा अलग से झलकता है। क्या तो फर्राटे की अंग्रेजी बोलते हैं दोनों जने। उसपर आपकी मम्मी की महँगी साड़ियाँ, महँगी लिपस्टिक, सैंडिल, विदेशी पर्स और कटे हुए बाल···। लगता है, किसी रजवाड़े की रानी-महारानी हैं।''

''मेरे पापा भी आई.ए.एस. रहे हैं न। यह देश की सबसे बड़ी सरकारी नौकरी है। पुराने जमाने के राजाओं जैसी शान-शौकत रहती है। मम्मी ने जिंदगी भर अफसरी शान के सुख लूटे हैं। अब किस्मत से आई.ए.एस. बनकर उनकी बेटी भी इसी शहर में है, तो उनकी शान-शौकत तो बरकरार रहनी ही है।''

''साहब के मम्मी-पापा भी नहीं आए?''

''पापा तो खत्म हो चुके हैं। मम्मी उसी शहर में अपनी बेटी के साथ रहती हैं। हो सका तो कभी बुलाऊँगी। पर हम दोनों तो अपनी नौकरी में व्यस्त हैं, बुलाकर क्या करूँगी?''

पास के कमरे की यह बातचीत चूँकि सदमा पहुँचाने के लिए काफी थी, इसलिए अगली सुबह पहली ट्रेन से ही···सुनते-सुनते रश्मि का चेहरा तमतमा उठा। तीखी आवाज में बोली, ''तुम लौट क्यों आईं, माँ? तुम्हें अपने लायक सपूत के कानों में उसकी अफसर बीबी के मुँह से निकली हुई वेदों की ऋचाएँ डाल देनी चाहिए थीं।''

''क्या फायदा होता? फिजूल उन दोनों के बीच कलह शुरू हो जाती। निमित्त मैं बनती।''

''और तुम्हारी यह सहिष्णुता मेरे लिए असहनीय है।'' रश्मि भभक उठी, ''मैं अभी मोबाइल पर मनदीप से बात करती हूँ। आज उसकी सरल-गरिमामयी माँ उसके घर में परिचय देने लायक नहीं समझी गई? भूल गया वह दिन, जब इसी माँ ने अपने हाथों के कंगन, कानों के झुमके ही नहीं, गले का मंगलसूत्र भी आई.ए.एस. की महँगी कोचिंग कराने के लिए बेच दिया था। गले में सिर्फ एक काला धागा बाँधकर भी संतुष्ट रही थीं।''

''छोड़ो बेटी! उन पुरानी बातों को याद करने से क्या लाभ?'' माँ ने शून्य में आँखें गड़ा दीं।

''तुम उसे अपने आने की सूचना देकर आई हो?''

''हाँ।''

''उसने रोका नहीं?''

''शायद रोकने की जरूरत नहीं समझी।''

''ठहरो, मैं अभी उसकी सारी अफसरी निकालती हूँ।'' रश्मि क्रोध की असहनीय ज्वाला से जल उठी, ''अंतरात्मा को झिंझोड़ूँगी, तो अभी तुम्हें लेने के लिए दौड़ा चला आएगा। उस बेहूदे ने इतना भी नहीं सोचा कि बीमार माँ के साथ किसी को भेज दे। यहाँ से प्रसून तुम्हें पहुँचाने गए थे। ठहरे नहीं, परंतु उसके ड्राइंग-रूम में तुम्हें बैठाकर आए थे।···और उसने तुम्हें अकेली आ जाने दिया, जरा भी हयादार होगा तो लिवाने चला आएगा, माफी ऊपर से माँगेगा।''

''मैं अब उसके यहाँ नहीं जाऊँगी।'' माँ ने दो-टूक फैसला सुना दिया।

''फिर भी उसे अपनी बीबी की नीचता पता होनी चाहिए। वैसे जतलाने से क्या होगा? हजरत की अपनी खुद की करनी भी कौन सी बेहतर रही है? हफ्ते में सिर्फ खड़े-खड़े दो बार माँ का हाल पूछकर लौटते हुए उस कृतघ्न को तनिक शर्म नहीं आई? देखो, मैं अभी फोन मिलाती हूँ।''

गुस्से से थर-थर काँपती रश्मि के मोबाइल पर नंबर मिलाते हाथों को प्रसून ने बीच में ही थाम लिया। बोले, ''रहने दो। इसकी जरूरत नहीं है।''

''क्यों?'' रश्मि फुफकार उठी।

''रिलैक्स!'' प्रसून ने उसकी पीठ थपथपाई, ''सामान्य सी बात है। इसे नजरअंदाज करो।''

''तुम्हें यह सामान्य बात दिखाई देती है?'' रश्मि की बौखलाहट बढ़ गई।

''हाँ, आज से आठ साल पहले इसी तरह अपने गठियाग्रस्त घुटनों के इलाज के लिए चलने-फिरने से लाचार गाँव की एक बुजुर्ग महिला

शहर आई थी। उसे फूहड़ और गँवार करार देकर उसकी बहू ने भी तो उसे वापसी के लिए बस में बैठा दिया था। यह दुनिया है। यही इस दुनिया में चलता है। इसमें नया और अनोखा क्या है?''

रश्मि के हाथों से मोबाइल छूटकर नीचे गिर गया। उसका चेहरा फक पड़ गया था।

सच, सुप्रिया को वह किस मुँह से अपराधी कह सकती है?

पर प्रसून स्थिर कंठ से कह रहे थे, ''माँ, आप हमारे यहाँ चलें। वह भी आपका घर है। यकीन मानिए, पूरे मान-सम्मान से वहाँ रहेंगी। मुझे अपना बेटा समझिए। और फिर रश्मि भी है न? आपकी बहू ने यही तो कहा था अपनी मेड से, वह शहर में अपनी बेटी के पास हैं।''

रश्मि की आँखें भर आईं। माँ को रखने के लिए बड़ा बैंक बैलेंस नहीं, बड़ा दिल चाहिए। यह बात अभी तक क्यों नहीं समझ सकी थी वह।

झिझकते हुए सिर्फ इतना बोली, ''प्रसून, परिवहन अड्डे का नंबर तुम्हारे मोबाइल में है। जरा मिलाओ। गाँव के लिए पहली बस सुबह कितने बजे मिलेगी?''

''गाँव के लिए? मैं समझा नहीं।'' प्रसून अचकचाए। रश्मि मृदु कंठ से बोली, ''अम्माँ को कल ही लिवाकर लाओगे तुम। दोनों मम्मियों के लिए हमारे घर... हमारे दिल में जगह है। वे साथ-साथ रहेंगी। एक छत के नीचे।''

७३, नॉर्थ ईदगाह कॉलोनी, आगरा-१०
दूरभाष : ९०१२८१८०२५

अहंकार का आवरण

लघुकथा

● **विजयप्रकाश त्रिपाठी**

एक गाँव में एक मूर्तिकार रहता था। वह मिट्टी की अति सुंदर मूर्तियाँ बनाता, जो भी लोग उन मूर्तियों को देखते, वाह-वाह कर उठते! क्षेत्र में उसके हाथ के कौशल की प्रवीणता की चर्चा बनी हुई थी। मूर्तिकार की मूर्तियाँ अच्छी कीमत पर बिकती थीं; परिवार का भरण-पोषण ठीक प्रकार से चल जाता था।

उस मूर्तिकार के एक पुत्र था। मूर्तिकार पिता उसे भी अपनी। कला में प्रवीण बनाना चाहता था। अतएव पुत्र को भी सिखाना शुरू कर दिया। पुत्र ने भी मूर्ति बनाने की कला में अभिरुचि दिखाई, वह बारीकियों को समझने तथा उत्साहपूर्वक अभ्यास में मग्न रहने लगा।

पुत्र कुछ और बड़ा हुआ तो उसे अपने कार्य में अच्छी सफलता मिलने लगी। यहाँ तक कि उसकी मूर्तियाँ पिता की तुलना में ज्यादा कीमत में लोग खरीदने लगे। यह उचित भी था, एक तो सीखने की चेष्टा, दूसरे पुत्र की जन्मजात प्रतिभा क्रमानुसार निखार ला रही थी, पुत्र की प्रसिद्धि बढ़ती चली गई।

पुत्र रोज अपनी मूर्तियों को बनाकर पिता को दिखाता और फिर उसमें गुण-दोष की चर्चा करता। उनकी विक्रय-राशि दिखाता व पिता से प्रशंसा की पूर्ण अपेक्षा रखता। पिता उसकी लगन की प्रशंसा तो करते, पर साथ में जो कमी होती; उसका निवारण भी बताते।

अब रोज ही अपनी कमियाँ सुनने पर पुत्र को बुरा लगने लगा। आखिर में एक दिन झुँझलाकर उसने मूर्तिकार पिता से कह ही दिया, ''पिताजी! मैं इतनी कोशिश करता हूँ, पर आप कुछ-न-कुछ कमी निकाल देते हैं। मूर्तियाँ भी आपकी मूर्तियों से मेरी ज्यादा कीमत देती हैं? फिर आप उसमें दोष क्यों निकालते हैं? हमको इसका कारण नहीं समझ में आ रहा, कभी तो अच्छाई भी देखें।''

यह सुनकर पिता को बहुत दुःख हुआ। वह चुप ही रहा। जब पुत्र बाजार चला गया, तब भी वह दुःखी मन से लेटा रहा और भोजन भी नहीं किया।

पुत्र जब बाजार से लौटा तो उसे दुःखी पिता के बारे में सूचना मिली। पुत्र को अपने किए पर पछतावा हुआ कि उसने अपने पिता की बात का बुरा क्यों माना और बदले में तिरस्कार क्यों किया? पुत्र अपने दुःखी पिता से क्षमा माँगने गया और भोजन करने का अनुरोध किया।

मूर्तिकार पिता ने दुःखी मन से कहा, ''प्रश्न यह नहीं है कि तुमने क्या कहा और मुझे कैसा लगा? सच बात तो यह है कि यदि तुम हमारी समीक्षा का बुरा मानोगे तो तुम्हारी मूर्तियों में जो सुधार की थोड़ी-बहुत कमी थी, तुम्हारी और प्रसिद्धि होने तथा और अधिक मूल्य मिलने की जो संभावना है, वह समाप्त हो जाएगी। समीक्षा ही सुधार का मार्ग प्रशस्त करती है, यदि वह बंद हो गई तो प्रगति का पथ भी रुक जाता है।''

मूर्तिकार पिता की बात उचित थी। अहंकार के आने पर अथवा संपूर्ण पूर्णता की अनुभूति होने पर मनुष्य अपने दोष ढूँढ़ना तो दूर उन्हें बताने पर भी क्रोधी हो जाता है, फलस्वरूप उसकी प्रगति वहीं पर रुक जाती है।

पुत्र ने वास्तविकता को जाना और रोज अपनी मूर्ति-निर्माण में पिता से ही नहीं, परिचितों और ग्राहकों से भी विनम्र भाव से पूछने लगा। गलती पूछने तथा सुधारने के क्रम ने उसे अपनी कला-क्षेत्र का सर्वोत्तम मूर्तिकार बना दिया।

प्रगति जिस किसी क्षेत्र में, जिसे भी अभीष्ट हो, यही एकमात्र राजमार्ग है। चाहे आत्मसमीक्षा की जाए अथवा मार्गदर्शन माँगा जाए, प्रत्येक दृष्टि से यह रीति-नीति दूरदर्शितापूर्ण सिद्ध होती है।

८६/३२३ देवनगर
कानपुर-२०८००३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९२३५५११०८३

नदी और मनुष्य

● राजीव रंजन

विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं तथा दैनिक पत्रों में कविताएँ, निबंध और लेख प्रकाशित। सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी पदक तथा स्वर्ण पदक से सम्मानित। संप्रति प्राध्यापक (हिंदी भाषा एवं साहित्य) विदेशी भाषा एवं अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

नदी और मनुष्य के बीच रिश्ता अत्यंत पुराना और गहरा है। विश्व की लगभग सभी पुरानी सभ्यताएँ, चाहे वह सिंधु-घाटी सभ्यता हो या नील नदी की सभ्यता अथवा मेसोपोटामिया की, इस रिश्ते की साक्षी हैं। नदी मनुष्य की जरूरतों के लिए जल और उसके परिवहन की माध्यम भर नहीं है, बल्कि सहस्राब्दियों के इस साहचर्य ने दोनों में रागात्मक संबंध विकसित कर दिया है। कहीं वह माँ है तो कहीं प्रेयसी और कहीं देवी या ईश्वरीय शक्ति—जीवन में प्रेम, रस और अध्यात्म की प्रतीक। नदी माँ है, अपने आँचल में रस का अक्षय भंडार संचित किए हमारी धरती, हमारी क्षुधा और हमारी संस्कृति को अपने प्राण-रस से तृप्त कर उसे पुष्ट करनेवाली माँ। वह अन्नदा है। वह पुष्टिदा है। वह सरस है, आनंदमयी है। शाम की गोधूलि में घर लौटती रँभाती गायों को सिकम भर (जी भर) जल पिलाकर तृप्त कर देनेवाली नदी, उनमें दूध का अमृत-स्रोत भर देनेवाली नदी, धरती को सींचकर हरी-भरी कर देनेवाली नदी माँ नहीं, मातामही है। मातृ-रूपा धरती और गो, दोनों का पोषण करनेवाली, दोनों को सरस करनेवाली मातामही।

नदी 'वाक्' है, यह असत् से सत्, तमस से ज्योति और अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जानेवाले मार्ग का निर्देश करती है। नदी काव्य है, इसमें रामायण का सा औदात्य और महाभारत का सा विस्तार है। नदी रसवंती है, इसमें सहस्र-सहस्र महाकाव्यों का रस है। नदी कला है, इसके कटान, ढलान, उतार-चढ़ाव और उनसे निर्मित आकृतियों ने मनुष्य की आदिम कला को प्रेरणा दी—उसकी कल्पना को आधार दिया। नदी गीत है, नदी लय है, नदी नाद है। नदी गति, यति और आरोह-अवरोह है। नदी सृजन-धर्मिणी है। वह स्वयं सिसृक्षा की कारयित्री शक्ति है और उसकी अभिव्यक्ति भी। हर पल, हर घड़ी, हर प्रहर, हर दिन, हर मास, हर वर्ष कुछ-न-कुछ सिरजती रहती है नदी। कभी पत्थर की चट्टानों से कोई अपूर्व आकृति तो कभी कगारों का बाँकपन और कहीं धाराओं की सहस्र-सहस्र लटों से ढका धरती का मनोरम मुख। इसके विस्तृत पाट पर नौका-विहार करते हुए हमने अपनी कला के तमाम रूपक रचे। इसकी कल-कल ध्वनि में हमने संगीत की पहली धुन सुनी। इसकी तरंगों से हमें अपने हृदय की तरंगों को शब्दबद्ध कर काव्य में ढालने की प्रेरणा मिली। इसके झिलमिल जल में हमने रंगों की पहचान की और अपनी कल्पना की आकृतियों में उन्हें भरने की कला सीखी। नदी कल्पदा है। नदी 'काम-रूपा' है। कला, विद्या, काव्य और संगीत सभी का आदिस्रोत है—'सरस्वति नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणिम्'।

नदी प्रेयसी है। उसमें अथाह रस है। अनिवार्य आमंत्रण है—उसमें उतर जाने, खो जाने, स्वयं को विलीन कर लेने का आमंत्रण। वह स्पर्शाकुल और वाचाल प्रेयसी नहीं है। वह धीरा है, प्रशांत है, कल-कल की मधुर ध्वनि करनेवाली मृदु भाषिणी है। उसमें तरंग है, आवेग है, बढ़ियाती है तो दूर-दूर तक विस्तृत हो जाती है और फिर अपनी उर्वरता अपनी मातृका रूप का अवशेष नवीन जलोढ़-मिट्टी छोड़ पुनः नवोढ़ा की तरह संकुचित हो जाती है। अपने पाट में आ सिमटती है। एक नई प्रेयसी की तरह संकुचित, उत्फुल्ल और आमंत्रणोत्सुक। नदी चिरयौवना है। उसका यौवन और प्रेम या तो मातृत्व में फलीभूत होता है या मुक्ति में। राम ने सरयू की गोद में जन्म लिया, उससे प्रेम किया और उसी की धार में समाहित हो गए। वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे, परात्पर ब्रह्म के सगुण-साकार रूप। उनके लिए यह मार्ग सरल था। हम उनके अंश हैं, माया के वशीभूत। कीर-मर्कट की तरह अपने-अपने पिंजरे और अपनी-अपनी रस्सी में बँधे हुए। हमें अपनी इस नियति से अधिक लगाव है। इस छान-पगहे का अधिक आकर्षण है। हम उसी में बँधकर डोलते रहना चाहते हैं, अपने खूँटे के इर्द-गिर्द बित्ते-चार बित्ते की परिधि में अपनी मुक्ति का जश्न मनाते हुए। हम स्वतंत्र हैं, हम मुक्त हैं, हम आधुनिक हैं। राम और सीता जैसे महाकाव्य-युग के पुराने घिसे-पिटे रूपकों से अधिक मानवीय और अधिक सहज। हम उनसे और उन्हें ईश्वर मानकर पूजनेवालों से अधिक बुद्धि-विवेक-संपन्न हैं, अधिक वैज्ञानिक और तार्किक हैं। हम पुरानी रूढ़ियों को नहीं मानते। हम उनके समूल उच्छेद के विश्वासी और मानव के जीवन की सहजता के आग्रही हैं। हमारी सहजता का प्रतिमान वह है, जो उद्दाम, उच्छृंखल या अनियंत्रित है। हमारे लिए प्रेम में डूब जाना, उसमें मुक्ति पा लेना, स्वयं को विस्मृत कर प्रेम की धार में विलीन हो जाना असहज है, अमानवीय है, आत्महत्या है या फिर हद-से-हद अस्तित्व का विलयन अथवा चरम क्षण की अनुभूति माध्यम।

हमें 'तन्वंगी गंगा ग्रीष्म-विरल' और 'वरुणा की शांत कछार' से प्रेम करनेवाली दृष्टि नहीं चाहिए, जिसमें दृष्टि-अभिसार का आनंद है। हमें चाहिए रमण-तृषा को तृप्त करनेवाला सुख। उसे बाँधने, भोगने और कैद कर लेने का सुख। नदी को कामधेनु मानकर उसे अंतिम बूँद तक निचोड़ लेने का सुख। हमें प्रेम में डूबने और उसे जीने की फुरसत नहीं, हमें 'रोज डे', 'प्रपोज डे', 'चॉकलेट डे', 'टैडी डे' के साप्ताहिक सेलिब्रेशन के पैटर्नवाला 'प्रोजेक्टेड प्रेम' चाहिए, जिसमें

सबकुछ पूर्व-नियोजित और पूर्व-नियत हो। हमें आनंद नहीं, सुख चाहिए, अपनी ऐंद्रिक एषणा की तृप्ति चाहिए, अपने अहं की तुष्टि चाहिए। सुख की अनुभूति नहीं, उसका भोग चाहिए। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः' का जाप करनेवाले हमारे पुरनिया गँवार थे, यम-संयम, त्याग-विराग सब ढकोसले थे, उनके पीछे का सच था सुख, भोग, संपत्ति और संसाधन को मुट्ठी भर हाथों में संकुचित कर देना। उसे मानना अंधविश्वास है, रूढ़ि और धार्मिकता है, ये सब हमें अस्वीकार हैं। हम सहजता के पोषक हैं। हमारे जीवन की कुंजी है डार्विन का विकासवाद, 'श्रेष्ठतम की उत्तरजीविता'। मनुष्य श्रेष्ठ है—सृष्टि के विकास की सबसे उन्नत परिणति। पुरानी आस्तिक शब्दावली में कहें तो ईश्वर की सुंदरतम रचना—'सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम'। इसलिए प्रकृति उसके लिए संभावनाएँ प्रस्तुत करती है और मनुष्य उसका दोहन करता है। हम जीन ब्रूंज और डिमांजिया की मानस संतानें 'दोहन' या 'उपभोग' की शैली में सोचने की अभ्यस्त हैं। 'त्याग' और 'संयम' जैसी पुरानी थाती केवल 'झाँपी' या 'मोन्हीं' जैसे पुराने संग्रह-पात्रों में ताला बंद करके रख देने के लिए हैं। अगर गलती से ताला खुल जाए, तो उसे लोगों की नजर पड़ने से बचा लेने में ही भलाई है। 'लालच अच्छी चीज है' के जमाने में त्याग-संयम! छिह! इतना अनाचार—इतना विरस आयोजन!

हमें वैष्णवता नहीं, उसका वेश चाहिए। उसका वस्त्र चाहिए। उसकी रामनामी, चंदन, कंठी और खंजड़ी चाहिए। केवल आवरण। देह और रूप भी नहीं, आत्मा की कौन चलाए! वह तो कब का 'आउट-डेटेड' हो गया। हमारा फलसफा है—'जो दिखता है वो बिकता है'। मन और आत्मा न दिखते हैं और न बिकते हैं। बिकते हैं वस्त्र, आवरण, आडंबर। हमें वही चाहिए। वही हमारी जरूरत है। हमारे समय की जरूरत है। हमें समर्पण नहीं चाहिए, हमें चाहिए मल्टीपरपज प्रेम। इसे हम जब चाहें ओढ़-बिछा सकें और जब चाहें तह करके काँख में दबा लें—सुदामा की तरह संकोच में नहीं, सुविधा में।

प्रेम की इस दोहन शैली की परिणति हैं नदी-घाटी योजनाएँ, जिनके आरंभ से अंत तक की सारी पटकथा पहले ही लिखी जा चुकी होती है। यह बात अलग है कि इस प्रेम-प्रोजेक्ट का फिल्मांकन कई बार मध्यांतर में ही फ्लॉप हो जाता है और कई बार यह इतना लंबा खिंच जाता है कि खलनायक के बजाय नायक की ही मृत्यु हो जाए। फलागम तो अनिवार्यतः नायिका (नदी) को न होकर निर्माता-निर्देशक और कैमरामैन को ही होता है। बाकी रही गीत-संगीत की बात तो प्रोजेक्ट एरिया के विस्थापित लोगों की त्राहि का रम्य-दारुण स्वर इसकी कमी भी पूरी कर देता है। दर्शक को क्या, फिल्म में एक 'बीड़ी जलइले' छाप आइटम सॉन्ग पर ठुमका दिखा दो, वाह-वाह कर उठेगा; 'टिहरी' और 'हरसूद' उसी पर न्योछावर कर देगा। रही बात हिट होने की तो 'मल्टीप्लेक्स' के जमाने में सब चलता है। अगर फिल्म में थोड़ा हॉरर, थोड़ा सस्पेंस, थोड़ा मसाला हो और कहानी में प्रेम सिरे से गायब हो तो भी कमाई पक्की है। मामला प्रेम का नहीं, उसके प्रचार और प्रदर्शन का है। वह अनुभूति से नहीं, फेसियल एक्सप्रेशन और स्माइल के इंच-सेंटीमीटर से तय होता है।

हम एक उत्तर-आधुनिक समय में जी रहे हैं। हमें समग्रता नहीं, विखंडन चाहिए। अनुभूति नहीं, उत्तेजना चाहिए। अब हम चिंतन और विचार नहीं, मूड से परिचलित होते हैं। हमारे पुरनिया जिस विचार और चिंतन की दुहाई देते नहीं अघाते थे, उसकी हमें कोई दरकार नहीं। हम कब का उनका गला घोंट चुके हैं। हम कब से अपनी दोनों भुजाएँ हवा में लहराते हुए विचारों के अंत, ज्ञानानुशासनों के अंत और इतिहास के अंत की घोषणाएँ कर रहे हैं, यहाँ तक कि मनुष्य के अंत की भी। ईश्वर के अंत की घोषणा तो हमारे पूर्व-पुरुष ही कर गए थे। फिर प्रकृति? उसकी तो मृत्यु अनिवार्य ही है। हमें ईश्वर-प्रकृति-मनुष्य नहीं, माइंड-मसल्स-मनी का त्रिक चाहिए। वासना, तृषा तथा बुभुक्षा और शांति, करुणा एवं मैत्री सब हमारे लिए समान हैं। प्रेम-घृणा, हिंसा-अहिंसा, त्याग-भोग, यश-अपयश इनमें कोई फर्क नहीं। सब-के-सब 'पाठ' हैं। इनको अलग-अलग रखकर सही-गलत और नीति-अनीति के तराजू पर तौलना हमारा कर्म नहीं। हम तो एक ऐसे जादुई यथार्थ में जी रहे हैं, जहाँ कहीं भी और कभी भी कुछ भी घटित हो सकता है। हम बस इन सबके तटस्थ साक्षी या अप्रत्याशित भोक्ता हैं। हमारे हाथ में कुछ भी नहीं, सब नियति-चालित है।

और प्रेम? वह तो ठहरा पुराना वैष्णव! खाँटी अहिंसक, समर्पणोन्मुख, पोर-पोर में रस से सराबोर—एकदम नदी की तरह सरस और पवित्र। लेकिन हमें क्या, होगा पवित्र। होगा सरस। होगा समर्पित। हमें प्रेम का रस नहीं चाहिए। उसकी वैष्णवता नहीं चाहिए। पुराना वैष्णव भावापन्ना प्रेम तो बूढ़ा और निठल्ला हो चुका है— अपनी 'लकुटी' और 'कामरिया' तक सिमटा हुआ। उसका सारा साम्राज्य मंदिर के चौखटे से गंगा के घाट तक सिमटा है। उसके बाहर की दुनिया उसके लिए प्रपंच है, माया है, काम है, पाप है। हम पाप-पुण्य के उन पुराने प्रतिमानों को नहीं मानते। हमारा प्रेम उसे अतिक्रांत करता है। हमें किसी मंदिर के चौखटे या गंगा के घाट पर बैठकर प्रेम के पद नहीं गाना। उसका गंडा उसे ही मुबारक। हमें उसकी चेलहाई नहीं करनी। यह घोर आर्थिक युग है और वह भिक्षाजीवी जीवन। न बाबा, न! हमें राम-धुन नहीं, दाम-धुन चाहिए। अर्थ, धर्म काम और मोक्ष के चार सोपान नहीं, बस दो चाहिए—अर्थ और काम। वह भी पूर्वापर या युग्म में नहीं, अपने द्वंद्वात्मक रूप में।

हमें वैष्णवता नहीं, उसका वेश चाहिए। उसका वस्त्र चाहिए। उसकी रामनामी, चंदन, कंठी और खंजड़ी चाहिए। केवल आवरण। देह और रूप भी नहीं, आत्मा की कौन चलाए! वह तो कब का 'आउट-डेटेड' हो गया। हमारा फलसफा है—'जो दिखता है वो बिकता है'। मन और आत्मा न दिखते हैं और न बिकते हैं। बिकते हैं वस्त्र, आवरण, आडंबर। हमें वही चाहिए। वही हमारी जरूरत है। हमारे समय की जरूरत है। हमें समर्पण नहीं चाहिए, हमें चाहिए मल्टीपरपज प्रेम। इसे हम जब चाहें

ओढ़-बिछा सकें और जब चाहें तह करके काँख में दबा लें—सुदामा की तरह संकोच में नहीं, सुविधा में। हमें चाहिए मल्टी डाइमेंशनल प्रेम, जिसे जब चाहें, जिस ओर चाहें, मोड़ सकें। हमें प्रेम नहीं, उसकी योजनाएँ चाहिए। मल्टी-डाइमेंशनल और मल्टी-परपज योजनाएँ। इंच और सेंटीमीटर में नपी-तुली योजनाएँ। सारा अबाड़-कबाड़ बटोर एक बड़ा सा पुतला खड़ा कर देनेवाली; बालू, गिट्टी, ईंट, सीमेंट पर टिकी बड़े-बड़े स्मारकों की योजनाएँ। यही हमारे प्रेम की अभिव्यक्ति है, सम्मूर्तन है या सही शब्दों में कहें तो प्रेम का प्रदर्शन है। हमारे लिए प्रेम नहीं, उसके स्मारकों की कीमत है, जो उसकी लागत से तय होती है या फिर उपयोगिता से।

हमने नदी को अपने इसी प्रेमपाश में बाँध लिया है। वह प्रेयसी नहीं, हमारी बंधक है—हमारे अनुरंजन, भोग और तृप्ति का साधन मात्र। हम उसे भोग रहे हैं, उससे अनुरंजित हो रहे हैं और तृप्त होने के बजाय अपनी वासना को और अधिक उत्तेजित कर रहे हैं। उसकी आत्मा की मसान पर अपनी एषणा की धुनी रमाए फुत्कार रहे हैं—'ये दिल माँगे मोर'। हमारे इस 'मोर' का कोई अंत नहीं, कोई सीमा नहीं। हम उसके शव में भी अपनी 'सिद्धि' देख रहे हैं। वह हमारे लिए द्रौपदी का अक्षय-पात्र है और हम परीक्षा लेने के लिए दुर्वासा बन उसके सामने आ डटे हैं। विडंबना यह कि द्रौपदी के सामने उनके सखा कृष्ण का सहारा था, लेकिन नदी? वह निरुपाय है। उसका सहस्राब्दियों का सहचर, उसका प्रिय मनुष्य स्वयं दुर्वासा बनकर सामने आ खड़ा है। अपने भोग के लिए उसके सारे वजूद को मिटा डालना चाहता है। उसके बालू, उसके पत्थर, उसकी सीपी, उसके जीव, उसकी गति-तरंग, उसका पाट—सबकुछ! बूँद-बूँद, कण-कण, इंच-इंच।

नदी केवल धरती के भूगोल में बहनेवाली नदी नहीं है। वह जितनी बाहर है, उतनी ही भीतर भी। वह अंत:सलिला है। हमारे भीतर निरंतर बह रही है—अनेक-अनेक सहस्राब्दियों से अनेक नामों और अनेक रूपों में। सहस्र-सहस्र भुजाओंवाली नदी। हिम की तरह शीतल और खौलते हुए जल की तरह उष्ण जलवाली नदी। समुद्र जैसे खारे और दूध की तरह सुस्वादु जलवाली नदी। सिंधु-ब्रह्मपुत्र की तरह विशाल और वरुणा-असी की तरह मृतप्राय नदी। यमुना और काली की तरह गँदली और भागीरथी-अलकनंदा की तरह झिर-झिर निर्मल नदी। कर्मनाशा की जैसी अभिशप्त और नर्मदा की तरह पुण्यशीला नदी। इन नदियों के कोई घाट, कोई तटबंध, कोई प्रवाह क्षेत्र, कोई विभाजक रेखा नहीं है। यहाँ सब घुला-मिला, सब सहज और सब एक-दूसरे में डूबा हुआ है। सब समरस, सब समशील, सब अविभाजित, सब अखंड, सब आनंदमय, जिह्वा संवेद्य षड्रस से परे, अद्‌भुत और अपूर्व!

नहीं, मैं धर्म, अध्यात्म या दर्शन की बात नहीं कर रहा। मैं कर रहा हूँ संवेदना की बात। उस संवेदना की, जो धर्म, अध्यात्म, दर्शन ही नहीं, विज्ञान की परिधि से भी परे है। यह मनुष्य और मनुष्य ही नहीं, बल्कि समूची सृष्टि को परस्पर जोड़ती है; 'स्व' और 'पर' के बने-बनाए पैमाने से परे। इसमें कहीं कोई गाँठ, कहीं कोई दरार या कहीं कोई जोड़ नहीं है। यह सहज-संश्लिष्ट और सहज-संपृक्त है। यह सहजता ही इसकी आत्मा, इसका प्राण, इसकी जीवनी-शक्ति है। यह एक सरस प्रवाह की तरह निरंतर हमारे बीच प्रवहणशील है। हमारे विचारों और अनुभूतियों की डाक एक-दूसरे को बाँट रही है, पावती और प्रत्युत्तर ले रही है और फिर उसे भेजनेवाले तक पहुँचा रही है; अविराम और अविलंब। यह क्रम, यह यात्रा, यह प्रवाह अनादि है। इसमें एक अद्‌भुत लय है, एक अनूठा सौंदर्य और एक अपूर्व मिठास है। ऐसी मिठास, जिसे एक पुराने कवि ने गूँगे के गुड़ जैसा कहा है, 'अबिगत गति कछु कहत ना आवे, ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरगत ही भावे'। यह बात जब सूरदास जैसा रससिद्ध पुरनिया कह रहा है, तो हम 'नवछिटुवों' की क्या बिसात कि उसे नकार दें। हमारे पास विज्ञान है, यंत्र है, तकनीक है, तर्क-शक्ति और विवेकशीलता है, लेकिन ये सब इस रस के आस्वाद में सर्वथा असमर्थ हैं। इसे न कोई विकासवाद परिभाषित कर सकता है, न संभावाना और नव-संभावनावाद। न तर्क और न विज्ञान। पुराने भारतीय चिंतन में यही 'आत्मा' है—परमात्मा का अंश, छाया या प्रतिरूप, जो 'हममें, तुममें खड्ग-खंभ में' सब में व्याप्त है।

'आत्मीय', 'आत्मीयता', 'आत्माभिव्यक्ति' को तो हमने सहज स्वीकार कर लिया, परंतु 'आत्मा' और 'परमात्मा' को अपने शब्दकोश तथा अपनी चिंतनधारा से परे धकेल दिया। जब आत्मा है ही नहीं, तो 'आत्म' का क्या वजूद? हम इसे समझने में असमर्थ रहे। इस असमर्थता का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य और मनुष्य के बीच, मनुष्य और नदी के बीच या मनुष्य और चराचर जगत् के बीच जो प्रवाहशील रस था, जो आत्मीयता थी, जो संवाद और संवेदना थी, हम उसका सिरा ही छोड़ बैठे। 'सिय-राममय सब जग जानी' कहनेवाला कवि हमें पुनरुत्थानवादी या यथास्थितिवादी और 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्' का उद्‌घोष करनेवाला ऋषि रूढ़िवादी नजर आने लगा। परिणामत: प्रकृति और मनुष्य के बीच का सामंजस्य विच्छिन्न हो गया। हमने प्रकृति को अपने महाभोज का व्यंजन मान लिया और हम उसका छककर भोग कर रहे हैं। पाँत में भाई-बंद के साथ बैठकर सहभोजवाले अंदाज में नहीं, अकेले-अकेले सबकुछ गटक जानेवाले अंदाज में झपटते हुए। नई शब्दावली में कहें तो वह हमारा उपभोज्य है और हम उसके उपभोक्ता।

हम बाहर की नदियों को जोड़ना चाहते हैं। मृत हो चुकी नदियों को पुनर्जीवित करना चाहते हैं। एक नदी का जल दूसरे में स्थानांतरित करना चाहते हैं। लेकिन हमारे भीतर की नदी छीज रही है, सूख रही है, विभाजित हो रही है। हमें उसकी चिंता नहीं। हाथों में लहराती तख्तियों, उठी हुई बाँहों के साथ उछलते नारों और दंगों की चोट से टूटते अखंड कगारों की चिंता हमें नहीं। स्वाद, रंग, घाट की होड़ में बिखरती समन्विति की चिंता हमें नहीं। हम अपने भीतर के देवत्व को फाँसी देकर मंदिरों, मठों, गिरजाघरों में उसकी मूर्तियाँ सजाना चाहते हैं। उसकी लाश पर मसजिदों की ऊँची मीनारें और भव्य मजारें बनाना चाहते हैं। भीतर के रस के अखंड और शाश्वत प्रवाह को नष्ट कर जगह-जगह कृत्रिम फव्वारे लगाना चाहते हैं। हमरे भीतर की नदी छीज रही है। हमारे भीतर का रस सूख रहा है। हमारे भीतर का देवत्व बधिक के गँड़ासे के सामने उकड़ूँ बैठा है, पर हमारे लिए वह देवता नहीं देवी का निर्माल्य

है या कुर्बानी का बकरा। हम जोर-जोर से 'हर-हर महादेव', 'अल्ला हू अकबर' और 'सत् श्री अकाल' के नारे लगा रहे हैं। हमारे स्वरों के बीच की समरसता विलुप्त हो चुकी है। हमारे भीतर की अंत:सलिला में अलग-अलग रंग और अलग-अलग स्वादवाली सदानीरा नदियाँ अब आपस में डूबकर अपूर्व रंग और अद्‌भुत स्वाद की सृष्टि नहीं करतीं, बल्कि अपने-अपने तटों में सिमटकर चल रही हैं। कोई भागीरथी, कोई अलकनंदा, कोई नर्मदा, कोई गंगा, कोई ब्रह्मपुत्र नहीं, हमारे भीतर बहनेवाली हर धारा या तो मल-वाहिनी असी है या पुण्य-क्षीणा कर्मनाशा। यह हमारे भीतर के मल को ढो रही है। हमारी यांत्रिकता, लिप्सा और स्वार्थपरता के सारे अपशिष्ट इसमें घुल रहे हैं। यह दिन-ब-दिन विषाक्त होती जा रही है। हमारे लोभ, मद, मोह, तृषा, भोग, वासना, एषणा, हिंसा, व्यभिचार, पापाचार के भार ने इसे बोझिल बना दिया है। यह झिर-झिर, निर्मल पारदर्शी नहीं, हमारे भीतर की कुंठाओं के रंग में रँगी है। यह कठौतीवाली गंगा है। इसके घाट पर बैठा कोई तुलसीदास अब यह दावा नहीं कर सकता कि 'सुरसरि सम सबकर हित होई'।

एक नदी का जल दूसरे में स्थानांतरित करना चाहते हैं। लेकिन हमारे भीतर की नदी छीज रही है, सूख रही है, विभाजित हो रही है। हमें उसकी चिंता नहीं। हाथों में लहराती तख्तियों, उठी हुई बाँहों के साथ उछलते नारों और दंगों की चोट से टूटते अखंड कगारों की चिंता हमें नहीं। स्वाद, रंग, घाट की होड़ में बिखरती समन्विति की चिंता हमें नहीं। हम अपने भीतर के देवत्व को फाँसी देकर मंदिरों, मठों, गिरजाघरों में उसकी मूर्तियाँ सजाना चाहते हैं। उसकी लाश पर मसजिदों की ऊँची मीनारें और भव्य मजारें बनाना चाहते हैं। भीतर के रस के अखंड और शाश्वत प्रवाह को नष्ट कर जगह-जगह कृत्रिम फव्वारे लगाना चाहते हैं। हमारे भीतर की नदी छीज रही है। हमारे भीतर का रस सूख रहा है।

मेरा आदिम मन फिर भी नहीं मानता। उसके भीतर बैठा नदी-प्रेम अब भी जब-तब हुलस उठता है। अब भी किसी नदी के कछार पर पहुँचते ही उसके प्रेम का कोई गीत कंठ से फूट ही जाता है। कंठ भले मेरा अपना हो, पर बोल मेरे मन के भीतर बैठे उस आदिम मनुष्य के ही होते हैं, जो अपनी छोटी डोंगी में सदियों से निरंतर उस नदी की लहरों पर 'झिझिरी' खेल रहा है। वह नदी से प्रेम करता है, उसे पूजता है, उसे मातृ-रूपा मानता है और इसलिए नदी अब तक उसके लिए संसाधन नहीं बन पाई, वह उसका उपभोग नहीं कर पाया। सूख चुकी नदी के ऊँचे कगार पर बैठा वह अब भी गा रहा है। उसे उम्मीद है कि नदी मरेगी नहीं। वह देवी-स्वरूपा है और देवता अमृत हैं। वह फिर जी उठेगी। अपनी अदम्य जिजीविषा से कोई एक सोता धरती के इस कठोर कवच को तोड़कर बह चलेगा। अचानक कोई पाताल-गंगा फूट पड़ेगी, जिसकी धारा में भीगकर यह सारा विरस आयोजन सरस हो जाएगा, जिसमें डूबकर 'असी' और 'कर्मनाशा' भी स्वच्छ, प्रशस्त और पवित्र हो जाएँगी। तब वह अपनी डोंगी पर पाल डाल फिर से हर नगर, हर गाँव, हर घाट-अघाट अपना गीत, अपना रस, अपना राग बाँटता फिरेगा।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-४४२००१ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९८९११०८४९१

जीवन का गणित

लघुकथा

● **कृष्ण मनु**

पुराने घिसे कपड़े, उलझे, पके-अधपके बाल, टूटी चप्पल उसकी स्थिति स्पष्ट कर रहे थे। गेट से अंदर आते-आते मैंने उसका हुलिया नजरों से तौल लिया, ''आओ-आओ बैठो रमन! मेरे खयाल से रिटायर होने के बाद यह हमारी पहली मुलाकात है। कहो, सब ठीकठाक है न?''

''अरे, कुछ ठीक नहीं भाई। बड़ी बुरी हालत है।''

''बुरी हालत! क्या कह रहे हो तुम? जैसे-तैसे करके लाखों की प्रोपर्टी खड़ी कर ली थी तुमने। दो-दो बेटे। बेटी थी नहीं कि पढ़ाने-लिखाने, शादी-ब्याह में खर्च होता, फिर?''

''वे सब छोड़ो बीती बातें। तुम बिल्कुल सही थे। कहा करते थे—निवेश करना है तो बच्चों को पढ़ाने, उन्हें उच्च शिक्षा दिलाने में करो। योग्य हो गया तो मूल-सूद सब वापस आ जाएगा। लेकिन तुम्हारी बात हँसकर टाल दिया करता था। कमाया-धमाया पैसा खेत-मकान में लगा दिया। लड़कों पर ध्यान दिया नहीं, दोनों सड़क छाप रह गए। अब अरसा हुआ प्रोपर्टी बेचकर खा रहे हैं। मुझे तो समझो निकाल ही दिया घर से। बेशक मैं गणित में तुमसे तेज था, लेकिन जीवन के जोड़-घटाव में फेल हो गया, यार।'' उसकी आँखें भर आईं। मुझे भी बुरा लगा।

तबतक पानी और चाय आ गई।

''लो, हाथ-मुँह धो लो। फिर चाय पीते हैं। फिर जी भर बातें करेंगे।''

''चाय-पानी तो होता रहेगा। पहले यह बताओ, तुम्हारा छोटका तो डिस्ट्रिक्ट जज है न? कोर्ट में एक अर्जी लगाया है। एक बार तो हार गया, दूसरी बार नहीं हारनेवाला।''

द्वारा—पोद्दार हार्डवेयर स्टोर
कतरास रोड, मटकुरिया
धनबाद-८२६००१

झूठा सच

• अमिताभ शंकर राय चौधरी

आश्रम के ऑफिस में बैठे स्वामी सत्यानंद, यानी भक्ति महाराज आश्रम का रजिस्टर देख रहे थे। दीवार पर साधु-महात्माओं की तसवीरें टँगी हैं। उनकी कुरसी के ठीक पीछे आश्रम की स्थापना करनेवाले स्वामीजी की एक विशाल फोटो लगी है। उसपर लटक रही है जरी की एक माला। बगल में एक स्टूल पर रखी पत्थर की थाली पर अगरबत्ती जल रही है। सामने अलमारी में कुछेक किताबें रखी हुई हैं। खिड़की के नीचे अखबारों का ढेर। दोनों तरफ दीवारों से लटक रहे काँच के शो-केसों में रखी हैं बंगाल के कृष्णनगर में बनी दुर्गा और काली की छोटी-छोटी मूर्तियाँ। बगल की रैक पर हरी-नीली फाइलें करीने से रखी हुई हैं। अचानक···

''सर्वनाश हो गया, महाराज!'' आश्रम के ऑफिस की मेज के पास आकर बलराम महाराज खड़े हो गए। वे हाँफ रहे थे, ''अभी-अभी मैंने टी.वी. में देखा कि बादल फटने से केदारनाथ में भयंकर बारिश हो रही है। वहाँ प्रलय जैसी स्थिति हो गई है। जाने कितने यात्री, संन्यासी, घोड़ेवाले और जानवर सब बह गए हैं। केदारनाथ और गौरीकुंड में हमारे आश्रमों का नामोनिशान न रहा। टी.वी. में वहाँ का लाइव कवरेज दिखा रहे हैं।'' एक साँस में जितना हो सका, कह दिया, फिर चुप हो गए। गुरु की ओर जिज्ञासा से देखते रहे।

स्वामी सत्यानंद भी वज्राहत होकर शिष्य की ओर देख रहे हैं। उनको तत्काल कुछ भी न सूझा कि क्या कहें। इतने में फोन की घंटी बजी। वे मानो निर्णय ही नहीं ले पा रहे थे कि खुद फोन उठाएँ या नहीं, इतने में बलराम महाराज ने ही फोन उठा लिया, ''हैलो!''

हरिद्वार के स्वामीजी का फोन था। खबर वही। पानी का सैलाब सबकुछ लील गया। अब देर करने का कोई सवाल ही न था। उसी रात रेलवे में काम करनेवाले आश्रम के ही एक भक्त से कहकर किसी तरह एक सीट का जुगाड़ करके स्वामी सत्यानंद हावड़ा से हरिद्वार की ओर चल पड़े। फिर वहाँ से दिन में जो एकाध बस चल रही थी, उसी में बैठकर किसी तरह रुद्रप्रयाग होकर गुप्तकाशी पहुँचे। परंतु उसके आगे जाना बिल्कुल असंभव था। सड़कें ध्वस्त हो चुकी थीं। मंदाकिनी-अलकनंदा के किनारों से जाने कितनी इमारतें बह गईं। सारा संपर्क टूट चुका था। विकास के नाम पर हिमालय की छाती पर जो अत्याचार किए गए, प्रकृति ने मौत की होली खेलकर मानो उसी का प्रतिशोध ले लिया। स्वामी सत्यानंद के हृदय में भी मानो एक प्रलय मचा हुआ था। उफनती मंदाकिनी की लहरों की तरह उनके दिलोदिमाग में निरंतर यही सवाल हिलकोर रहा था—'प्रकृति, तुम इतनी निष्ठुर कैसे बन गई?'

सुपरिचित साहित्यकार। बँगला एवं हिंदी की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, नाटक तथा किशोर साहित्य प्रकाशित। सी.बी.टी. द्वारा आयोजित बाल साहित्य लेखन प्रतियोगिता (२००१) में दो कहानियाँ पुरस्कृत।

पूर्वाश्रम, यानी घर का नाम जो भी रहा हो, संन्यास लेने के बाद उनका नाम तो सत्यानंद ही हो गया। आश्रम में आने-जानेवाले उन्हें भक्ति महाराज के नाम से ही पुकारते हैं। वैसे संन्यासी का अर्थ है त्यागी और विरक्त व्यक्ति, परंतु स्वामी सत्यानंद के संन्यासी जीवन में एक बहुत बड़ी टीस थी—एक संन्यासी की विफलता। वैसे तो उनके अनेक भक्त और शिष्य हैं, परंतु वे किसी को भी अपने प्रभाव से गृहस्थाश्रम से निकालकर संन्यास-जीवन की ओर प्रेरित न कर सके थे। आश्रम के प्रतिष्ठाता महाराज ने तो करीब सौ लोगों को दीक्षा दी थी। सत्यानंद के आचार्य ने भी करीब दस लोगों को दीक्षित किया। खैर, कई साल हो गए, उन्होंने एक किशोर को जगत्-मिथ्या और ईश्वर ही सत्य, यह बात समझाकर दीक्षा दी थी। उस नौजवान के घर का नाम था नीरांजन, मगर दीक्षा ग्रहण करते समय उसका नाम पड़ गया—स्वामी निर्भयानंद। जनता के लिए अर्जुन महाराज।

पता तो हरिद्वार में ही चल चुका था, पर गुप्तकाशी पहुँचने पर तो बिल्कुल काँप उठे। गौरीकुंड और केदारनाथ दोनों जगह मंदाकिनी की लहरों में आश्रमों की जलसमाधि हो गई। उनका कहीं नामोनिशान न बचा। इन दिनों केदारनाथ आश्रम का कर्ता-धर्ता था, वही स्वामी निर्भयानंद। उसका भी कहीं अता-पता न था। आज भक्ति महाराज के सामने संन्यास-जीवन का एक यक्ष प्रश्न आ खड़ा हुआ—'अर्जुन के घर इसकी सूचना दें या न दें। दें तो कैसे दें?'

वहाँ की व्यवस्था पूरी करके सत्यानंद जब वापस हरिद्वार लौट रहे थे तो उनके दिमाग में यही सवाल बार-बार कौंध रहा था। सबसे पहले तो उन्हीं के साथ नीरांजन की भेंट हुई थी। कितने साल पहले की बात है। आठ-दस उस साल सावन खत्म होते-होते कोसी में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। दो ट्रकों में हेड क्वार्टर की ओर से राहत-सामग्री लेकर सत्यानंद बंगाल से बिहार पहुँच चुके थे। मगर सहरसा जिले के छोर पर पहुँचकर

दोनों ट्रक रुक गए। सामने पानी का सैलाब सड़क के आर-पार हहरा रहा था। हाईवे की चाय की दुकान से किसी ने आवाज लगाई, 'ड्राइवर साहब, आगे सड़क टूट गैल छे। इधर से साइकिलो नए जा सकले।'

साथ बैठे दो आदमियों ने भी वही बात दोहराई, 'महाराज, बोलिए, आगे कैसे जाइएगा जी?'

अब सत्यानंद परेशान हो उठे। उन्होंने बगल में बैठे ड्राइवर की ओर देखा, 'अरे भाई, जरा पता करो कि अब क्या किया जाए। इस तरह यहाँ बैठे रहने से तो नहीं न चलेगा। ट्रक में रखे कच्चे अनाज वगैरह सड़ने लगेंगे।'

उनके ट्रक का ड्राइवर उतरकर पता लगाने लगा। दूसरे ट्रक का ड्राइवर भी आस-पास के लोगों से पूछ रहा था, 'सहरसा तक जाने का और कोई दूसरा रास्ता है?'

'है तो मगर, उसके लिए चालीस किलोमीटर घूमकर जाना पड़ेगा।'

तब दोनों ड्राइवरों के माथे पर शिकन पड़ गई। एक ने क्लीनर को हुकुम दिया, 'ले, खैनी बना।'

क्लीनर डेस्क बोर्ड से चूना और खैनी की डिबिया निकालकर हथेली पर रगड़ने लगा। सत्यानंद को छींक आ गई, 'धत तेरी की। इधर यह परेशानी, ऊपर से इन लोगों का नशा। ओफ!'

वहीं मैनाटोला बाजार के पास किताब-कॉपी की दुकान के सामने एक अठारह-उन्नीस साल का लड़का खड़े-खड़े अखबार पढ़ रहा था। इन लोगों को देखते ही वह समझ गया कि स्वामीजी परेशान हैं। अखबार समेटकर वह ट्रक के पास आकर खड़ा हो गया, 'क्या हुआ, स्वामीजी? आप इधर कहाँ जा रहे हैं?'

'बाढ़ पीड़ितों के लिए इनमें चावल, आटा, दाल, आलू और चिउड़ा वगैरह हैं। देर होने से तो परेशानी होगी। फिर रात हो जाएगी। वहाँ पहुँचाना भी है और आलू खराब न होने लगें।'

'घबराइए मत महाराज! मुझे और एक रास्ता पता है सुपौल होकर। बस दस किलोमीटर का अंतर होगा। सड़क जरा कच्ची है। मगर उधर पानी नहीं आया है। धीरे-धीरे आप पहुँच जाइएगा।'

'तुम्हें ठीक से मालूम है?'

'बिल्कुल।'

'रास्ते में कहीं फँस नहीं न जाएँगे?'

'अगर ड्राइवर साहब की हिम्मत हो तो मेरी बात पर भरोसा करके चले चलिए, महाराज। चलिए, मैं भी आप लोगों के साथ चल रहा हूँ। अब तो हुआ भरोसा?'

दोनों ड्राइवर कुछ हिचकते हुए राजी हो गए।

उस लड़के ने वहीं से किताबवाले से चिल्लाकर कहा, 'हनीफ चा, मेरी साइकिल घर पहुँचा देना। माँ से कहना, मैं स्वामीजी के साथ जा रहा हूँ। दो-तीन दिन में वापस आ जाऊँगा।'

ट्रक चल पड़ा। सत्यानंद ने पूछा, 'भैया, मैंने तो अब तक तेरा नाम ही नहीं पूछा।'

'नीरांजन।' उस लड़के ने बाहर देखते हुए कहा।

बाहर खपरैल, मकान, गाँव का सिवान, सिवान में फेंके हुए डंगरों का जायजा लेते चील और कौए, भीट पर कतार में खड़े ताड़ के पेड़, डीह के पास आम के बाग, गाछ के नीचे खटिया पर बैठे खटिकनंदन, पानी में डूबा हुआ खेत, बावड़ी में मड़ियाती हुई भैंसें—सब पीछे दौड़ते रहे, ये लोग आगे बढ़ते गए।

'घर में कौन-कौन हैं?' सत्यानंद ने फिर से पूछा।

'बाबूजी, अम्माँ, दीदी और एक छोटा भाई। दीदी की शादी हो गई है।'

'तू करता क्या है?'

'इस साल बी.ए. में ड्रॉप कर गया।'

'ड्रॉप मतलब? फेल!'

नीरांजन मुसकराकर चुप रहा।

'मन लगाकर नहीं पढ़ेगा तो कैसे पास करेगा? नौकरी वगैरह कैसे मिलेगी?'

'मेरा कॉलेज जाने का मन नहीं करता। सबकुछ वही बँधा-बँधाया रूटीन।'

'जिंदगी के अनुशासन से भागना चाहता है?'

'पता नहीं।'

सत्यानंद समझ गए कि इस लड़के के खून में उन्मुक्त हवा की मस्ती है। इसकी आँखों में बसी है सावन में कोसी के गेरुआ पानी की छहछहान। इसके हृदय में जो मुसाफिर रहता है, उसे घर के आँगन से ज्यादा प्यारी रास्ते के पेड़ की छाँव ही लगती है। पूछा, 'पिताजी क्या करते हैं?'

'फूड कॉरपोरेशन में इनचार्ज हैं।'

□

दो-तीन जगह राहत सामग्री के बँटने में दो की जगह चार दिन लग गए। सुबह से लेकर रात तक नीरांजन हर काम में हाथ बँटाता रहा। उसके चेहरे पर थकान नाम की कोई चीज ही मानो कभी नहीं उभरती थी। जब वे वापस आ रहे थे तो अचानक नीरांजन ने सत्यानंद से कहा, 'स्वामीजी, मुझे भी आप अपने साथ ले लीजिए न। इस तरह मुसीबत में फँसे लोगों की सेवा करने में मुझे बहुत आनंद आता है।'

'अभी नहीं। पहले बी.ए. तो पूरा कर ले। और यह जो तू सेवा का काम देख रहा है, यह तो केवल एक पहलू है। संन्यास-जीवन का अनुशासन बहुत कठिन होता है। गरमी हो या जाड़ा, भोर अँधेरे उठना, आरती करना। फिर आश्रम की साफ-सफाई। जो पढ़े-लिखे लोग हैं, वे ऑफिस में बैठकर अकाउंट भी सँभालते हैं। संन्यासी का मतलब केवल हवा के झोंकों की तरह घूमना नहीं है। बिजली का बिल ज्यादा आने पर पावर हाउस का चक्कर काटना पड़ता है। एक साल एक आश्रम का हाउस टैक्स बढ़ा दिया था, क्योंकि यहाँ यात्री ठहरा करते हैं, तो उसे सब कमर्शियल यूज मान बैठे। उसके लिए एड़ियाँ रगड़नी पड़ी थीं, समझा।' भक्ति महाराज ने देखा, लड़का कुछ उदास हो गया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, 'अरे पगले, माँ-बाप के आदेश के बिना संन्यास की

दीक्षा भी तो नहीं हो सकती।'

नीरांजन मैनाटोला बाजार में उतर गया। जाते समय सत्यानंद को उसने प्रणाम किया और बस इतना ही कहा, 'स्वामीजी, देखिए, फिर कब भेंट होती है।' आश्रम के लोगों के साथ बाढ़ पीड़ितों के लिए काम करने का मौका पाकर मानो वह उद्वेलित हो उठा था।

बरसात के समय नेपाल से पानी छोड़ना, स्थानीय तटबंधों का टूटना आदि कोसी में बाढ़ आने के तो कई कारण हर साल अखबारों में गिनाए जाते हैं और हर साल वहाँ बाढ़ आती है। लोग घर से बेघर हो जाते हैं। जैसे हर आँधी में परिंदों का घोंसला उजड़ जाता है। तो अगले साल भी नीरांजन पहले से ही आश्रमवालों के साथ वहाँ डटा हुआ था। लोगों को राहत पहुँचाने में हाथ बँटा रहा था। अगले साल जब सत्यानंद फिर राहत सामग्री लेकर वहाँ पहुँचे तो वह कमर में गमछा लपेटकर पंगत में बैठे लोगों को खिचड़ी खिला रहा था। उसने प्रणाम करके हँसते हुए कहा, 'स्वामीजी, मैंने बी.ए. कंप्लीट कर लिया है।'

सत्यानंद तीन दिन वहाँ ठहरे थे। दोनों में बातचीत होती रही। नीरांजन दिन भर काम में जुटा रहता और रात में मच्छरों के डर से सिर तक कंबल से ढककर वहीं एक किनारे लेट जाता। जब सत्यानंद वापस चलने लगे तो वह भी उनके साथ ट्रक में बैठ गया। उसने फिर वही बात दोहराई, 'महाराज, मुझे भी संन्यास का मंत्र दे दीजिए।'

सत्यानंद मुसकराकर रह गए। बोले कुछ नहीं। परंतु उनके मन में एक विचित्र स्वार्थ का बवंडर उठ खड़ा हुआ। आज तक मैंने किसी नए व्यक्ति को संन्यास की दीक्षा नहीं दी है। कम-से-कम एक को तो इस मार्ग में लाने का श्रेय मुझे मिले। एक संन्यासी की हैसियत से मेरे लिए कहने को कुछ तो बनेगा। क्या मैं इस मौके को हाथ से जाने दूँ?

नीरांजन ने घर पर मोबाइल से फोन कर दिया था। बाजार में ठहरते ही वह यह कहते हुए ट्रक से उतर गया, 'महाराज, बस दस मिनट ठहरिए। मैं बाबूजी को बुला लाता हूँ। वे यहीं-कहीं होंगे। मैंने उनको फोन कर दिया है।'

सत्यानंद सारी बात समझ पाते, इसके पहले ही नीरांजन अपने बाबूजी का हाथ खींचते हुए वहाँ हाजिर हो गया, 'बाबूजी, यही हैं स्वामी सत्यानंद। भक्ति महाराज। बहुत बड़े ज्ञानी-तपस्वी। मैं इनसे संन्यास की दीक्षा लेना चाहता हूँ।'

बेचारा बाप तो हक्का-बक्का रह गया। कहता क्या, आँखें फाड़कर एक बार अपने बेटे और एक बार सत्यानंद को देखता रहा।

सत्यानंद ने सिर्फ इतना ही कहा, 'पहले घर जाकर अच्छी तरह सोच ले। माँ से आज्ञा ले ले और अभी तो दो साल ब्रह्मचारी बनकर रहना पड़ेगा। अगर तेरा मन रम गया तो इसके बाद ही मेरे पास आना।'

'यह तू क्या कह रहा है, खोकोन?' कहता हुआ अचंभित बाप कमीज की बाँह से आँखें मलता हुआ चला गया। अंततः वही हुआ, जो नीरांजन चाहता था। दो साल सफेद वस्त्रों में ब्रह्मचर्य का इंटर्नशिप, फिर गेरुआधारी सिद्धपुरुष···जोगी। नए आश्रम में उसका नाम पड़ा स्वामी निर्भयानंद। जनता के लिए अर्जुन महाराज। उसे संन्यास की दीक्षा देकर सत्यानंद का मन एक अनुपम आह्लाद से प्लावित हो गया। कौन कह सकता है कि उस हर्ष में एक संन्यासी के आत्मसंतोष की लहरों के साथ-साथ थोड़ा अभिमान का गंभीर नाद भी था या नहीं।

तो आज, बिहार के उस छोटे से स्टेशन पर उतरकर सत्यानंद एक बस में बैठे और उस कस्बे में पहुँच गए। रास्ते भर वे इसी ऊहापोह में थे कि गृहस्थाश्रम को त्यागकर ही कोई संन्यासी बनता है। फिर पूर्वाश्रम के साथ उसका संबंध ही क्या रह जाता है? मगर उनके मन में बैठा कोई और एक कह रहा था—'छबीस-सत्ताईस साल का एक नौजवान आश्रम की देखभाल करते हुए इस तरह चल बसा। जीते-जी पानी में बह गया। जबकि उसके घर में बूढ़े बाप-माँ अभी जिंदा हैं, उन्हें एक खबर करने की भी जरूरत नहीं? बेटे ने बाप-माँ का त्याग किया है, यह सच है। मगर बाप-माँ ने तो अपनी संतान को नहीं त्यागा था। इतनी सी सूचना पर भी उनका अधिकार नहीं है कि उनका बेटा अब इस दुनिया में नहीं रहा?'

मैनाटोला बाजार में उतरकर पूछते हुए वे उसके घर जा पहुँचे। क्या करें सोचते-सोचते घर के बाहर आवाज देते ही नीरांजन के पिता ने खुद दरवाजा खोला, ''अरे आप, महाराज! क्या बात है? अरे सुनती हो? देखो, भक्ति महाराज हमारे घर पधारे हैं।''

माँ ने आते ही सिर के ऊपर पल्ला डालकर स्वामीजी को न छूते हुए दूर से ही भूमि पर उनको प्रणाम किया, ''खोकोन कैसा है, महाराज? मतलब वही आप लोगों का स्वामी निर्भयानंद, अर्जुन महाराज।''

उन्हें देखते ही आज इतने दिनों बाद अचानक स्वामी सत्यानंद को अपनी बहन याद आ गई। वह भी शायद इसी उम्र की होगी। बचपन में सत्यानंद बहन के लिए अपने ढेले के अचूक निशाने से जमीन पर खड़े-खड़े कच्चे आम तोड़ देते थे। नन्ही दाँत से आम काटते हुए उछलने लगती थी, 'भैया, वो वाला तोड़ दो न। कितना बड़ा है!' आषाढ़ के बादलों की तरह उनके मन में भी यादों के बादल उमड़-घुमड़कर मँडराने लगे। आज सत्यानंद इस माँ से क्या कहते? आखिर कहना क्या चाहिए? उन्हें पता भी न चला कि वे कर क्या रहे हैं, कह क्या रहे हैं। जैसे उन्हीं के मुँह से किसी गैर ने इस झूठ को कहा, ''वह ठीक है!''

''तो फिर बताइए, इधर कैसे आना हुआ?'' पिता ने पूछा।

''बस अचानक कुछ काम आ गया था।''

''महाराज, आज आप हमारे घर प्रसाद लेकर नहीं जाइएगा?'' माँ ने आग्रह किया ।

''नहीं-नहीं। हम संन्यासी हैं। किसी गृहस्थ के यहाँ अन्नग्रहण नहीं कर सकते। अच्छा तो अब चलूँ। फिर कभी इधर आना हुआ तो

जरूर मिलूँगा।''

वे दोनों प्रणाम करके चुपचाप एक तरफ खड़े रहे। सत्यानंद अपने असत्य के बोझ को सीने में दबाकर बाहर निकल आए। उनके मन में मानो जेठ की दोपहर का सन्नाटा गूँज रहा था। उन अभागे बाप-माँ को वे सब साफ-साफ कह देते? क्या करते, सच्चाई बता देते? उनकी यह खामोशी झूठ नहीं थी तो?

उस दिन मैनाटोला बाजार में लहुराबीर बाबा का शृंगार का मेला लगा हुआ था। मेले-ठेले की भीड़। छोटी-छोटी दुकानें। खरीदारी करते गँवई लोग। साज-शृंगार की दुकानों के सामने खड़ी औरतें। कोई गोलगप्पे खा रहा है, तो कोई अपने दोस्तों के साथ हा-हा, ही-ही कर रहा है। इन सबके बीच एक तरफ सत्यानंद भी बस के लिए खड़े हो गए। अचानक उनकी नजर एक बच्चे पर पड़ी। बच्चा एक कागज की फिरकी के लिए अपने बाप से जिद कर रहा था, ''बाबू, हम्मे वो वाला दिला दो न।''

उस आदमी के कंधे के सहारे खड़े बाँस में लगी रंग-बिरंगी चरखियाँ हवा से चक्कर काट रही थीं, फर-फर-फर···। पर वह गरीब बाप बेवजह पाँच रुपया खर्च नहीं करना चाहता था। पुचकारते हुए उसने बेटे को बहलाने की कोशिश की, ''फिर कभी रे! आज रहने दे।''

उन दोनों को देखते हुए न मालूम क्यों सत्यानंद ने अपने जोगिये कुरते की जेब में हाथ डाला और पाँच रुपया निकालकर फिरकीवाले को थमा दिया। उससे फिरकी लेकर बच्चे को थमाते हुए बोले, ''इसे इस तरह हवा में हिलाना, तभी यह फिरकी घूमेगी। यह देखकर लेगा न?''

वह बच्चा चकित होकर उस संन्यासी को देख रहा था। स्वामी सत्यानंद चरखी को हवा में इधर-से-उधर हिला रहे थे। चरखी घूम रही थी। बच्चा खुश था। पर सहमी हुई नजरों से उनको देखते हुए वह सोच रहा था—आखिर यह साधु बाबा मुझे यह फिरकी देगा न!

अचानक आए हवा के झोंके से आसमान के काले बादल जैसे एक पल में गायब हो जाते हैं, उसी तरह उस अनजान और सीधे-सादे ग्रामीण बच्चे को एक मामूली सौगात देकर वह संन्यासी मानो अपने आज के झूठ से आजाद हो गया। उनका जी हलका हो गया।

उसके हाथ में फिरकी थमाकर स्वामी सत्यानंद ऐसे चल पड़े, जैसे उनके सिर से कोई भारी बोझ उतर गया हो। मस्त पवन की चाल से चलते हुए उन्होंने पंछी के पंखों की तरह अपने दोनों हाथों को फैला दिया—एक अनमोल मुक्ति के गगन में। सा.अ.

सी-२६/३५-४०, रामकटोरा
वाराणसी-२२१००१
दूरभाष : ०९४५५१६८३५९

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

अकबर इलाहाबादी

● हेरंब चतुर्वेदी

प्राचीन काल में जिस भू-क्षेत्र का नाम प्रयाग था, वही मुगल बादशाह अकबर के काल में इलाहाबाद हुआ। जब अकबर ने अपने साम्राज्य का प्रशासनिक पुनर्गठन करते हुए उसे प्रांतों या सूबों में विभक्त किया, तब प्राचीन कौशांबी के क्षेत्र में स्थित पुराने मुख्यालय कड़ा मानिकपुर का त्याग किया। पूर्वी क्षेत्रों को नियंत्रित करने के लिए ऐसा करना जरूरी था। उसे मालूम था कि इन्हीं पूर्वी क्षेत्रों की वजह से मुगल सत्ता शेरशाह ने उसके पिता हुमायूँ के हाथ से छीन ली थी। अत: उसने नए ढंग से पुनर्गठन करते हुए यहाँ संगम के तट पर एक दुर्ग का निर्माण कराया, इसी के साथ इस क्षेत्र का नामकरण इलाहाबास या इलाहाबाद कर दिया और इलाहाबाद सूबे का मुख्यालय भी इलाहाबाद हो गया।

जाहिर ही है, जब अंग्रेज सरकार में मुंसिफ हुए अकबर साहब ने शायरी के लिए तक्खलुस या उपनाम रखने का खयाल किया, तब 'इलाहाबादी' से बेहतर और क्या होता? वे इलाहाबाद के मूल निवासी जो थे, इलाहाबाद जिले के जमुना पार इलाके में बारा गाँव उनका पैतृक स्थान था, अत: अपने नाम अकबर के साथ 'इलाहाबादी' जोड़ना उनके लिए स्वाभाविक ही था। इतना ही नहीं, वे अपने फन में भी उतने ही मशहूर हुए, जितना इतिहास में अकबर हुआ था।

उनका पूरा नाम सैयद अकबर हुसैन था। उनका जन्म १६ नवंबर, १८४६ को अपने गाँव बारा में ही हुआ था। उनके पूर्वज ईरान के नैशापुर से मुगल काल में भारत आए थे। उनके परदादा भी पुराने आभिजात्य वर्ग या उमरा के सदस्य थे। जब मुगल नवाब-वजीर ने पृथक् और स्वतंत्र अवध राज्य निर्मित कर लिया, तब से उनके पूर्वज भी अवध राज्य की सेवा में सम्मिलित हो गए थे। उन्हें सेना में ऊँचा मनसब या पद प्राप्त था।

अकबर इलाहाबादी के पितामह का नाम सैयद फजल महमूद था। वे अपने समय के एक बहुत प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित विद्वान् थे। उनकी विद्वत्ता का प्रभाव उनके खानदान में आगे की पीढ़ियों तक भी खूब रहा। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर ही अवध नवाब आसफुद्दौला ने उन्हें 'बारा' जागीर के रूप में प्रदान की थी। तभी से यह परिवार बारा में बस गया था। उनके पुत्र या अकबर के पिता का नाम सैयद तफज्जुल हुसैन नायब था। वे तहसीलदार थे। इस पिता-पुत्र की पीढ़ी ने १८५७ का दंश सहा था। सैयद तफज्जुल हुसैन की मृत्यु १८८८ में हुई थी।

अकबर की प्रारंभिक शिक्षा जमुना मिशन स्कूल, इलाहाबाद में हुई। अब यह स्कूल जमुना इंटर कॉलेज है। वे अंग्रेजी में निपुण थे, अत: यमुना पुल के निर्माण के समय अध्ययन करते हुए ही उन्हें गऊघाट पर पत्थरों के नाप-जोख का मुंशी नियुक्त कर दिया गया था। अंग्रेज रेल अधिकारी उनकी कर्तव्यनिष्ठा तथा कार्यकुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें स्थानीय रेलवे के माल गोदाम में नियुक्त कर दिया। किंतु अकबर का दिल वहाँ भी नहीं लगा। अपनी योग्यता के चलते वे नायब-तहसीलदार हो गए। किंतु शायद राजस्व विभाग में अंग्रेजों के अधीन यह नौकरी उनके मिजाज के अनुकूल नहीं थी, अत: उन्हें यह रास नहीं आई और वे कचहरी में नकलनवीस हो गए।

सुपरिचित लेखक। 'मध्यकालीन इतिहास के स्रोत' व 'मध्यकालीन भारत में राज्य और राजनीति' पुस्तकों पर उ.प्र. हिंदी संस्थान का 'आचार्य नरेंद्र देव पुरस्कार', अन्य प्रकाशन 'दास्ताँ मुगल महिलाओं की', 'हिंदी के बहाने' एवं 'फ्रांस का इतिहास' व 'मध्यकलीन भारत के विदेशी यात्री' पुस्तकें चर्चित।

यह किस्सा बहुत मशहूर है कि वे जब नकलनवीस की नौकरी का आवदेन देने गए थे, तब उन्होंने एक छोटे से कागज पर आवेदन कर उसे जमा कर दिया था, किंतु वह अन्य कागजों के बीच कहीं खो गया। पता करने पर जब कारण बताया गया, तब अकबर ने अपने विनोदी स्वभाव और हाजिर-जवाबी का प्रमाण देते हुए एक बहुत बड़े कागज पर अपना नया आवदेन दिया। खैर, उनके फारसी, अरबी, उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी के ज्ञान के चलते उन्हें नौकरी तो मिलनी ही थी।

फिर १८७३ में वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण करके गोंडा, गोरखपुर, आगरा और इलाहाबाद में वकालत भी की। १८८० में वे मुंसिफ के पद पर चयनित हुए तथा तरक्की करते हुए जिला जज हो गए। इसी बीच उनकी आँखों की रोशनी कम होने लगी और उन्होंने इसी वजह से बेहिचक जिला जज के पद से इस्तीफा दे दिया। अगर वे अपने पद पर बने रहते तो शीघ्र ही जस्टिस ऐकमन की सेवा-निवृत्ति पर उच्च न्यायालय में न्यायाधीश होते, किंतु दिल की हर आवाज सुननेवाले शायर को यह बेईमानी गवारा नहीं थी।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् पेंशन लेकर वे वहीं कोतवाली के पीछे के मोहल्ले में अपनी कोठी 'इशरत मंजिल' में रहने चले गए। ७५ वर्ष की भरी-पूरी आयु में ९ सितंबर, १९२१ को यहीं अकबर इलाहाबादी का इंतकाल हुआ था। उनको काला डांडा के कब्रिस्तान में दफनाया गया था।

संभवत: जब अकबर इलाहाबादी ने घर बनवाया होगा, तब उस इलाके में बहुत कम आबादी होने के चलते काफी सुकून और शांति रही होगी और वे सेवा-निवृत्ति के बाद का अपना समय साहित्य-सृजन में बिताने के नजरिए से एकांतप्रिय माहौल चाहते रहे होंगे, लेकिन

जब वे रिटायर होकर रहने के लिए पहुँचे तो वहाँ भी काफी चहल-पहल हो गई थी। तब तक सरकार ने 'इंप्रूवमेंट ट्रस्ट एक्ट' पारित कर दिया था और शहरों के विकास को गति प्रदान की। इसी के चलते शहरों में 'इंप्रूवमेंट ट्रस्ट' (जो अब विकास प्राधिकरण कहलाते हैं) बने और ताबड़-तोड़ कॉलोनियों तथा इनमें मकानों के निर्माण शुरू हुए। उस समय अकबर ने यह शेर कहा—

जिस जगह हमने बनाया घर/ सड़क पर आ गया!

आइए, उनके घर से जुड़े एक-दो प्रसंग और सुन लीजिए। कहते हैं कि कश्मीरी ब्राह्मण मोतीलाल नेहरू ने जब राजा परमानंद पाठक से 'आनंद भवन' खरीदा, तब उर्दूदाँ होते हुए उन्होंने यही नाम उसके लिए चुना, किंतु अकबर इलाहाबादी के निवास का नाम होने के कारण उन्होंने इसके हिंदी अनुवाद के अनुसार क्रय की हुई कोठी का नाम 'आनंद भवन' रख दिया, जिसका अर्थ 'इशरत महल' ही है।

प्रसंगवश यहाँ बताते चलें कि यह 'आनंद भवन' वस्तुतः सर सैयद का निवास था। सर सैयद अहमद ने १८७१ में निर्मित अपनी कोठी का नामकरण अपने पुत्र सैयद महमूद के नाम पर 'महमूद मंजिल' किया था। यही सैय्यद महमूद इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रथम भारतीय जज थे। फिर मुरादाबाद के राजा परमानंद पाठक ने इस कोठी को अक्तूबर, १८९४ में खरीदकर इसका नाम 'पाठक निवास' रखा। अगस्त, १८९९ में मोतीलाल नेहरू ने उनसे यह कोठी खरीदी थी।

प्रसंगवश यहाँ बताते चलें कि यह 'आनंद भवन' वस्तुत: सर सैयद का निवास था। सर सैयद अहमद ने १८७१ में निर्मित अपनी कोठी का नामकरण अपने पुत्र सैयद महमूद के नाम पर 'महमूद मंजिल' किया था। यही सैय्यद महमूद इलाहाबाद उच्च न्यायालय के प्रथम भारतीय जज थे। फिर मुरादाबाद के राजा परमानंद पाठक ने इस कोठी को अक्तूबर, १८९४ में खरीदकर इसका नाम 'पाठक निवास' रखा। अगस्त, १८९९ में मोतीलाल नेहरू ने उनसे यह कोठी खरीदी थी।

इसी आनंद भवन में १९१७ में एनी बेसेंट के होम रूल लीग का दफ्तर भी खुला था। इसी साल वे कांग्रेस के कलकत्ता में हुए वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षा भी रहीं। किंतु तिलक महाराज की होम रूल लीग ने ज्यादा गति पकड़ी और एनी बेसेंट की क्रांतिकारी भावना शुषुप्तावस्था में ही चली गई। अकबर की नजर और कलम का पैनापन देखिए—

अब मिसेज बेसेंट नज्मों में कहानी बन गईं,
राज हम पाएँ-न-पाएँ वे तो रानी बन गईं!

१९०३ में अकबर इलाहाबादी के एक पुत्र हाशिम की मृत्यु हो गई थी, जिससे वे टूट से गए। जीवित पुत्र इशरत हुसैन भी जिला जज रहे, किंतु दोनों पौत्र अकील और मुसलिम पाकिस्तान चले गए थे। अकबर इलाहाबादी के अशा'आरों, नज्मों, गजलों का संकलन 'कुल्लियाते अकबर' के तीन खंड उनके जीते-जी छपे थे, जबकि चौथा खंड १९४६ में कराची से प्रकाशित हो पाया था।

विभिन्न सरकारी महकमों में अपनी नौकरियों के चलते अकबर को अंग्रेज औपनिवेशिक शासन के हर स्तर का व्यक्तिगत अनुभव हुआ था। उन्होंने उसके औपनिवेशिक स्वरूप को बहुत अच्छी तरह से समझा था कि कैसे वे भारत से कच्चा माल ले जाकर अपने उत्पादित माल के बाजार के रूप में इस देश का शोषण कर रहे हैं। उन्हें ज्ञात था कि आंग्ल सरकार ने भारत की अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के पूरक अर्थ-तंत्र में तब्दील कर दिया था। वे लिखते हैं—

यह गलत है कि मुल्के इसलाम है हिंद
यह झूठ कि मुल्के लक्ष्मण-औ-राम है हिंद
हम सब हैं मुती औ खैरख्वाहे इंग्लिश
यूरोप के लिए बस एक गोदाम है हिंद!

इसमें हिंदू-मुसलिम दोनों संप्रदायों के लिए एक संदेश भी है। उन्होंने अपने बाल्यकाल में १८५७ की असफलता देखी थी, अत: भारत की दोनों मुख्य कौमों के लिए यह एक आवश्यक चेतावनी भी थी, क्योंकि १८५७ की पुनरावृत्ति रोकने के लिए अंग्रेज शासन 'फूट डालो, राज्य करो' की नीति को अमल में लाने लगी थी।

उनका संवेदनशील हृदय शायद इतने पर ही नहीं रुका और उन्हें सर सैयद अहमद के प्रयासों में—एक कौम, यथा मुसलिमों के उत्थान के प्रयासों के चलते भी कुछ कमी नजर आई, तभी उन्होंने लिखा—

है यही बेहतर अलीगढ़ जाके सैयद से कहूँ,
मुझसे चंदा लीजिए, मुझको मुसलमां कीजिए।

जब लोग उन्हें कौमों पर आधारित सांप्रदायिक राजनैतिक गतिविधियों या बहस-मुबाहिसों में सम्मिलित होने के लिए उकसाते, तब उनका जवाब बहुत माकूल होता था—

मजहबी बहस मैंने की ही नहीं,
फालतू अक्ल मुझमें थी ही नहीं!

अंग्रेजों के शासन में अकबर जिस तरह से महत्त्वपूर्ण सरकारी नौकरी से सेवा-निवृत्त हुए थे, उनको संतुष्ट करने के लिए काफी होता किंतु वे कहाँ ऐसे ही चुप बैठनेवाले थे! सिर्फ खुद पढ़ लेने या नौकरी भर करके अपनी स्थिति सुदृढ़ एवं सुनिश्चित कर लेने को वे खुदगर्जी के अतिरिक्त कुछ नहीं मानते थे। जाहिर है, उनको लगता था कि एक इनसान के रूप में भी पढ़े-लिखों का दायित्व और भी होता है, अत: वे लिखते हैं—

जिंदगी में शेख जी क्या कारेनुमाया कर गए,
बी.ए. किया, नौकर हुए, पिंशन मिली और मर गए!

इसी तरह बदलते वक्त में जब स्कूल और पढ़ाई में व्यस्त होकर कुँवारी कन्याएँ पनघट पर दिखनी कम हो गईं, तो पढ़ाई के महत्त्व पर हलके-फुल्के ढंग से पनघट की चुहलबाजी का यह चित्र खींच गए। वास्तव में उस दौर में गाँव के पनघट पर रिश्ते की भाभी-ननदों की चुहलबाजी होती ही रहती थी। जब टी.वी. था ही नहीं, रेडियो भी बहुत कम होते थे और गाँवों में तो वे भी नहीं; अत: ग्रामीण मनोरंजन का

एक महत्त्वपूर्ण स्थल था पनघट। देखिए, अकबर ने कैसे उसे कैद करके हमारे सम्मुख पेश किया है—

न हिलमिल है, और न अब पनियाँ का वह मामूल है,
एक ननदिया थी, सो वह भी दाखिले-स्कूल है!

समकालीन सियासत पर उनकी पैनी नजर थी। अत: उसपर भी तंज कसने से नहीं चूकते हैं। वे देख रहे थे कि कैसे भारतीय राजनैतिक लोग अंग्रेज सरकार की नजरों में चढ़ने के लिए सियासत का इस्तेमाल कर रहे थे। उनका एक ही उद्देश्य था, कैसे दिखाएँ कि वे भारतीयों के हिमायती हैं और उनके ही हितों की बात कर रहे हैं, जबकि उनका पूरा लक्ष्य अंग्रेज बहादुर को खुश करके उसकी नजदीकी हासिल करना था—

कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ,
रंज लीडर का बहुत है, मगर आराम के साथ।

१८५७ के बाद इलाहाबाद पश्चिमोत्तर प्रांतों की राजधानी हो गई थी। यहाँ यूनिवर्सिटी, हाई कोर्ट, सचिवालय आदि-आदि स्थापित थे और जागृति के चलते समाचार-पत्र तथा प्रेस का बहुत बोल-बाला हो गया था। इसी के चलते अपनी नेतागिरी चमकाने के लिए राजनैतिक लोग इन पत्रों के संपादकों के साथ भी प्रगाढ़ संबंध बनाते थे, ताकि इस सीमित संचार-माध्यम से खबरों के जरिए लोगों के दिलोदिमाग पर छाकर अपनी राजनीति चमका सकें। संभवत: इसीलिए उनके मन में सियासी लोगों के लिए कोई जगह नहीं थी। अत: इन सब राजनैतिक गतिविधियों को वे हिकारत की नजर से देखते थे। इसीलिए तो उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के लिखा है—

चोर के भाई गिरहकट तो सुना करते थे,
अब ये सुनते हैं एडिटर के बिरादर लीडर!

न जाने आज के इस उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में वे क्या अभिव्यक्त करते, क्योंकि आधुनिकीकरण की शुरुआत की बदलती फिजा में लिखा है—

दुनिया में अब दुरुस्त है कायम न दीन है,
जर की तलब में शेख भी कौड़ी का तीन है।

मार्क्स के धर्म के उस 'अफीम' वाले कथन का हिंदुस्तानी संस्करण भी उन्होंने आमफहम भाषा में किस अंदाज से किया है, आइए, उसकी बानगी देखें—

फरमा गए हैं ये खूब भाई घूरन,
दुनिया रोटी है और मजहब चूरन!

भारत में भी कैसे नई आजादी की चेतना हावी हो रही थी और फिर गांधी का प्रभाव भारतीय राजनीति पर किस प्रकार तारी हो रहा था, उस पर भी अकबर ने सटीक लिखा है। राजतंत्र का स्थान कैसे जमहूरियत ले रही थी, उसकी झलक देखिए—

इंकलाब आया, नई दुनिया, नया हंगामा है,
शाहनामा हो चुका अब वक्ते गांधीनामा है।

ऊपरवाले शेर की भाँति ही एक अन्य शेर में समकालीन भारतीय राजनीति में गांधीजी और आमजन पर उनके अहिंसक सिद्धांतों पर आधारित आंदोलनों के बढ़ते प्रभाव को भी अकबर ने बहुत सुंदर ढंग से समेटा है—

हो मुबारक हुजूर को गांधी, ऐसे दुश्मन नसीब हैं जिसको,
कि पिटें खूब और सर न उठाएँ,
और खिसक जाएँ जब कहें खिसको।

हमें यहाँ याद रखना चाहिए कि अकबर इलाहाबादी का इंतकाल १९२१ के सितंबर माह में हो गया था, अत: गांधी के तीन प्रारंभिक आंदोलनों, यथा खेड़ा, चंपारण और बारदोली के अलावा सिर्फ एक ही बड़े आंदोलन की शुरुआत ही उन्होंने देखी थी। यानी वे असहयोग आंदोलन को भी चौरी-चौरा कांड से पहलेवाले चरण तक ही देख पाए थे। फिर भी गजब की अंतर्दृष्टि और दूरदृष्टि थी, जिससे उनकी अनुभवी आँखों ने समझ लिया था कि हिंदुस्तान में अब गांधी का जादू सबके सिर पर चढ़कर बोलेगा और ब्रिटिश सिंहासन डोलेगा।

साअ

८/५ ए, बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४५२७९९००८

इस अंक के चित्रकार

दिलीप कुमार शर्मा 'अज्ञात'

सुपरिचित कवि, कहानीकार, चित्रकार, आवरणकार एवं अनुवादक। देश की लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, अनुवाद (बांग्ला से हिंदी अनुवाद), लेख, छायाचित्र आदि प्रकाशित। वागर्थ, कथादेश, जनपद, समकालीन भारतीय साहित्य में एकल छायाचित्र और एकल चित्र प्रकाशित। किताबों के आवरण में विशेष सक्रिय। संप्रति हैजलवुड स्कूल, छपरा (सारण) में अध्यापन।

साअ

संपर्क : हैजलवुड स्कूल, साँढा
(बाजार समिति के पास)
भाया, पोस्ट : तेलप,
छपरा-८४१३०२ (बिहार)

राम झरोखे बैठ के

अपने मोहल्ले के लोग

● गोपाल चतुर्वेदी

हमारा खयाल है कि हर मोहल्ले में आधा दर्जन कवि, एकाध दार्शनिक, दस-बारह अदद झंझटी, चंद समाजसेवक और कुछ चुप्पे जरूर बसते हैं। इस विचार के पीछे अपना मोहल्ले का भोगा हुआ यथार्थ है। देश की तर्ज पर हमारा शहर भी पूरी तरह विकसित न होकर विकासशील है। यानी यहाँ मॉल और ठेलेवालों का सुखद सहअस्तित्व है। बायोमेट्रिक हाजिरी भी है और बाबुओं का भ्रष्टाचार भी। तभी तो मोहल्ले को कृतार्थ करते चतुर्थ श्रेणी के अधिकारी, अर्थात् राम प्रसादजी सरकार के हर दफ्तर के संपर्क-सूत्र हैं।

बस उनके वक्त की कीमत है, वह भी प्रतीक के बतौर। उनकी स्वीकारोक्ति है कि वे यह वसूली विवशता के नाते करते हैं, वरना लोग उनका जीना मुहाल कर दें। भुक्तभोगियों का अनुभव है कि रामप्रसाद फीस लेकर व्यक्ति को संबद्ध कार्यालय के अफसर तक पहुँचाने में समर्थ हैं। उसके बाद उनके वहाँ के समकक्ष का जिम्मा है, मिलवाने आदि का। जैसे रेल में सफर की दो पटरियाँ हैं, वैसे ही देश में समय की। एक पटरी उन्नीसवीं सदी की है, दूसरी इक्कीसवीं की। मुल्क की ट्रेन इन्हीं बेमेल पटरियों पर यात्रा कर विकास की ओर अग्रसर है। कोई नहीं जानता कि इस बारे में विकास की क्या प्रतिक्रिया है? उन्नीसवीं सदी की मानसिकता के अनुसार माई-बाप सरकार की घुसपैठ जीवन के हर क्षेत्र में है। वर्तमान जैसे कार्यालय के हैं, वैसे ही अस्पताल के। सबके अपने-अपने बिचौलिये हैं। इनकी मदद के बिना किसी भी सरकारी संस्थान में प्रवेश नामुमकिन है। दीगर है कि इसके पश्चात् भी काम होना या जान बचना नियति पर निर्भर है। कुछ की मान्यता है कि सरकारी अस्पताल मरघट की यात्रा के वैसे ही लाजिमी पड़ाव हैं, जैसे सर्वव्याप्त दफ्तर करप्शन के।

आलम यह है कि एक दफ्तर शराब रोकने का है, तो दूसरा उसे बेचने का। सरकार अपनी आमदनी के लिए दारू बेचती है और गांधी बाबा की आत्मा की शांति के लिए मद्यनिषेध की नीति अपनाती है। रावण के कुल जमा दस सिर थे, सरकार के न जाने कितने हैं? ठेके का लाइसेंस बेचना उसका व्यापारी अवतार है और मद्यनिषेध का प्रचार जन-कल्याणी। आश्चर्य का विषय है! विरोधी शासक-दल की हर नीति की भर्त्सना करते हैं और सत्ता पाकर उसी का अनुपालन। सरकार में इतने विरोधाभास कि उनका पता लगाने के लिए उसे कुछ शोधार्थियों को अनुदान देना चाहिए। शायद तब वह स्वयं के विभिन्न चेहरों से परिचित हो सके। सबसे रोचक स्थिति भारतीय बाबू की है। निजी जीवन में दहेज लेने, पत्नी को प्रताड़ित करने से लेकर मुफ्तखोरी तक के हर अपराध वह करता है, जबकि सार्वजनिक रूप से इन्हीं को रोकना उसका दायित्व है।

उपरोक्त निष्कर्ष मोहल्ले के झंझटियों का है। इसके लिए उन्होंने रामप्रसाद से बहस के दौरान कुछ तथ्य उगलवाए हैं, कुछ अपने जानकारों के माध्यम से। यों कुछ झंझटी सरकार में भी हैं। जिस थाली में खाते हैं, उसी में छेद करना उनका स्वभाव है। दीगर है कि उन्होंने दफ्तर में हाजिरी लगाने के अलावा किसी सरकारी काम की जहमत नहीं उठाई है। इस कारण शासकीय गतिविधियों के विषय में उनके लिए दूसरों की सहायता अनिवार्य है। उनकी काहिली सूरदास की ऐसी काली कांबर है, जिस पर दूसरा रंग चढ़ने की गुंजाइश तक नहीं है। अपनी यही काहिली वह दूसरों को कार्य-कुशलता के नाम पर बाँटते रहते हैं। उनका इकलौता उपयोगी काम छिद्रान्वेषण है।

दफ्तर से लेकर घर तक उन्होंने यही किया है। मुहल्ले में उनका खौफ है। कोई भी ऐसा नहीं है, जिससे अकारण उन्होंने झगड़ा-झंझट न किया हो। लोग उनसे बचके निकलते हैं। उनकी विशेषता है कि वे किसी को बचने नहीं देते। वैसे ही जैसे शिकारी बिल्ली चूहे को। बिल्ली शिकार की जान लेती है, ये शिकार के चैन-हरण में माहिर हैं। कई सताए सिर पकड़कर बैठे पाए गए हैं। पूरा मोहल्ला प्रतीक्षारत है कि इन झंझटियों का कोई तोड़ मिले। सच्चाई कि ये बेजोड़ हैं। ऐसे जन्मजात झंझटी तभी खुश रहते हैं, जब दिन में दो-तीन झगड़े-झंझट कर लें, वरना कौन जाने उनका पेट पिराता हो या सिर? ऐसे इस तथ्य की पुष्टि अभी शेष है और शेष ही रहेगी। कौन माई का लाल है, जो झंझटियों से यह दरयाफ्त करने का जोखिम ले? ऐसे लोग यह कहकर संतोष कर लेते हैं कि इनसानी अजायबघर में किस्म-किस्म के प्राणी हैं।

मोहल्ले के समाजसेवक को हारी-बीमारी में ग्रसित हर घर से हमदर्दी है। उनकी व्यस्तताएँ हैं। मोहल्ला ही उनकी सेवा का दायरा नहीं

है। पूरा शहर उनका क्षेत्र है, जो कभी-कभी पूरे सूबे तक विस्तारित हो जाता है। इसी के चलते वह बीमार के घर जाएँ, न जाएँ; कोई मरे तो वे श्मशान में जरूर पाए जाते हैं। यह घाट-सेवा उनकी समाज-सेवा का अनिवार्य अंग है। इसके अलावा वरदीवालों से उनकी निकटता जग-जाहिर है। मोहल्ले के शरीफ पुलिस से वैसे ही डरते हैं, जैसे पुलिस सफेदपोश डाकुओं से। किसी को काम पड़े तो समाजसेवक उसके साथ थाने जाने को प्रस्तुत रहते हैं।

पीड़ित महिलाओं की देखभाल के लिए उनका एन.जी.ओ. भी चलता है। समाजसेवक के घर के पास ही एक बिल्डिंग है। इसी में उनका दफ्तर और परित्यक्ता महिला-आश्रम भी है। प्रारंभ में कंधे पर झोला डाले समाजसेवक मोहल्ले में टहलते नजर आते थे। बुजुर्ग बताते हैं कि दो पैरों की सवारी से लेकर स्कूटर पर ही सवारी करते थे। मोहल्ले के लोगों का विश्वास है कि परित्यक्ता महिलाओं की सेवा ने उनकी किस्मत खोल दी है। अब उनके दफ्तर में खासी चहल-पहल रहती है। महिलाओं-पुरुषों के सतत आगमन के कारण उनको एक सहायक रखना पड़ा है। अब वे केवल चुनिंदा लोगों को ही दर्शन देते हैं।

समाजसेवक के असली ठाठ और रुतबे का प्रदर्शन चुनाव के समय होता है। हर दल का प्रत्याशी उसके चक्कर काटता है। वह जैसे मधुमक्खी, जिससे सबको वोट के शहद की अपेक्षा है। मोहल्ले में अफवाह है कि वह उसी प्रत्याशी के साथ प्रचार करता है, जो उसको सबसे अधिक नकदी दे। उसके प्रचार से मोहल्ले के वोट पर कितना प्रभाव पड़ता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। कुछ का आरोप है कि समाजसेवक बिकाऊ है। उसके कोई आदर्श या सिद्धांत नहीं हैं। थोक वोट दिलाने का वादा वह सबसे अधिक बोली लगानेवाले प्रत्याशी से करता है और आलू-भटे सा बिक जाता है। समाजसेवक के कुछ समर्थक भी हैं। उनका तर्क है कि सिद्धांतों के दिन कब के लद गए। अब हर दल का एकमात्र लक्ष्य सत्ता पाना है। इस पावन लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रत्याशी धन, ईमान, उसूल आदि सबकी कुरबानी को कटिबद्ध है। यदि समाजसेवक ने अपने सेवा-संस्थान की खातिर लक्ष्मी की बहती गंगा से कुछ चंदा वसूल ही लिया तो कौन सा जुर्म हो गया? प्रत्याशी का हो, न हो, समाजसेवक का उसूल सेवा है और वह उसी में लगन और समर्पण से लगा है।

इधर उसके सेवा-संस्थान में किसी महिला की शिकायत पर पुलिस की रेड हुई और उससे वहाँ चल रहे सैक्स रैकेट जैसे कई खुलासे हुए हैं। पूरे मोहल्ले का मत है कि सवाजसेवक के चारित्रिक गमले में स्वार्थ के कैक्टस उगते हैं, सेवा के गुलाब नहीं। इसका एक दुखद परिणाम है। समाजसेवकों की पूरी जमात से मोहल्ले की आस्था उठ गई है, खासकर सेवा की स्वैच्छिक संस्थाओं से। पूरे मोहल्ले को संदेह है कि जाने किन में कौन-कौन से 'फ्रॉड' और निजी स्वार्थ पनपते हैं।

मुहल्ले की विविधता में कवि नामक जंतु भी उपलब्ध हैं। अगर कोई मोहल्ले के पार्क में खड़े होकर गला फाड़कर कवि-सम्मेलन की हाँक लगाए तो कुछ घरों के दरवाजे अचानक खुलेंगे और कुछ विभूतियाँ आधी जगी, कुछ खोई, कुछ सोई बाहर निकलेंगी। उन्हें यकीन है कि यदि कवि-सम्मेलन है तो मंच पर उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। उन्हें निमंत्रित किए बगैर कवि-सम्मेलन की कल्पना तक व्यर्थ है। इसका कोई क्या करे कि सफल कवि-सम्मेलन होते रहते हैं उनके बगैर, फिर भी उन में गजब का आत्मविश्वास है या फिर इसे आत्ममुग्धता कहें? वह मन-ही-मन व्रत लेते हैं कि दफ्तर के वार्षिक कवि-सम्मेलन में बहैसियत आयोजक वह उसी बड़े कवि को बुलाएँगे, जो ठेके पर ऐसे आयोजन करवाता है। कौन कहे, वह उनपर कृपालु हो जाए और उसे भी ठेके की टोल में शामिल कर ले? फिर उनकी प्रसिद्धि का देशव्यापी होना कोई रोक नहीं सकता है। यह भी संभव है कि इंग्लैंड-अमरीका जाकर उनपर अंतरराष्ट्रीय कवि का ठप्पा लगे।

दरअसल इधर उन्होंने दस-पंद्रह चुटकुले पत्र-पत्रिकाओं से चुराए हैं। वे बेचैन हैं उन्हें सुनाने को। कहीं किसी प्रतिद्वंद्वी के हाथ लग गए तो उन्हें फिर नयों की तलाश करनी पड़ेगी। कभी-कभी उन्हें दु:ख होता है कि आज काव्य के मंच पर कविता की कद्र न होकर चुटकुलों का सम्मान है। सिर्फ चुटकुलों के बल पर कई कवि तालियाँ ही नहीं बटोरते, कवि-सम्मेलन भी फतह करते हैं। कितना भी हास्यास्पद क्यों न हो, मंचीय कविता अब न गीत है, न गजल, बस चुटकुलों का पर्याय होकर रह गई है। वह समर्पित कवि है। श्रोताओं की रुचि के कारण उन्हें चुटकुले सुनाने पड़ते हैं, वरना उनके भंडार में एक-से-एक शानदार कविताएँ हैं। वह अधीरता से मंच पाने को प्रतीक्षारत हैं। कोई उन्हें बुलाए तो वे इस हद तक आतुर हैं कि अपने खर्चे पर कवि-सम्मेलन की शोभा बढ़ाने को तैयार हैं।

दुर्दशा इतनी है कि वे शादी-ब्याह से लेकर वर्षगाँठ तक पर अपना हुनर प्रस्तुत करने को मजबूर हैं। कार्यालय उन्हें हिंदी दिवस तक पर

दुर्दशा इतनी है कि वे शादी-ब्याह से लेकर वर्षगाँठ तक पर अपना हुनर प्रस्तुत करने को मजबूर हैं। कार्यालय उन्हें हिंदी दिवस तक पर याद नहीं करते हैं। उनका अपना दफ्तर ही एक अपवाद है, जहाँ वे अधिकारियों के स्वागत-विदाई, सेवानिवृत्ति पर अपने काव्य की बानगी से भावों के पुष्प चढ़ाने को कृतसंकल्प हैं। इतना ही नहीं, हिंदी दिवस पर उनकी कविताएँ समारोह का अपने आप समापन कर देती हैं। भरा हॉल खाली हो जाता है और अध्यक्ष मन मसोसकर काव्य-पाठ से वंचित रहकर उन्हें कोसता घर लौटता है। बस यही गनीमत है कि पैसे मिल गए, वरना क्या कर लेते?

याद नहीं करते हैं। उनका अपना दफ्तर ही एक अपवाद है, जहाँ वे अधिकारियों के स्वागत-विदाई, सेवानिवृत्ति पर अपने काव्य की बानगी से भावों के पुष्प चढ़ाने को कृतसंकल्प हैं। इतना ही नहीं, हिंदी दिवस पर उनकी कविताएँ समारोह का अपने आप समापन कर देती हैं। भरा हॉल खाली हो जाता है और अध्यक्ष मन मसोसकर काव्य-पाठ से वंचित रहकर उन्हें कोसता घर लौटता है। बस यही गनीमत है कि पैसे मिल गए, वरना क्या कर लेते?

इस सबके बावजूद कवि मोहल्ले की शान है। उनके रहते मोहल्ले को संतोष है कि वे साहित्य-कला विहीन नहीं हैं। बात छोटे-बड़े की है। मोहल्ले की पोखर में तुक्कड़ ही सही, हैं तो अपने। ऐसे भी कोई माने या न माने, कविता का जमाना अब लद चुका है। मंचों पर चुटकुले छाए हैं, नहीं तो तुक्कड़। ऐसे में मोहल्ले को इस लुप्त होती सफेद शेर जैसी प्रजाति को बचाकर रखना आवश्यक है। ऐसे भी यह एक-दूसरे की आलोचना भले कर लें, झंझटियों और समाजसेवकों के समान खतरनाक नहीं है। केवल मौके-बेमौके कविता सुनाकर बोर ही तो करते हैं, पर क्षतिपूर्ति के बतौर चाय-कॉफी भी पिलाते हैं। इनके घरों में अपेक्षाकृत शांति रहती है। बीबी लड़ने पर उतारू हो तो वे उसे कविता सुनाकर चुप ही नहीं कराते, बल्कि पत्नी स्वयं पलायन कर जाती है। उनकी कविता घरेलू अमन-चैन का प्रभावी साधन है। कई घरेलू तकरार से त्रस्त पति यह मनाने लगे हैं कि काश! वे भी कवि होते।

कुछ चुप्पे भी हैं, जो हमारे मोहल्ले की शोभा हैं। कहीं मिले और किसी ने पूछा कि 'सब ठीक है?' तो वे सिर्फ 'हूँ' करते हैं। कहना कठिन है कि आशय हूँ से हाँ है कि न? यह सुननेवाले पर निर्भर है कि वह इसका क्या अर्थ लगाए? यों 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' चक्कर भावना का है। कोई उन्हें स्वस्थ समझता है, कोई बीमार। भारत में बातचीत के दो लोकप्रिय और प्रचलित विषय परचर्चा और पॉलिटिक्स हैं। मोहल्ले का घुन्ना इन तक पर खामोश है। कुछ कहते हैं कि वह 'जाए न व्यापे जगत् गति' के संकट से त्रस्त है तो कुछ को संदेह है कि वह इनसे वीतराग है। कुछ को लगता है कि एक चुप सौ मर्जों की दवा है तो कुछ को शक है कि वह कहीं पुलिस के सूचना-तंत्र का हिस्सा तो नहीं है? यह भी मुमकिन है कि वह वर्तमान वक्त की बकबक के प्रदूषण से इतना तंग है कि उसने चुप रहने की कसम खाई है। कम-से-कम एक के ध्वनि प्रदूषण से तो मोहल्ला बचे।

संभव है कि वह मौन चिंतक है, जो जगत् की चिंता करते-करते जुबान रहते भी जान-बूझकर उसका प्रयोग नहीं करता है। सबकी अपनी चिंताएँ हैं। उनको बढ़ाने से क्या फायदा? बोलने या बात करने से देश की सियासत में अब तक कुछ अंतर आया है, जो कोई भविष्य की उम्मीद रखे? पारिवारिक श्रेष्ठता हो या सरकार में शुचिता, देश की दशा जैसी थी, वैसी है और कुछ नैराश्य के निराश प्रतिनिधियों के अनुसार आगे भी ऐसी ही रहेगी। उसका परिवार चुप रहकर मोहल्ले की हर गतिविधि में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। यों इस चुप्पा परिवार के न दोस्त हैं, न दुश्मन। न उसे होली का चंदा देने से इनकार है, न ईद का। फिर भी शोर-समर्पित मोहल्ला उससे अकारण सशंकित है। कुछ की सोच कि 'यह पुलिस का इन्फॉर्मर है' तक तो गनीमत है, पर घुन्ने पर किसी पड़ोसी देश का खुफिया होने का शक नाइनसाफी है। शक्ल हो या बातचीत, पड़ोसी देशों और हममें कोई बुनियादी फर्क तो नहीं है। कभी सभी एक रहे हैं। कहीं यह इसीलिए तो चुप नहीं है कि बोला तो किसी-न-किसी संदर्भ में पोल न खुल जाए? हमें पहली बार समझ में आया है कि न बोलने के कितने दुष्परिणाम हैं? चुप्पी कितनी अफवाहों को जन्म देने में सफल है?

मोहल्ले के दार्शनिक अकसर पान की दुकान पर पाए जाते हैं। उनका इतिहास रोचक है। वे कभी सरकार में मुलाजिम थे। बिना सूचना गायब रहने के अपराध में अनुशासनात्मक काररवाई के पश्चात् निकाले जाने पर कोर्ट चले गए। मुकदमा अभी भी लंबित है। कुल जमा दस साल ही तो हुए हैं। न्याय की जटिल प्रक्रिया की बदौलत कई फरियादी तो निर्णय के इंतजार में 'ले लो अपनी लकुट-कमरिया' कहते-कहते स्वर्ग सिधार जाते हैं। सरकार और न्यायालय की 'अब मैं नाचो बहुत गोपाला' जैसी प्रक्रिया के बावजूद ये यहीं जमे हैं। जैसे और कुछ न कर पाने की अवस्था में अफसर बिना अधिकार और काम के सलाहकार बन जाता है, वैसे ही निष्क्रियता से तंग आकर कभी के कामचोर बाबू ने दार्शनिक अवतार का वरण किया है। अब वे पास की पान की दुकान के स्थायी सदस्य और दार्शनिक हैं। वहाँ पड़ी चारपाई पर अधलेटे, लेटे या बैठे हर बातचीत में अपनी टाँग अड़ाते और दर्शन झाड़ते हैं।

एक दिन मोहल्ले की विविधता की बात चली तो उनका निष्कर्ष था—''हमारा मोहल्ला शहर का ही नहीं, देश का प्रतीक है। सब तरह के लोग हैं देश में। पैसे का लोभ और उसे और पाने की लालच की प्रतिभा हमें वास्तविक भारतीय बनाती है।'' किसी ने उन्हें हमारी सांस्कृतिक विरासत और अध्यात्म की याद दिलाई। उनका दो-टूक उत्तर था, ''दुनिया के हर देश की संस्कृति और विरासत है। रहा अध्यात्म, तो भैये! कौन ऐसा मशहूर स्वामी-गुरु नहीं है, जिसका अपना महल न हो और जो मोर की आकांक्षा नहीं करता है? कितने हैं, जो अपने उपदेश पर अमल करते हैं? क्या इन्हें पता नहीं है कि जीवन नश्वर है और हम अपने को कुछ भी समझें, मात्र साये के अलावा और है ही क्या? तभी तो कवि कहता है कि 'छाया मत छूना मन, होगा दु:ख दूना मन।'

इस दार्शनिक गुरु की चर्चा के बाद देश के नागरिक, नेताओं और धर्मगुरुओं में अपनी आस्था-श्रद्धा और बढ़ गई है। जब तक पकड़ में न आएँ, हम सब सम्मानित शरीफ हैं। भविष्य का कौन जाने?

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

दिव्य आत्मा बेटियाँ

• प्रेमकिशोर पटाखा

हास्य-व्यंग्य के प्रख्यात कवि-लेखक। बाल-साहित्य में भी दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित। इन दिनों भी लेखन में सक्रिय। टी.वी. के अनेक चैनलों पर हास्य-व्यंग्य की फुलझड़ियाँ गुदगुदाती हैं।

कहते हैं—मारनेवाले से बचानेवाला बलवान होता है
क्योंकि बचानेवाला खुद भगवान् होता है
फिर मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे यह बताएँ
क्यों हो रही हैं गर्भ में कन्या भ्रूण हत्याएँ?
इस सवाल के जवाब पर हमें रात भर नींद नहीं आई
करवटें बदलते हुए रात बिताई
भोर की मस्ती में पलकें अलसाईं
झुकीं और हमें नींद आई
क्या देखते हैं, हम गर्भ के सागर में गोते लगा रहे हैं
सामने एक भ्रूण में कन्या के दर्शन पा रहे हैं
क्या जो सृष्टि का शृंगार है
कन्या, जो कभी सीता तो कभी दुर्गा का अवतार है
फिर हमें उसे मारने का क्या अधिकार है?
उसने मुझे देखा और मुसकराई, बोली—
रे कवि! तुम यहाँ?
मैंने कहा—हाँ, तुमने वो कहावत नहीं सुनी
जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि
और हाँ अब तुम भी पृथ्वी पर उजागर हो जाओगी
एक नए संसार से जुड़ जाओगी।
उसने मुझे बताया, मैं उसी संसार में जाने के लिए
यहाँ जप कर रही हूँ,
अपनी जननी की सुरक्षा के लिए
व्रत और तप कर रही हूँ।
जननी, जिसके गर्भ में पलता है
सृष्टि की रचना का महान् बीज मंत्र
मैंने टोका—हाँ, उसी बीज मंत्र को
बाहर निकालकर फेंक देता है
अदना सा एक मानवीय यंत्र
उस समय तुम्हारा भगवान् कहाँ सोता है?
कहते हैं, मारनेवाले से बचानेवाला बलवान होता है
उसने मुझे बताया, मेरा भगवान् तो यहाँ
मेरी हर समय रक्षा करता है
मेरे गर्भ का कवच बनकर मेरी सुरक्षा करता है
मैं भी उस परमपिता परमेश्वर की प्यारी संतान हूँ

विधि का विधान हूँ, रचना हूँ, मंत्र हूँ
जीवित संयंत्र हूँ
मुक्त मुसकराती हूँ, धरती पर आती हूँ
सपने सजाती हूँ, नया घर बसाती हूँ।
तभी वहाँ साक्षात् मौत का शिकंजा आया
गर्भ के सागर में जैसे भूचाल आया
उसने झट उस कन्या के भ्रूण को वहीं धर दबाया
तब मुझे उसकी चीख सुनाई दी
जो उसके अंत:करण से आई थी
सुनो कवि! तुम यह जानना चाहते हो
जिसको बनानेवाला भगवान् होता है
फिर उसका यहाँ क्यों बलिदान होता है?
मैं अपनी जननी की इच्छा के लिए
खुद को बलिदान कर देती हूँ
क्योंकि वह मेरी माँ है और मैं उसकी बेटी हूँ।

कन्या के उस भ्रूण ने, माँ से करी पुकार।
मैं भी तेरी लाड़ली, माँ मुझको मत मार॥
जन्म दिया तो माँ तेरा, दूँगी कर्ज उतार।
तेरी बगिया में खिलूँ बनकर नई बहार॥
जैसे चिड़िया बाग की, पिंजड़े में संसार।
बड़ी हुई तो बाँध दी, गई पिया के द्वार॥

माना लड़के से तेरा चले वंश-परिवार।
मगर वंश जो पालती, उसका ही संहार॥
सुनो कवि! जब यह संहार
समय की तराजू पर तुलता है

तब धरती भूकंपित होती है
प्राकृतिक आपदाओं का तांडव-दौर शुरू होता है
ज्वालामुखी फूटता है,
सागर की लहरों का कहर टूटता है
काँप-काँप जाती है धरा,
जैसे फूट जाता हो पाप का घड़ा
इसलिए कहती हूँ, समय-चक्र चलने दो
सृजन को मचलने दो
गर्भ के मंदिर में दीपशिखा जलने दो
और गर्भ का मंदिर तो उस मंदिर से भी महान् होता है,
जिसमें सृष्टि का निर्माण होता है
जिसको बनानेवाला स्वयं भगवान् होता है।

दिव्य आत्मा बेटियाँ, करो नहीं संहार।
लेने दो हर कोख से बेटी को अवतार॥
बेटी माने है धरा, धरा अर्थ आधार।
बेटी से ही सृष्टि का, होता है शृंगार॥
कोख-लोक उस परम का, जिसमें प्रभु का वास।
अंधकार के बीच में, जगमग हुआ प्रकाश॥
कथा व्यथा उस भ्रूण की, जिसका है बलिदान।
बेटी मिलती भाग्य से, होता कन्यादान॥

४३, लक्ष्मीपुरी सराय हकीम
अलीगढ़-२०२००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८९७०६७२७६

सार्थक सोच

लघुकथा

● कृष्ण मनु

पिछले चार दिनों से वह इस टापू में पड़ा था। हाँ, इस जगह को वह टापू ही कहेगा। जहाँ के रहवासियों की बोल-चाल, रहन-सहन, बात-विचार उसकी संस्कृति से बिल्कुल भिन्न हो, वह उसके लिए टापू ही तो है। वह अजनबी बना फिरता है। न किसी से बात, न उससे कोई बतियानेवाला। पौ फटने के पहले वह दूर तक चली गई लंबी-सपाट सड़क पर टहलकर चला आता है। फिर अकेला किताबों में खो जाता है। मन थका तो सो जाता है। सोए नहीं तो क्या करे। पोते-पोती स्कूल चले जाते हैं। बहू-बेटा अपने-अपने काम पर।

एक दिन सवेरे टहलने के क्रम में अपने सरीखा आदमी दिखा तो खुद को रोक न सका, खड़ा हो गया। उसके हाथ में एक बड़े से डॉग के गले में बँधे पट्टे का डोर था। वह उस डरावने डॉग को अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहा था। एक क्षण लगाया सोचने में कि मुझे डरावने कुत्ते के साथ उस आदमी से बात करनी चाहिए या नहीं और दूसरे ही पल उसके और समीप चला आया। मैं उसे संबोधित करनेवाला था कि उसकी नजर मेरी तरफ उठ गई। वह भी पारखी निकला। उसकी नजर की मिठास चुगली कर गई। समझ गया कि यह शख्स भी अपने बीचवाला है। मेरे कुछ कहने के पहले उसने सलीके से नमस्कार कहते हुए कहा, ''शायद आप नए-नए आए हैं, साहब। मैं दो-तीन दिनों से आपको देख रहा हूँ। बात करने का मन करता था मेरा, लेकिन शायद आप बुरा मान जाएँगे, इसलिए टोकटाक नहीं किया।''

फिर तो हमारे बीच बातचीत का सिलसिला चल निकला।

बात-बात में उसने बताया कि वह दसवीं तक पढ़ा है। घर पर बेकार बैठा था। उसके चाचा जो यहाँ सिक्योरिटी गार्ड हैं, एक दिन साथ लेते आए और एक धनी परिवार में उनके कुत्ते की देखभाल करने के लिए रखवा दिया। तब से वह यहीं है। परिवार घर पर है। साल में एक बार गाँव जाता है।

जब मैंने उससे पूछा कि क्या वह इस काम से संतुष्ट है? कैसे कह पाता है वह कि गाँव-जेबार में वह कुत्ते की देखभाल करता है। उसे शर्म नहीं आती?

उसके जवाब ने मुझे तब लाजवाब कर दिया था। सोचता हूँ तो आज भी लाजवाब कर देता है। उसने चेहरे पर निश्छल मुसकान लाते हुए कहा था, ''शर्म काहे का साहब, इसमें बुराई क्या है, चाकरी करके पेट तो पालना ही था। धूर्त, बेईमान आदमी की चाकरी से तो बेहतर यह स्वामिभक्त, निरपराध, सीधे-सादे जानवर की चाकरी है। फिर दोहरा लाभ भी तो है। सवेरे का घूमना-टहलना भी हो जाता है, स्वास्थ्य बना रहता है और पैसे भी मिल जाते हैं।''

उस रात मैं उसकी संतुष्टि और सार्थक बातों के बारे में देर तक सोचता रहा। वह रोना-धोना भी तो कर सकता था कि कम पैसे मिलते हैं, कुत्ते के पीछे भागना पड़ता है, पढ़े-लिखे को यह निकृष्ट काम शोभा नहीं देता, पर क्या करूँ साहब, किस्मत में यही लिखा है आदि-आदि। जैसा कि अकसर लोग कहा करते हैं।

संतुष्ट जीवन के लिए सार्थक सोच कितनी जरूरी है, एक अदना सा आदमी मुझे सिखा गया।

द्वारा—पोद्दार हार्डवेयर स्टोर
कतरास रोड, मटकुरिया, धनबाद-८२६००१
दूरभाष : ०९९३९३१५९२५

डॉ. बलदेव वंशी : बातें-मुलाकातें

● **अशोक बैरागी**

''संसार की समस्त तोपें, बंदूकें और अस्त्र
मेरी विचारधारा और संकल्प के रास्ते में
कदापि नहीं आ सकते, जब तक माँ सरस्वती
का वरदान मेरी 'कलम' मेरे हाथ में है।''

ये पंक्तियाँ चेतनावादी कवि डॉ. बलेदव वंशी की हैं, जो अब इस लोक में नहीं रहे। ८ जनवरी, २०१८ को एक मित्र लक्ष्मण बिष्ट का फरीदाबाद से फोन आता है, ''भैयाजी नमस्ते, आपको एक दुखद समाचार देना है।''

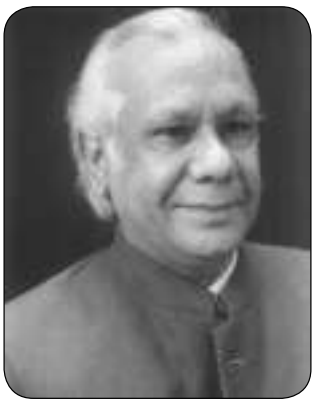

(०१-०५-१९३८—०७-०१-२०१८)

''नमस्ते जी, कहो, क्या हुआ?''

''गुरुजी, बलदेव वंशी नहीं रहे।''

''क्या···कब···कैसे···?'' उन्होंने कहा, ''अभी केवल इतना ही पता चला है।'' मैंने गुरुजी (वंशीजी) वाले नंबर पर ही फोन मिलाया। फोन लक्ष्य (वंशीजी का पोता) ने उठाया। मैंने पूछा, ''यह सब कैसे हुआ?'' उन्होंने बताया, ''हाँ भैयाजी, गुरुजी को कल हार्ट अटैक आ गया। डॉक्टरों ने काफी प्रयास किया, लेकिन बचा नहीं पाए।'' मुझे बहुत पीड़ा हुई और यह मेरे लिए बहुत बड़ी क्षति भी थी। वंशीजी से मेरी पहली मुलाकात २२ जनवरी, २०१२ को हुई। उस दौरान मैं गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार में 'हिंदी पत्रकारिता को अज्ञेय का अवदान' विषय पर शोध कर रहा था। तब मुझे लगा कि डॉ. बलदेव वंशी हिंदी के बड़े कवि हैं। ये अज्ञेय और उनके पत्र-पत्रिकाओं के बारे में अच्छी और प्रामाणिक जानकारी दे सकते हैं। मैंने फोन पर अनुमति माँगी और अपना आशय बताया। वंशीजी ने सहर्ष अनुमति दे दी। मैं तय समय पर उनका साक्षात्कार लेने फरीदाबाद पहुँच गया। वे बहुत ही स्नेह और आत्मीयता से मिले। खूब आतिथ्य-सत्कार किया। घर-परिवार की बातें हुईं और उन्होंने मेरी सभी जिज्ञासाओं का सही ढंग से समाधान किया। तब बातों-बातों में वंशीजी ने बताया कि ''हम विचार कविता के कवि हैं, जो समकालीन है। समकालीन कविता अग्नि की लपटों पर बैठे कवि की वाणी है। एक श्रेष्ठ साहित्यकार के बुनियादी सरोकार क्या होते हैं, जानते हो? राष्ट्रीयता, जातीय स्मृति की पहचान, सांस्कृतिक बोध, समूचे विश्व के प्रति संवेदनशीलता, आस्थावान और निरंतर बदले प्रगतिशील मूल्यों का रक्षण-पोषण ही बुनियादी सरोकार हैं।'' इस पहली मुलाकात से मुझे बहुत ही सुखद अहसास हुआ। किसी भी साहित्यिक व्यक्तित्व से यह मेरी पहली भेंट थी। इसके बाद बातों-मुलाकातों का सिलसिला गति पकड़ गया।

इसी ४ जनवरी को डॉ. बलदेव वंशीजी से आखिरी बातचीत हुई। इन छह वर्षों में मुझे उनके बहुत करीब रहने का अवसर मिला। मैं बीसियों बार उनसे मिला। भारतीय संस्कृति, परंपरा, संत साहित्य, संत संस्कृति, बदलता समाज, मूल्य रहित राजनीति और पत्रकारिता को लेकर काफी बातचीत होती थी, जिसे मैं फोन पर रिकॉर्ड कर लेता था। जितनी बार उनसे मिला, हर बार नया ज्ञान और अनुभव की ऊर्जा लेकर लौटा। इन मुलाकातों में वंशीजी ने अपने बचपन, अन्य साहित्यकारों, राजनेताओं, भाषा आंदोलन के बारे में संस्मरण सुनाए। उस दिन साक्षात्कार लेकर चलते हुए मैंने अपनी डायरी हस्ताक्षर के लिए उनके सामने की तो हँसते हुए कहने लगे, ''अरे बेटा! जब पूरा बलदेव वंशी ही तुम्हारे साथ है, तो हस्ताक्षर में क्या है।'' फिर उन्होंने हस्ताक्षर सहित अपना आशीर्वाद दिया।

संतहृदयी डॉ. बलदेव वंशी का जन्म १ जून, १९३८ को मुलतान शहर (पाकिस्तान) में रहनेवाले भसीन परिवार में हुआ। आठ-नौ वर्ष की अवस्था में ही विस्थापन के कारण उन्हें रिफ्यूजी कैंपों में रहना पड़ा। एक दिन मैंने बातों-बातों में उनकी इस दुखती रग को छू लिया तो बड़े ही भावुक होकर बताने लगे, ''मेरे बचपन में मौज-मस्ती या तथाकथित सुख-सुविधाओं का कोई स्थान नहीं रहा। सात-आठ भाइयों में मैं सबसे बड़ा था। पिता को पेट का रोग (प्लुरसी) हो गया। तब मैं बाल मजदूर रहा। कहीं एक रुपया तो कहीं सवा रुपए में मैंने फावड़ा-कुदाल लेकर नालियाँ खोदीं, अखबार बेचे, लोहा गरम करनेवाली भट्ठी पर पंखा चलाया। ये बातें १९५० के आस-पास की हैं, जब मैं केवल १२ वर्ष का था। मैंने कुएँ से पानी निकालकर दो बाल्टियों को एक बाँस की बाही पर बाँधकर कंधे पर रखकर तीन-चार फर्लांग दूर श्रमिकों को पानी पिलाने का कठिन कार्य किया। तब मेरे पैरों में लकड़ी की आधी घिसी हुई खड़ाऊ होती थी, जिसमें मेरी एड़ी तपती रेत में जलती थी।'' बताते-बताते वंशीजी रुक गए। थोड़ा सँभलकर फिर बताने लगे, ''हाँ, फिर पत्नी और बड़े बेटे का देहांत हो गया। मेरे पास दो बच्चे और रह गए, तब माँ बनकर अपने दायित्व का निर्वाह किया। मैंने मुखर तो नहीं, पर शायद मन-ही-मन कहा, बच्चो, आज से तुम्हारा पिता नहीं रहा।'

तब मैंने माँ की तरह उनका पालन-पोषण किया और पिता की तरह कभी डाँटा नहीं। 'सतत लपटों पर स्थित मेरा आत्म मुझे अशांत और संघर्षशील बनाए रखता है', यह मेरा यर्थाथ और आत्मानुभूत सत्य है।'' वंशीजी का यह आत्मकथ्य डॉ. महीप सिंह ने 'संचेतना' में भी प्रकाशित किया था। आत्मकथ्य के इस कॉलम में महत्त्वपूर्ण लेखकों के जीवन संघर्ष, उनकी प्रेरणा, सरोकार, चिंतन दृष्टि आदि कई पक्ष होते थे। फिर वंशीजी 'धर्मयुग' में 'वाद्य' नाम से प्रकाशित कविता सुनाते हुए उसका भाव भी स्पष्ट करते हैं—'अभी हूँ मैं तार-तार कसा, पोर-पोर बँधा!/ तुम मुझे अपनी झन्नाहट भरी उँगलियों से छुओ-बजाओ/अपनी मौन धुन में सजाओ/ताकि मुक्त हो मैं तुम्हें गाऊँ।' वंशीजी इस कविता में परम चेतना (तुम) संबोधित करते हुए अपनी स्थितियाँ बताते हैं।

डॉ. बलदेव वंशीजी की कविताएँ अपने परिवेश से गहराई से जुड़ती हैं। इनमें मनुष्य, प्रकृति, समाज, भूगोल, संस्कृति और वैश्विक प्रगतिशील मूल्यों का उत्स है। संघर्ष के साथ संवेदना और स्पंदन है। 'दर्शकदीर्घा से' (१९७०) वंशीजी का पहला काव्य-संग्रह है। 'उपनगर में वापसी' इनकी पहली लंबी कविता है। 'अँधेरे के बावजूद', 'बच्चे की दुनिया', 'कहीं कोई आवाज नहीं', 'हवा में खिलखिलाती लौ', 'नदी पर खुलता द्वार', 'इतिहास में आग', 'पत्थर पर जाग रहे हैं' और 'चाक पर चढ़ी माटी' आदि प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। पेड़, चिड़िया, बीज, सागर, मिट्टी, पत्थर इनके प्रिय बिंब और प्रतीक हैं। इनके अलावा 'आत्मदान' (१९८३), 'मन्नु' (१९९२), 'वाक्गंगा' (१९९२) पौराणिक मिथकों को लेकर लिखे गए बहुत ही महत्त्वपूर्ण खंडकाव्य हैं। ३१ अक्तूबर, २०१२ को मैं वंशीजी के साथ साहित्य अकादेमी के सभागार में था, जब डॉ. रमेश कुंतल मेघ, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, डॉ. महीप सिंह, डॉ. हरदयाल, राजेंद्र उपाध्याय और कृष्णदत्त पालीवाल (संपादक) ने 'बलदेव वंशी : कविता समग्र' (तीन भाग) का लोकार्पण किया और संगोष्ठी हुई।

प्रकृति-दोहन, पर्यावरण-प्रदूषण, जीव-जंतुओं के प्रति हिंसा, बच्चों व नारी के प्रति अमानवीयता, जल, हवा, मिट्टी आदि का विषाक्त होना आदि को लेकर वंशीजी बहुत चिंतित और संवेदनशील थे। वंशीजी बताते हैं कि ''मनुष्यों की तरह प्रकृति का भी अपना संविधान है, जिसमें मनुष्य सहित पशु, पक्षी, पेड़, पौधे, नदी, पहाड़, झरने, समुद्र आदि सभी उस संविधान के घटक हैं और ये सभी अपने-अपने संकेंद्रकों द्वारा एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इनमें से किसी एक के प्रति हुई हिंसा से प्रकृति में असंतुलन बिगड़ने लगता है।'' 'धरती की प्यास', 'अग्निदूत', 'निष्ठा में पेड़', 'पत्थर तक जाग रहे हैं' आदि अनेक कविताओं का रसास्वादन मैंने मुख से सुनकर किया है। वे कहते हैं, 'न! पत्थरों को ऐसे मत छुओ/कि ये सचमुच पत्थर हों और तुम इनसे बेहतर-इनसान! इनके वजूद को हथेली पर उठा यों मत उछालो हवा में क्योंकि अब तुम्हारे फर्श संगमरमरी हो आए हैं और बार-बार चुक जाना तुम्हारी आदत।' कविता-पाठ के समय उनके चेहरे का तेज, आँख, होंठ, हाथ आदि सभी शब्दानुकूल भाव-अर्थ प्रकट करते हैं और इससे वंशीजी को मन में

सुपरिचित साहित्यकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, आलेख, लघुकथाएँ एवं साक्षात्कार प्रकाशित। संप्रति राजकीय उच्च विद्यालय, सिरसाढ़ में अध्यापन।

उत्साह-उमंग, देह में नव ऊर्जा और आत्मा में आनंद की अनुभूति होती थी। एक बार मैंने कहा, ''गुरुजी, मुझे मंच से अपनी कविता सुनानी है। श्री अजय कुमार शुक्ल स्मृति (२०१३) में आक्षित लैंगवेज सर्विस वालों ने बुलाया है, पर मैंने आज तक कविता-पाठ नहीं किया।'' तब उन्होंने खुशी-खुशी मेरी चयनित कविता 'अंतिम अभिलाषा' को सुना और कैसे बोलना है, इसका दसियों बार अभ्यास कराया। इतने बड़े कवि के पास बैठकर कविता सुनना और सुनाने की अद्भुत एवं मधुर स्मृति मेरे हृदय में संचित है।

एक बार बैठे-बैठे वंशीजी ने पूछा, ''अशोक! अच्छा यह बताओ कि हमारी कविता में प्रकृति के विभिन्न रूप हैं, पर्यावरण के प्रति चेतना है, मूल्य खंडित समाज है, ओछी और खोखली राजनीति है, भूखा, नंगा बचपन है, बंदी नारी की तड़प आदि ये समकालीनता के विचार तत्त्व हैं। तुम हमारी कविता को क्या नाम देना चाहोगे?'' मैंने कहा, ''समकालीन युगबोध या वैचारिक चेतनावादी।''

''न, केवल चेतनावादी कविता!'' वंशीजी ने कहा। उनका वैचारिक फलक अति विस्तृत और वैश्विक है। संपूर्ण मानव समाज और राष्ट्र उनकी दृष्टि के वृत्त में है। उनका काव्य-कर्म और भाव सौंदर्य का समन्वय है। वे एक सच्चे साहित्यकार के बुनियादी सरोकार आत्मसात् किए हुए हैं। उनकी कविताएँ मिशाल नहीं, बल्कि मिसाइल की तरह अपने लक्ष्य का भेद न करती हुई गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। श्रम-निष्ठा, लगन, संकल्प, अनुभव और ज्ञान चेतना के बल पर वे समकालीन कविता में अपनी गरिमामयी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। राममनोहर लोहिया का समाजवाद उन्हें खूब प्रभावित करता है था, और वे मानते थे कि वर्तमान की सभी समस्याओं का समाधान लोहिया के चिंतन द्वारा किया जा सकता है। वे ओशो के संन्यासी बने और उनकी पुस्तक 'पतंजलि योग सूत्र' भाग-२ की भूमिका लिखी। संत साहित्य उन्हें बहुत आकृष्ट और प्रभावित करता है। संत साहित्य पर जितना काम उन्होंने किया, आज तक नहीं किया गया था। उन्होंने 'भारतीय संत परंपरा', 'भारतीय मुसलिम संत परंपरा' और 'नारी संत परंपरा' पुस्तकें प्रकाश में लाकर ऋषिकर्म का बेजोड़ कार्य किया है।

उन्होंने कबीर, दादू, मलूकदास, मीरा और मुसलिम संतों पर खूब लिखा और इनके वाणी-संदेशों का संपादन किया। अनेक संतों के जीवन चरित्र व वाणी को बालोपयोगी बनाकर सरल भाषा में प्रस्तुत करने का उपयोगी और श्रमसाध्य कार्य किया। संत साहित्य अकादेमी की स्थापना करना भी एक नई पहल है। वे इस संस्था के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर कुछ अलग कार्य करनेवालों का सम्मान करते

थे। यह संस्था प्रतिवर्ष सम्मेलन करती है। वंशीजी ने मुझे हर बार बुलाया, पर मैं केवल दूसरे और तीसरे सम्मेलन में ही जा पाया। वंशीजी स्पष्ट कहा करते थे, ''वर्तमान का भौतिक विकास अधूरा और पंगु है। इस विकास को आध्यात्मिक या आत्मिक विकास से जोड़कर पूर्ण किया जा सकता है। वर्तमान में भय, आतंक, भुखमरी, गरीबी, शोषण, प्रकृति-प्रदूषण, सांप्रदायिक हिंसा इसी अधूरे विकास का परिणाम है। विश्वशांति और मानवीय विकास के लिए पूरे विश्वसमाज को भारतीय संस्कृति के संत-दर्शन की ओर आना पड़ेगा। संतमत के आधार पर ही इन वैश्विक समस्याओं का सम्यक् समाधान किया जा सकता है। इसी दर्शन में प्रकृति और पर्यावरण के रक्षण-पोषण के बीजतत्त्व हैं।''

भारतीय भाषाओं के संरक्षण के लिए वंशीजी ने 'भारतीय भाषाएँ लाओ देश बचाओ', 'भाषा समस्या : संपादकीयों की फटकार' और 'भारतीय भाषाओं की एकता' तीन पुस्तकों का संपादन किया, जिसमें विभिन्न विद्वानों के बहुत ही ज्वलंत विचार हैं। इनका संपादन बहुत ही सराहनीय और रचनात्मक कार्य था। इसके साथ 'विचार कविता' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया और अनेक विशेषांक निकाले, जिनमें 'काला इतिहास', 'युवा कविता : नए हस्ताक्षर', 'बच्चे की दुनिया', 'आधी दुनिया का जलता संविधान', 'कविता महानगर', 'परिवार कविता', 'संबोधित कविता', 'प्रकृति कविता और विज्ञानबोध कविता' आदि अति महत्त्वपूर्ण विशेषांक हैं।

८ दिसंबर, २०१२ को गुरुजी के साथ हुई बैठक में भी भारतीय संस्कृति, संत साहित्य और प्रकृति पर्यावरण के त्रिकोण पर बहुत ही सार्थक बातचीत हुई, जिसे मैंने अपने मोबाइल मे रिकॉर्ड किया। वंशीजी ने आध्यात्मिकता का अर्थ, संत और भगत में अंतर, नर-नारायण का संबंध और संतों के जीवन के अद्‌भुत-अलौकिक प्रसंग सुनाए। बीच-बीच में किसी संत का कोई दोहा सुनाकर अपनी बात को प्रमाणित करने की भी उनमें अद्‌भुत क्षमता थी।

वंशीजी सांस्कृतिक स्मृति के कवि और समकालीन परिवेश के अद्‌भुत चितेरे हैं। रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सृजना के मूल तत्त्व हैं। इसी संदर्भ में वंशीजी एक दिन बताने लगे कि 'मार्क्सवादी हमें देखकर अधिक खुश नहीं होते, लेकिन जो प्रबुद्ध मार्क्सवादी चिंतक हैं, वे हमारा सम्मान करते हैं। हमें अच्छा कवि मानते हैं। हम भी उनका सम्मान करते हैं। हमने देश के सर्वोच्च मार्क्सवादी चिंतक डॉ. रमेश कुंतल मेघ के निर्देशन में पी-एच.डी. की है। जनवादी लेखक संगठन के प्रमुख शिवकुमार मिश्र उनके भाई के बेटे हैं। उन्होंने हमारे ऊपर खूब अच्छा लिखा और छापा। रमेश कुंतल मेघ ने 'समुद्र से उठता पहाड़' नामक एक काव्य संकलन तैयार किया और उसमें हमारी कविताएँ शामिल की हैं। हम किसी खेमेबाजी में शामिल नहीं हुए।'' वे मातृभाषा को सेवा, संस्कार, सृजन और शिक्षा का श्रेष्ठ माध्यम मानते थे। भारतीय भाषाएँ ही शिक्षा, न्याय व रोजगार का माध्यम बनें, इस कार्य हेतु अखिल भारतीय भाषा संरक्षण संगठन के संस्थापक अध्यक्ष बने। पुष्पेंद्र चौहान, राजकरण सिंह, हीरालाल, विघ्नेश्वर पांडे, श्योचंद्र निर्वण इस संगठन के सक्रिय भाषाई योद्धा थे। संगठन का उद्‌देश्य १८ जनवरी, १९६८ का संसदीय संकल्प लागू करवाना था। उनके नेतृत्व में इस संगठन ने धरना-प्रदर्शन, क्रमिक अनशन और आमरण अनशन की कार्यविधि अपनाई। यह विश्व का सबसे लंबा धरना था, जो संघ लोकसेवा आयोग के मुख्य द्वार पर चला। वे दो बार साथियों सहित जेल में भी गए। उनके आग्रह, प्रभाव और कार्य शैली से अनेक पत्रकार, साहित्यकार और राजनेता इससे जुड़ते चले गए। भाषा आंदोलन के विषय में वंशीजी बताते हैं, ''इसमें हमारे साथ प्रभाष जोशी, राजेंद्र माथुर, मृणाल पांडे, भानुप्रताप शुक्ल, वेद प्रताप वैदिक, विद्यानिवास मिश्र, लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, महीप सिंह, राजेंद्र यादव आदि अनेक लोग जुड़ते चले गए।''

भारतीय भाषाओं के संरक्षण के लिए वंशीजी ने 'भारतीय भाषाएँ लाओ देश बचाओ', 'भाषा समस्या : संपादकीयों की फटकार' और 'भारतीय भाषाओं की एकता' तीन पुस्तकों का संपादन किया, जिसमें विभिन्न विद्वानों के बहुत ही ज्वलंत विचार हैं। इनका संपादन बहुत ही सराहनीय और रचनात्मक कार्य था। इसके साथ 'विचार कविता' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया और अनेक विशेषांक निकाले, जिनमें 'काला इतिहास', 'युवा कविता : नए हस्ताक्षर', 'बच्चे की दुनिया', 'आधी दुनिया का जलता संविधान', 'कविता महानगर', 'परिवार कविता', 'संबोधित कविता', 'प्रकृति कविता और विज्ञानबोध कविता' आदि अति महत्त्वपूर्ण विशेषांक हैं। उन्होंने अपने समकालीनों, अनुजों, अग्रजों और दिवंगतों सभी को 'विचार कविता' में लाकर सम्मान दिया है। इसके साथ प्रकृति, पर्यावरण, विज्ञान, बाल एवं नारी विमर्श पर बड़ी संजीदगी से लिखा और आग्रहपूर्वक लिखवाया।

शमशेर बहादुर सिंह ने वंशीजी के बारे में बहुत ही सार्थक टिप्पणी की है—''आप कवि रूप में काफी आगे आगे आए हैं। उपलब्धियाँ तो हर कवि के पास होती हैं, मगर मूल्यवान उपलब्धियों का ही मूल्य होता है।'' ७ जनवरी, २०१८ को डॉ. बलदेव वंशी का यों अचानक चले जाना साहित्यिक जगत् के लिए बहुत बड़ी क्षति है। ''बाग में सैर करते/आज अचानक/एक पेड़ के नीचे पाँव ठिठके/मैं उसके नीचे रुका/आँख भर पेड़ को देखा/उसके आगे झुका/फिर बोला, पेड़ मुझे शक्ति दो/अपने जैसा धैर्य दो, भक्ति दो/और कहकर गहरा हुआ मौन/···/रक्त सनी धरती में लाकर बो गया!/लो, अब मैं भी पेड़ हो गया।'' इन पंक्तियों के साथ मैं उनके स्नेह-सहयोग को श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ।

गाँव व पोस्ट-दुराना
तहसील-गोहाना
जिला-सोनीपत, हरियाणा
दूरभाष : ९४६६५४९३९४

गया था बुद्ध गया

मूल : **ना मोगसाले**

अनुवाद : **डी.एन. श्रीनाथ**

अनजान

गया था बुद्ध गया
सिर्फ देखने जैसे बुद्ध गया को ही
लौटते वक्त वहाँ से
नहीं आया कुछ भी मेरे साथ
अपनी ही आँखें अपनी ही साँसें
अपना था

परसों बुद्ध गया मैं
बम फूटा था, यह जानने पर
वहाँ जो कुछ देखा था
लगा कि यहाँ अपना ही है।

हाय बेचारे!

कोई प्रतिमा रखी नहीं है मैंने
घर में
मन में भी
बुद्ध-प्रतिमा को आतंकवादियों ने
तोड़-फाड़ करने गए जिस पल से
रखना था न, यह लगने लगा।

ढूँढ़ने निकल पड़ा बुद्ध-प्रतिमा को
बाजार में
जो थी प्रतिमाएँ, हर एक में नहीं था बुद्ध
था मानो उसका सिर्फ रूपक।

हाय बेचारे! सोचा आतंकवादियों के बारे में
उन्हें मेरे अंधे होने के लिए।

परिवर्तन

गया में जिसे मैंने पसंद किया
बोधिवृक्ष नहीं
मानो बजा दीजिए
कहते हाथ को जो लौह चुंबक के समान
खींचते उस महा घंटा को

कितने लोगों ने बजाया होगा उस घंटा को
मुझे क्यों बजाना है
सोचकर चुप था उस वक्त
अब धीरे से सता रहा है जैसे
वह घंटा मेरे कानों में मार जैसा लग रहा है
ऐसा कहते—'अगर तुम आकर बजाने पर भी अब
तुम्हारे बजाने के जैसे नहीं है उस समय।'

बुद्ध मुझे पसंद है क्योंकि

मुझे पसंद है बुद्ध क्योंकि
पेड़ भी वह, फूल भी वह
ऐसा है, इसलिए

पेड़ को पेड़ के उस पार
कल्पित किया जा सकता है
आँखें हों तो
याद को भी फिर बुलाया जा सकता है
बिना आँख के

कविताओं में इन दोनों की संभावनाएँ हैं
जैसे बुद्ध में है

क्षमा नहीं करना चाहिए बुद्ध को,
ऐसा लगता है
वह जो कविता नहीं लिखता
उसे हमें ही सौंपकर
हँस रहा है, इसलिए।

इतिहास

भगवान् को देखने
नहीं जानेवाला था बुद्ध,
भगवान् उसे मिला
लोक के दु:खों में।

देखो पेड़ को पार करो नदी को,
नजर गाड़ो नाक में
ऐसा उसने नहीं कहा कभी।

आँख देखने को जिस प्रकार सीखता है
चीज, चीज के रूप में जिस प्रकार दिखता है,
सिद्धार्थ हुआ बुद्ध
कहता है इतिहास

सुप्रसिद्ध लेखक एवं अनुवादक। कन्नड़-हिंदी में परस्पर अनुवाद की ६० पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी का अनुवाद पुरस्कार, कर्नाटक साहित्य अनुवाद अकादेमी पुरस्कार, कमला गोयनका अनुवाद पुरस्कार, गोरूर पुरस्कार, विश्वेश्वरैया साहित्य पुरस्कार आदि पुरस्कारों से पुरस्कृत।

अभी है हमारे बीच बुद्ध,
इस प्रकार मानो उस इतिहास को तोड़ दूँगा।

विस्मय

कौन सिखाता है बताइए
आँख को देखने की कला?
अगर आँख का है धर्म
वह देखना ही है।

अगर चीज सामने न हुई आँख को
आँख बनकर रहना संभव है कैसे?

बुद्ध की प्रतिमाएँ हैं ऐसी ही
हमारी आँखों की चंचलता में
प्रतिमाएँ होकर इत्तेफाक से

वह चंचलता हमसे पार कर सीमा
बुद्ध की प्रतिमाएँ रह नहीं सकती
आँखों के आगे

आँख ही बन बुद्ध प्रतिमा
मानो उठकर आने के जैसे।

नवनीत,
द्वितीय क्रॉस, अन्नाजी राय लेआउट
प्रथम स्टेज, विनोबानगर
शिमोगा-५७७२०४ (कर्नाटक)
दूरभाष : ०९६११८७३३१०

फतुआ

● परमेश चंद्र वशिष्ठ

गाँव का हर व्यक्ति उसे जानता था, पर उसकी किसी योग्यता के कारण नहीं, बल्कि उसके आधा पागल होने के कारण। गाँव के लोगों के लिए उसका पागलपन एक वरदान था। किसानों और उनके परिवारों के लिए तो वह भगवान् की विशेष देन से कम न था। किसान सुबह ही हल-बैल लेकर खेतों की जुताई के लिए चले जाते और पीछे रह जाती उनकी पत्नियाँ। अकेली औरतें बैलों और अन्य पशुओं के चारे का इंतजाम करतीं। इस कार्य में फतुआ उनके लिए बिना खर्च का कमाऊ पूत था। सुनहरी दादी सबसे पहले अपने पति को खेत में खाना पहुँचातीं। जब तक वे खाना खाते, दादी चारे का एक गट्ठर काटकर तैयार कर देतीं, फिर जल्दी-जल्दी गाँव लौटतीं और फतुआ को पकड़कर अपने घर ले जातीं। उसे रात की बची हुई दो बासी रोटियाँ खिलातीं और फिर खेत पर लेकर जातीं। वहाँ से चारे का गट्ठर उसके सिर पर रखवाकर लातीं और फिर हल-बैल के वापस आने से पहले फतुआ की मदद से मशीन से चारा कटवाकर तैयार कर लेतीं। यह उनकी दिनचर्या थी।

जब तक फतुआ दादी का चारा काटकर निबटाता, चौधराइन उसे साथ ले जाने के लिए तैयार खड़ी मिलती। कटा हुआ कुछ चारा सुनहरी दादी फतुआ की मैली-कुचैली चादर में डाल देतीं। यही उसकी मजदूरी थी। इसे चौधरानी बड़े प्यार से बँधवाकर उसके सिर पर रखवातीं और अपने घर ले आतीं। अपना चारा कटवातीं और कुछ कटा हुआ चारा उसकी चादर में डाल देतीं। तब तक रामपाली उसे लेने के लिए आ धमकती। इस प्रकार ६ या ७ किसानों के घर का चारा कटने तक उसकी चादर का बोझ काफी भारी हो जाता था।

जब तक मुकदमायन की बारी आई, तो फतुआ चादर की कटी हुई कुट्टी के बोझ से दबने लगा। मुकदमायन को एक तरकीब सूझी। उन्होंने उसकी चादर खुलवाई और चारा अपनी भैंसों व बैलों के आगे डलवा दिया। मुकदम आते ही सुस्ताने लगे। आज वे पूरी चार बीघा जमीन जोतकर और उसपर पाटा लगाकर आए थे। सो निढाल होकर पड़ गए। लेटते ही ऊँघने लगे। मुकदमायन को डर लगा। चारा कटा न होने से मुकदम नाराज हो सकते थे। उन्होंने फतुआ की मजदूरी के चारे से मुकदम की नाराजगी की नौबत नहीं आने दी।

फिर क्या था। यह चाल बहुत अच्छी लगी। मुकदमायन को देख कई अन्य औरतें भी फतुआ की चादर की कुट्टी का सदुपयोग करने लगीं। धीरे-धीरे वह हलकी-फुलकी चादर की गठरी लेकर अपने घर

सेना की सेवा के दौरान सेना के कई रेजिमेंटल केंद्रों की रेजिमेंटल मैगजीनों में हिंदी रचनाओं का संपादन कार्य, सैन्य सेवा के दौरान हिंदी, अंग्रेजी अनुवाद तथा राजभाषा क्रियान्वयन कार्यक्रम में सक्रिय योगदान।

लौटने लगा। उसकी माँ कुछ दिनों तक यह देखती रही। एक दिन उससे न रहा गया। उसने फतुआ की गठरी थोड़ी सी खाली रहते ही स्वयं उठा ली और अपने घर चारा रखकर फतुआ को चादर दे आई।

काफी दिनों तक चारे की कमी न रही। फतुआ की माँ खुश थी। परंतु किसानों की औरतों में धीरे-धीरे बेचैनी बढ़ने लगी। उनमें आपस में कहा-सुनी होती। सभी चाहतीं कि जब तक फतुआ उनके पास पहुँचे, वह तीन या चार जगह से चारा ले चुका हो, जिससे उन्हें कम चारा देना पड़े। इसी कारण से कई बार हल-बैल वापस आने तक चारा न कटवा पातीं और थका किसान आते ही नाराज होता।

कुछ औरतों ने मिलकर समय सारणी तक बना डाली। सबसे पहले वह अमुक के घर चारा कटवाएगा। उसके बाद अमुक, फिर अमुक। और अंत में अमुक के यहाँ। कभी-कभी वे आपस में झगड़ पड़तीं, ''क्या तुम फतुआ के बल पर ही अपनी खेती चला रही हो?'' दूसरे का प्रतिप्रश्न होता, ''क्या दूसरे आदमी के भरोसे भैंस पाली जाती है?'' आदि-आदि। कई औरतों के पति शहर में मजदूरी करते थे, अत: फतुआ के बिना उनका काम चलना बहुत कठिन था।

कुछ समझदार और चतुर औरतों ने चारे का खर्च कम करने का तरीका खोज लिया। जो सबसे पहले चारा कटवाती, वह सिर्फ दो रोटियाँ खिलाकर आगेवाली के हवाले कर देती थी। चारा तैयार करने में रोटियों से अधिक मेहनत जो लगती थी। अत: दोपहर के भोजन तक फतुआ कई घरों में दो-दो रोटियाँ खाकर चारा काट चुका होता।

कुछ दिनों बाद रोटियाँ भी भारी लगने लगीं। बहला-फुसलाकर औरतें पहले चारा कटवातीं। गन्ने की गड्डियाँ उसके सिर पर ढुलवातीं। भूसे की पोटली तथा साफ किया हुआ अनाज खलियान से घर तक पहुचवातीं और फिर उसे कोई पुराना कपड़ा पहनाकर भेज देतीं।

कपड़ों का सिलसिला चल निकला। फतुआ पहले से अधिक कार्य करता, तब उसे कोई एक पुराना कपड़ा मिलता। उसके यहाँ तरह-तरह

के पुराने, फटे हुए, आधे कटे, मैले कपड़ों का ढेर लग गया। पर यह भी अधिक दिनों तक नहीं चला। बड़े-बड़े कपड़ों का स्थान टोपियों ने ले लिया। अपनी पसीनेवाली टोपी किसान उसे पहना देते और उसकी एवज में उससे कई काम करा लेते। पर टोपियाँ भी ज्यादा दिन काम नही आईं।

किसी-किसी ने उसे सिर्फ एक बीड़ी पिलाकर ही काम लेना शुरू कर दिया। अब सभी लोग बीड़ी पिलाकर उससे कठिन काम कराते। धीरे-धीरे उसे आदत पड़ गई और वह इशारे से बीड़ी माँगकर पीता और खुश होकर काम करता।

कड़ी मशक्कत व कठोर काम व पूरे दिन बीड़ी पीते रहने से फतुआ कमजोर होने लगा और एक दिन बीमार पड़ गया। चारा कटा हुआ न मिलने से कई किसानों को खेत से आकर स्वयं चारा काटना पड़ा और फिर बिना बात अपनी औरतों से झगड़ा किया। हर घर में फतुआ की बीमारी की चर्चा और चारा न कटने के कारण कलह थी।

फतुआ बीमार क्या पड़ा, गाँव की फिजा ही बदल गई। सुनहरी दादी पैदल चलकर पास के गाँव से डॉक्टर साहब को बुला लाईं और फतुआ का इलाज शुरू करा दिया, वह भी अपने खर्चे पर। मुकदमायन दिन में दो बार फतुआ को मलाईवाला दूध पिला गई। चौधराइन अपने पति का पुराना स्वेटर ले आई और फतुआ को ठंड न लगने का इंतजाम कर गई। एक महिला ने तो पूजा के समय भगवान् से फतुआ के जल्दी स्वस्थ होने की प्रार्थना की, ताकि उसका सारा कारोबार ठप न पड़ जाए। इसका कारण यह था कि इस महिला की भैंसों की संख्या दूसरों से कहीं अधिक थी एवं पति शहर में नौकरी/मजदूरी करते थे। चौधराइन से इसकी चलती थी, क्योंकि उसकी भैंसों की संख्या भी इसके बराबर थी। फतुआ की सेवाओं की उपलब्धता की समय सारणी में सबसे अधिक ये दोनों ही फतुआ का इस्तेमाल करती थीं।

इस बार तो फतुआ ठीक हो गया और सबकुछ पहले जैसा चलने लगा, परंतु इसके दो साल बाद वह फिर बीमार पड़ा तो स्वस्थ होकर भी कार्य करने की स्थिति में नहीं रहा और कई तबेलेवालियों का पूरा गणित गड़बड़ा गया। सुनहरी दादी के पति, जो शहर में न्यूनतम वेतन पर काम करते थे, शहर छोड़कर गाँव चले आए; क्योंकि न्यूनतम वेतन पर कार्य करते समय एक पैसा भी अधिक आमदनी की संभावना नहीं थी। परंतु गाँव में भैंसों के दूध में प्रतिदिन कुछ पानी मिलाकर लागत से अधिक आमदनी की संभावना का मार्ग खुला हुआ था।

चौधराइन के पति कुछ अच्छा कमा लेते थे, सो भैंसें पालने के लिए शहर से काम छोड़कर गाँव आना लाभ का सौदा नहीं था। इसलिए चौधराइन ने अपने गिरते स्वास्थ्य के कारण भैंसों को बेचने का निर्णय ले लिया। कई अन्य महिलाओं ने भी यही निर्णय लिया। गरीबों के गाँव में गरीबी ने कुछ और पाँव पसार लिये। फतुआ का बीमार होना और कुछ घरों से लक्ष्मी का रूठना लगभग एक सा प्रभाव डाल गया। कितने और किसानों के कार्य बाधित हुए, गाँव में इसका हिसाब लगाया गया, पर लोग किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाए।

५ नवंबर, २०१० को फतुआ की माँ का देहांत हो गया। इसके बाद उस इनसान ने, जिसे लोग बुद्धिहीन समझते रहे, शोकग्रस्त होकर भोजन त्याग दिया। घर के आगे पूरी गली में जमीन पर लोट-पोट होता हुआ माँ-माँ-माँ चिल्लाकर ७ नवंबर, २०१० को दुनिया को छोड़कर चला गया। शायद उसे इस बात का पूरा एहसास था कि माँ क्या होती है!

सा.अ.

ई-१/५०१, हरिगंगा सोसाइटी
आर.टी.ओ. के सामने
विश्रांतवाड़ी, पुणे-६

गुँथे फूल घुँघरू से

कविता

• सुभाष यादव

अमराई के बौर

बौराई-बौराई
अमराई में बौर आई,
अपनी ही मादकता में
मानो पगलाई,
बौराई-बौराई
अमराई में बौर आई।

बह रही हवा ठंडी-ठंडी
लिये सिहरावन,
तन-मन को भावन
बसंती बयार मानो
कदम धर आई,
बौराई-बौराई
अमराई में बौर आई।

हाँ! धवल-धवल
गुँथे फूल घुँघरू से,
चमक लिये जिसकी
चहुँ दिशा हैं छाई,
बौराई-बौराई
अमराई में बौर आई।

पतझड़ में

देखा मैंने
खिलखिलाते-हँसते
हुड़दंग मचाते,
मानो शरारती
बच्चों की तरह
बगीचे में उन्हें खेलते
बिना किसी भय के,
हाँ, पीले सूखे पत्तों को

खरखराते, शोर मचाते
गिरकर इस पतझड़ में।

सा.अ.

ग्राम-गोपालपुर, तहसील-सैदपुर
जिला-गाजीपुर (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९२१०७०८६७०

झालावाड़ की अचर्चित चित्रांकन परंपरा

• ललित शर्मा

रंग कितनी संवेदनशील हो सकती है तथा रंगों व रेखाओं को समन्वित कर कैसे उन्हें चित्रांकन की एक अनूठी और जीवंत यात्रा का साक्षी भी बना सकती है, इस तथ्य को राजस्थान की भूमि ने सिद्ध किया है। इस भूमि ने न केवल भारतीय चित्रकला के इतिहास में अनूठे अध्याय रचे, अपितु समूचे विश्व में अपनी कलात्मकता के विलक्षण प्रतिमानों को भी स्थापित किया है।

इसी राजस्थान के हाड़ौती अंचल में मध्य तथा उत्तर-मध्यकाल में बूँदी और कोटा में चित्रकला की शैलियों का सुदीर्घ विकास हुआ तथा इन्हीं शैलियों की एक उपशैली के रूप में झालावाड़ कलम की चित्रांकन परंपरा, जिसकी अपनी विशेषताएँ रहीं, भी पल्लवित हुई। परंतु दुर्भाग्यवश राजस्थान की संस्कृति में उसका विश्लेषण न होने से वह अब तक अछूती, अप्रकाशित व अचर्चित रही। झालावाड़ के शासक जहाँ एक ओर अपने शौर्य और सद्कार्यों के कारण विख्यात रहे, वहीं दूसरी ओर वे कलाप्रेमी भी रहे। यद्यपि बूँदी और कोटा की चित्रकला की अपनी विशेषताएँ हैं, किंतु झालावाड़ कलम की चित्रांकन परंपरा की विशिष्टता यहाँ के गढ़ भवन, पुरा संग्रहालय, कोठी पृथ्वी विलास, श्रीनाथजी की हवेली तथा व्यापारिक फर्म सेठ बिनोदीराम-बालचंद की विशाल हवेली बिनोद भवन झालरापाटन में आज भी है, जो अपने आप में अपूर्व है तथा उसका अपना पृथक् से निजस्व भी है।

बूँदी कलम जहाँ नारी-सौंदर्य के अंकन के लिए प्रख्यात मानी जाती है, वहीं कोटा कलम शिकार के दृश्यों के बहुतायत के लिए जानी-मानी जाती है, परंतु यदि इन दोनों का समन्वय और परिष्कार स्पष्ट रूप से देखना है तो वह झालावाड़ कलम में दिखाई देता है, जो १९वीं सदी के आरंभिक दशकों की पनपी चित्रशैली के उत्कर्ष का राजस्थान एवं आस-पास के प्रदेशों की कला में विराट् आख्यान करती है।

१९३८ में स्थापित झालावाड़ राज्य का गढ़ पैलेस यहाँ के शासक महाराजा मदनसिंह झाला के काल में १८४० ई. से निर्मित होता हुआ लगभग १८७२ ई. में पूर्ण हुआ। इस राज्य में १८९९ से १९२९ ई. तक के समय में कलाप्रिय एवं विद्वान् नरेश महाराजा भवानीसिंह का शासन रहा। उन्हीं के समय यहाँ भवानी नाट्यशाला, पुरातत्त्व संग्रहालय आदि सांस्कृतिक धरोहरों का निर्माण हुआ, वहीं चित्रांकन-परंपरा का भी तीव्र गति से क्रमिक विकास हुआ। इस कला-परंपरा को उन्होंने अपनी रुचि के कारण पुरजोर संरक्षण दिया। उन्होंने नाथद्वारा शैली के प्रख्यात चित्रकार पं. घासीराम शर्मा, पं. ओंकारलाल शर्मा, पं. प्रेमचंद शर्मा को

सुपरिचित लेखक। अब तक १७०० से अधिक लेख, टिप्पणियाँ अंतरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं, ग्रंथों व इतिहास, पुरातत्त्व के जर्नल्स में प्रकाशित। 'स्व. गौरीशंकर कमलेश राजस्थानी संस्कृति सम्मान' तथा श्रीनाथद्वारा साहित्य मंडल का 'इतिहास-हिंदी सेवा सम्मान', 'हिंदी सेवा सम्मान', तुलसी मानस संस्थान का 'सुखरानी देवी द्वितीय राष्ट्रीय सम्मान एवं अन्य सम्मान।

झालावाड़ बुलाकर बसाया और उनसे गढ़ भवन के कक्षों तथा कोठी-हवेलियों की भित्तियों पर स्वर्ण मिश्रित रंगों से ऐसे सुंदर, मनोहारी और मुँह बोलते चित्र बनवाए, जिन्हें देखकर आज भी सात समंदर पार के पर्यटक तथा इतिहास एवं कला समीक्षक दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं।

गढ़ भवन के कंवरपदा महल तथा पूर्व पुलिस अधीक्षक कार्यालय के कक्षों में बने ये भित्तिचित्र विविध विषयों के हैं। इनमें विशेष रूप से जो आवक्ष तथा आदमकद व्यक्ति चित्र हैं, वे झालावाड़ राज्य के राजाओं सहित तत्कालीन राजपूताना की अन्य रियासतों के शासकों के हैं। ये चित्र काँच पर जड़े हुए हैं, जो अंदर की ओर बनाए गए हैं, फिर यहाँ की भित्तियों पर ठोस तरीके से इन्हें चिपकाया भी गया है। इन कक्षों की छतें पूरी तरह से बेलबूटों तथा सुंदर-स्वर्ण युक्त रंगों के अलंकरणों से चित्रित हैं। इनमें शबीह चित्रों को चित्रित करते समय चित्रकार ने उस युग के वातावरण, अलंकरण और शाही वेशभूषा को पूरी बारीकी और मनोयोग से उकेरा है। इन चित्रों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें राजपूताना व उससे जुड़े विभिन्न भारतीय राज्यों-रजवाड़ों में पहननेवाली शाही पगड़ियों को उनके नरेशों के शीश पर शुद्ध स्वर्ण व अन्य रंगों से उकेरा गया है। इनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पहाड़ी कलम में चंबा और गुलेर तथा मालवा के राघोगढ़ की चित्रांकन परंपरा में जो पगड़ियाँ उकेरी गईं, उनसे भी झालावाड़ के ये चित्रकार प्रभावित हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ के चित्रों में विभिन्न भंगिमाएँ भी दिखाई देती हैं, जैसे कहीं शासक अकेले ही हुक्का पी रहे हैं तो कहीं हुक्का पीते वृद्ध शासक के समक्ष दरबारी बैठे हैं। हाथ में तलवार लिये शासकों के कई चित्र हैं। एक चित्र में राजा अपनी रानी से गंभीर विचार-विमर्श में निमग्न दिखाई देते हैं। एक आदमकद शबीह में झालावाड़ के युवा शासक झाला जालिमसिंह (द्वितीय) को पारदर्शक व झीने वस्त्र

का लंबा कुरता पहने हुए इतने जीवंत भाव से चित्रित किया गया है कि निष्णात कलाविद् भी उस कुरते को वास्तविक मान छूने की भूल कर बैठते हैं। इन चित्रों के ऊपर एक विशिष्ट चित्र झालावाड़ के शाही इंद्र विमान की सवारी का बड़ी सुंदरता लिये हुए है। इसमें शाही इंद्र विमान को दो विशाल और काले हाथी खींच रहे हैं, जिनके आगे-पीछे अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित फौज-पलटन है तथा मार्ग के किनारे स्थित मुख्यालय झालावाड़ (छावनी) की वैभवशाली हवेलियों, भंडारों, पथों एवं व्यवस्थित बाजारों के चित्र अनेक चितेरों ने बनाए हैं। इनमें शाही आभूषणों को स्वर्ण रंगों से चित्रित किया गया है। लंदन के डॉ. राकेश सिन्हा के संग्रह में एक मनोहारी चित्र का अंकन झालावाड़ कलम का है। इस चित्र में झाला जालिमसिंह (प्रथम) ऊँटनी पर सवार हैं, जो दौड़ी चली जा रही है। इसकी गतिशीलता अद्‌भुत है। राजस्थान की शैलियों में ऐसा चित्र कहीं नहीं है।

यहाँ विभिन्न शासकों के चित्रों के ऊपर विभिन्न चित्रों में विभिन्न पौराणिक अवतारों के सुंदर चित्र भी बड़ी सुघड़ता के साथ बनाए गए हैं। इनमें कलाकार ने पृथु अवतार, हंस अवतार, मनु अवतार, ऋषभ अवतार सहित कलियुग में होनेवाले कल्कि अवतार तक का चित्रण प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ धाम के साथ बड़ी ही सुंदरता से किया है। इन चित्रों में कुछ प्रमुख चित्र कंपनी (ब्रिटिश) शैली के हैं, जो राजस्थान तथा मालवा की अन्यत्र शैली में दिखाई नहीं देते। इसमें एक विशाल शाही जुलूस का सुंदर दृश्य, जिसमें सैनिकों की वेशभूषा व पतलून तथा उनके हाथों में बंदूकों का चित्रण कंपनी शैली का है। परंतु इस चित्र में जिन हाथियों का लोक-लुभावन चित्रण है, वे कोटा कलम के हाथी-चित्रों से भिन्न है। इन्हीं चित्रों में गजयुद्ध की गृह-रचना का एक चित्रण बड़ा ही प्रभावी है। इसका माप ३ गुणा १० सेंटीमीटर है। गजयुद्ध का ऐसा भव्य चित्र राजस्थान की अन्य चित्रशैलियों में सर्वथा अनूठा है। वास्तव में इस चित्र में कहीं हाथी दौड़ रहे हैं तो कहीं उनपर शिकारी सवार हैं। चित्रित पहाड़ियों पर गजों के झुंड व उनपर साधुओं की तपस्या एवं योगासन की मुद्राओं के अद्‌भुत चित्र हैं। एक कक्ष में झालावाड़ के कल्पनाकार झाला जालिमसिंह (प्रथम) की पूरी मंत्री परिषद् तथा उनके प्रपौत्र महाराजा मदनसिंह के चित्र बड़े भव्य तथा प्रभावी हैं। उनकी वेशभूषाओं में शाही झलक परिलक्षित है। इन चित्रों में सुनहरे रंग का प्रयोग अधिक है, जिन पर यूरोपियन प्रभाव भी दिखाई देता है। समीक्षकों के अनुसार इन चित्रों में शाही वेशभूषा तथा भाव-भंगिमाओं से झालावाड़ राज्य के निकट राज्य की चित्र-शैली के पतन के चिह्न साफ तौर पर दिखाई देते हैं।

भगवान् श्रीनाथजी की विभिन्न राजसी भंगिमाओं का चित्रण नाथद्वारा शैली से प्रभावित है। झालावाड़ के शासक भगवान् द्वारकाधीश के परमभक्त रहे, अत: उन्हें श्रीनाथजी तथा नवनीत प्रियालाल की सेवा करते हुए जिस प्रकार उकेरा गया है, वह आज भी जीवंत है। इन्हीं के साथ वल्लभ संप्रदाय की पुष्टि पूजा से सेवित विट्ठलनाथजी तथा अन्य गोस्वामियों के अंकन भी अत्यंत मनमोहक हैं। कँवरपदा महल के एक सुंदर कलात्मक मंदिरनुमा आलिये में श्रीनाथजी का नयनाभिराम वस्त्रों तथा मालाओं से पूर्ण शृंगार चित्रित किया गया है। इसमें अनेक रंगों के साथ स्वर्ण रंग का भरपूर प्रयोग है। चित्र के पृष्ठ में चारों ओर गायों का सुंदर चित्रण हाशिये का प्रभाव बढ़ाता है। एक प्रभावी चित्र में झालरापाटन के द्वारकाधीश भगवान् तथा नवनीत प्रियाजी को पूर्ण शृंगार में उकेरा है, जिसमें नवनीत प्रियाजी को मूँछों से चित्रित किया है। इस चित्र के पृष्ठ आधार को स्वर्ण रंगों की मोर पंखियों से सँवारा गया है। कृष्णलीला के अंकन में उनकी मनोहारी बाललीला, कालिया दमन व अन्नकूट भात भोग आदि के चित्र प्रमुख हैं। इनमें एक अत्यंत मनभावन चित्र गीत गोविंद की भूमि के आधार पर रचा गया है। इसमें राधा-कृष्ण तथा राधा की सखी को चित्रित किया गया है। इसमें सखी मानिनी राधा को कृष्ण से मिलाने के लिए मना रही है। यह चित्र राजस्थान की चित्रांकन परंपरा में अत्यंत मनोहारी तथा जीवंतता लिये माना जा सकता है। इसी क्रम में एक आलिये में श्रीकृष्ण का राधारानी व सखियों के संग चंद्रमा की धवल चाँदनी रात्रि के मध्य सघन ब्रजवन में किए प्रसिद्ध महारास का अति सुंदर चित्र है, जिसे लगातार निहारते रहने पर भी आँखें नहीं थकतीं। ये चित्र यथार्थ शैली मैं टेंपरा पद्धति से बनाए गए हैं, जो यह दरशाते हैं कि राज्यकाल में झालावाड़ राज्य में कृष्ण-भक्ति का बड़ा प्रभाव था। चित्रकारों ने चित्र में पूरे मनोयोग से महारास व धवल चाँदनी का चित्रण उकेरा है। भारत के प्रख्यात कला समीक्षक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के व्यक्तिगत चित्र-संग्रह में राम दरबार का एक अति सुंदर चित्र है। यह चित्र झालावाड़ चित्रांकन परंपरा का प्रमुख प्रतिनिधि चित्र माना जा सकता है, जिसमें झालावाड़ कलम की मौलिक विशेषताएँ विद्यमान हैं उन्हें देखकर ऐसा लगता है, जैसे किसी अत्यंत कुशल चित्रकार ने इसका इतना जीवंत चित्रण किया है। इसी क्रम में एक अद्‌भुत प्रतिनिधि चित्र भगवान् गणेश का है, जिसमें उन्हें गहरे लाल एवं श्वेत रजत रंग से रेखांकित किया है। इस चित्र में गणेश का मूल शीश काफी वीरत्व भाव का है तथा वे पूर्णत: देववस्त्र व रजत अलंकरणों से सुशोभित हैं। झालावाड़ कलम का ऐसा चित्र राजस्थान और आस-पास के प्रदेशों की कला परंपरा में अभी तक कहीं देखने में नहीं आया है। चित्र में गणेश के मुखमंडल का भाव ही उनकी विशिष्टता है, जो उनपर बने अन्य भारतीय चित्रों में उन्हें अलग विशिष्टता प्रदान करता है।

इसी प्रकार रामलीला के चित्र भी भित्तियों व आलियों में उकरे हुए हैं। इसमें से कुछ पर काँगड़ा शैली का प्रभाव है। वनवास के समय चट्टान पर बैठे राम-सीता का अंकन अत्यंत मोहक है, वहीं राम दरबार

के अंकन में ब्रह्मा, शिव को भी दरशाया गया है। राम की शिवपूजा का दृश्य इनमें झालावाड़ चित्रांकन की विशेषताओं का प्रतिनिधि अंकन है। इसी प्रकार रावण-वध के अंकन में जो भंगिमा राम तथा लक्ष्मण की दरशाई गई है, वह बड़ी प्राणवान है। भरत-मिलाप का दृश्य अत्यंत भावपूर्ण है। इसमें राम और भरत दोनों एक दूसरे को बाँहों में लिये जिस तरह से मिल रहे हैं, वह भंगिमा राजस्थान की अन्य शैलियों में इस प्रसंग पर बनाए चित्रों में कहीं नहीं मिलती है। इस अंकन में रंग और रेखाएँ स्वयं बोलती हैं तथा शब्दों के लिए तो मानो कोई स्थान ही नहीं बचा है। इसी क्रम में एक दृश्य में दो सुंदर पक्षियों को डाल पर बैठे हुए दरशाया गया है। पक्षियों के रंग चटख हैं, जिनके कारण वे सजीव दिखाई देते हैं। एक आलिये के चित्र में सुंदर गमले में पुष्प-वल्लरी तथा उसमें ऊपर तक फल रखे हैं, जिन पर कुछ पक्षी बैठे हैं। इनमें मोतियों की माला को बतख समान ये पक्षी चोंच में पकड़े हैं। इस अंकन पर ईरानी प्रभाव की छाप समीक्षकों द्वारा व्यक्त की गई है। इन आलियों में छावनी का सुंदर जलाशय, घाट, पुष्प-वीथिका व सघन वृक्ष सहित वन जीवों के नेत्ररंजक चित्र हैं, जिनमें कई जंगली पशु आखेट तथा जलाशय में किल्लौल करते पक्षियों को चित्रित किया गया है। संभवत: यह तत्कालीन छावनी के चित्रकारों द्वारा आँखों देखे दृश्य हैं। अन्य दृश्यों में झरोखा दृश्यों पर पहाड़ी चित्र शैली का प्रभाव है। अन्य चित्रों में दो सुंदर चित्र तन्वंगी नृत्यांगनाओं के हैं, जिनकी निर्माण शैली अन्य शैलियों से पूर्णत: भिन्न है। ये नर्तकियाँ न तो मेवाड़ शैली की स्त्रियों की तरह हैं, न ही बूँदी शैली की नारियों की तरह ठिगनी हैं और न ही जयपुर शैली की स्त्री की तरह लंबी। ये सुगठित देहवाली तन्वंगी नारियाँ हैं। इनके वस्त्र अत्यंत आकर्षक हैं, जो पंक्तिबद्ध हैं। चित्रकार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक सधे हुए अनुपात से इनका चित्रण किया है, भित्तियों पर ये नर्तकियाँ वाद्य बजाते हुए चित्रित हैं।

भित्तियों व कक्षों की छतों पर सुंदर बेलबूटे व झालावाड़ नगर की तत्कालीन प्राकृतिक दृश्यावली भी पूरे कौशल के साथ प्राणवान तरीके से उकेरी गई है। इनमें अंगूर की बेल का अंकन बेजोड़ है। इन दृश्यों पर मुगल प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो मुगल शैली में ईरानी प्रभाव से आया। ये चित्र बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में बनाए गए प्रतीत होते हैं।

उक्त चित्रकारों ने अपने समय में पृथ्वी विलास, श्रीनाथजी की हवेली और झालरापाटन की प्रसिद्ध विनोद भवन की हवेली में भी अनेक चित्र बनाए, जिनमें राजा-रजवाड़ा शैली, देवी देवता अवतार एवं राम तथा कृष्णलीला प्रमुख हैं। झालावाड़ जिले में गागरोन दुर्ग के सूरजपोल द्वार की पूरी छत पर कोटा महाराव रामसिंह तथा उनकी सेना की विशाल चित्रकला कोटा शैली का सुंदर चित्र है। झालरापाटन के शांतिनाथ मंदिर, सारथलवालों की छतरी तथा यहाँ कई पुरानी इमारतों में आज भी चित्रांकन की तत्कालीन परंपरा के दर्शन होते हैं। कला समीक्षकों का मानना है कि 'ये चित्र इंग्लैंड के लेंडर स्केल पेंटर, कांसलेबल टर्नर की तेलविधि से बने हैं, जिनमें यूरोपियन प्रभाव प्रमुखता से है।' इनमें वाश चित्रों का अपना महत्त्व है। ये चित्र १९०२ ई. से लगभग १९४५ ई. तक की अवधि के भी पश्चात् तक बने प्रतीत होते हैं। इनमें एक आवक्ष चित्र यहाँ के शासक राजेंद्र सिंह सुधाकर का है, जिनका समय १९२९ से १९४३ ई. तक रहा। इन चित्रों से यथार्थ स्पष्ट है तथा ये चित्र कंपनी कला धरोहर से प्रभावित माने जाते हैं। इन चित्रों का रंग अत्यंत चमकदार रूप में प्रयोग किया गया है। यहाँ इनकी कई तानें बनाई गई हैं, लेकिन इसमें भारतीय बीज का भी मिश्रण है। इनमें प्रमुख रूप से नीले, गुलाबी, हलके हरे, पीले, लाल, कत्थई रंगों का सुंदर प्रयोग हुआ है। इनमें मिश्रित रंगों को भी प्रयुक्त किया गया है। झालावाड़ के पुरातत्त्व संग्रहालय में सुनहरे देव चित्रों की हस्तलिखित श्रीमद्भागवत ११ सचित्र जिल्दों में, ताड़पत्र पर लिखी अवतार चरित्र सचित्र ५ जिल्दों में, भागवत चतुर्थ सचित्र ३ जिल्दों में, शालिहौत्र सचित्र ग्रंथ ६ जिल्दों में, गीत गोविंद, मधुमालती, भागवत मूल, अरबी शाहनामा सचित्र लिखे हैं, जिन पर स्वर्ण एवं रजत धातु से चित्रों का अंकन किया है।

उक्त सभी चित्रों एवं सचित्र ग्रंथों पर अभी तक किसी प्रकार का प्रकाशन तथा शोध नहीं हुआ है। यहाँ पुरुषोत्तम माहात्म्य तथा बारहामासा के सचित्र ग्रंथ भी देखने योग्य हैं। इनमें देव चित्रों, अवतारों के चित्र स्वर्ण सहित लाल, पीले, नीले रंगों से बने हुए हैं, जो समीक्षा एवं शोध की दृष्टि से चित्रांकन परंपरा में अभी तक अज्ञात व अछूते हैं। लेखक के सामुख्य अध्ययन के आधार पर झालावाड़ के पुरातत्व संग्रहालय के चित्र-कक्ष में विभिन्न देव अवतारों व ऋतु संबंधी ६० हस्तनिर्मित चित्र प्रदर्शित हैं। पुरातत्त्व विभाग के अंतर्गत कँवरपदा महल के कक्षों में देशी रजवाड़ों, देव अवतारों एवं प्राकृतिक स्वरूपों के १३३ भित्ति चित्र बने हुए प्रदर्शित हैं। इनके अतिरिक्त ३०० हस्तनिर्मित चित्र संग्रहालय के संग्रह में सुरक्षित हैं।

इस प्रकार शौर्य, उत्साह, पौरुष की अनुपम अभिव्यक्ति के साथ-साथ इन चित्रों में भावपूर्ण भक्ति, देवों की दिव्य लीला, रास, शालीनता और गौरव के मध्ययुगीन आदर्शों का ऐसा संतुलित मिश्रण है, जिनमें एक युग की सुंदर झलक मिलती है और यह झलक झालावाड़ की चित्रांकन परंपरा की वह कलात्मक जीवंतता है, जिसका मोहक स्वरूप आज भी देशी-विदेशी पर्यटकों और कला समीक्षकों को यहाँ खींच ले आता है। सा.अ

अनहद जैकी स्टूडियो, १५-मंगलपुरा
झालावाड़-३२६००१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९८२९८९६३६८

प्रतिभा

मूल : **अंतोन चेखव**

अनुवाद : **बी.एम. नंदवाना**

आर्टिस्ट युगोर सेविच, जो एक अफसर की बेवा के मकान में अपनी गरमी की छुट्टियाँ बिता रहा था, सुबह के अवसाद से ग्रस्त अपने बिस्तर पर बैठा हुआ था। ऐसा लग रहा था कि बाहर शरद ऋतु की शुरुआत हो चुकी है। गहरे, आवारा बादलों की मोटी परतों ने आसमान को ढक रखा था; हवा ठंडी और तेज थी और दरख्त शोकाकुल, विलाप करते एक ही दिशा में झुके हुए थे। वह पीली पत्तियों को हवा में और जमीन पर चारों ओर उड़ते हुए देख रहा था। गरमी के मौसम को अलविदा! एक कलाकार की नजर से देखें तो कुदरत की यह गहरी उदासी अपने तरीके से बहुत ही खूबसूरत और काव्यमय है, लेकिन युगोर सेविच इस खूबसूरती को देखने के मूड में कतई नहीं था। उबाऊपन उसे जकड़े हुए था। उसे तसल्ली केवल इस बात की थी कि कल सुबह वह वहाँ नहीं होगा। पलंग, कुरसी, मेज, फर्श, सभी पर तकिये, मुड़े-तुड़े बिस्तर, डिब्बे इधर-उधर बिखरे हुए थे। फर्श पर झाड़ू नहीं लगी थी, खिड़कियों से सूती परदे उतार लिये गए थे। कल वह शहर जानेवाला था।

उसकी बेवा मालकिन बाहर थी। कल शहर जाने के लिए घोड़ा-गाड़ी किराए पर तय करने लिए कहीं गई थी। अपनी सख्त मिजाज माँ की गैर-मौजूदगी का फायदा उठाते हुए बीस साल की बेटी कात्या काफी समय से उस युवा के कमरे में बैठी हुई थी। कल पेंटर वहाँ से जानेवाला था और वह उसे बहुत कुछ कहना चाहती थी। वह बातें करती रही, मगर उसे लगा कि अब तक उसे जो कहना था, उसका दसवाँ हिस्सा भी नहीं कह पाई है। छलछलाई आँखों से उसने उसके झबरीले सिर को गौर से, उत्साह और विषाद से उसे देखा। युगोर सेविच बेहद झबरीला था, वह जंगली जानवर की तरह लगता था। उसके बाल कंधों तक लटक रहे थे, दाढ़ी का फैलाव गरदन, उसके नथुनों, कानों तक था; उसकी आँखें मोटी लटकती हुई भौंहों में छिप सी गई थीं। वह सब इतना घना और उलझा हुआ था कि अगर कोई मक्खी या झींगुर उसके बालों में फँस जाए तो उसे उस जादुई-झाड़ी से बाहर निकलने का रास्ता ही न मिले। जम्हाई लेते हुए युगोर ने कात्या की बातों को सुना। वह थका हुआ था। जब कात्या बच्चों की तरह रोने लगी, उसने अपनी लटकती हुई भौंहों को सिकोड़ते हुए तीखी नजरों से उसकी तरफ देखा और भारी-गहरी आवाज में कहा—

''मैं शादी नहीं कर सकता।''

''क्यों नहीं?'' कात्या ने धीमे से पूछा।

''क्योंकि एक पेंटर के लिए, और वास्तव में जिस व्यक्ति का जीवन कला को समर्पित है, उसके लिए शादी का प्रश्न ही नहीं उठता है। एक आर्टिस्ट को आजाद रहना चाहिए।''

''परंतु मैं किस तरह तुम्हें बाधा पहुँचाऊँगी, युगोर सेविच?''

''मैं अपनी बात नहीं कर रहा हूँ। मैं एक सामान्य बात कह रहा हूँ, प्रसिद्ध लेखकों और कलाकारों ने कभी शादी नहीं की।''

''और तुम भी प्रसिद्ध हो जाओगे—इसे मैं अच्छी तरह से समझ रही हूँ। लेकिन तुम खुद को मेरी जगह रखकर देखो, मैं अपनी माँ से डरती हूँ। वह सख्त मिजाज और चिड़चिड़ी है। जब उसे मालूम पड़ेगा कि तुम मुझसे शादी नहीं कर रहे हो कि तुम्हारे और मेरे बीच कुछ नहीं है, तो मेरी खैर नहीं! ओह, मैं कितनी असहाय हूँ! और तुमने अब तक कमरे का किराया भी नहीं दिया है।''

''लानत है उसे! मैं किराया दे दूँगा।''

युगोर सेविच उठा और इधर-उधर घूमने लगा।

''मुझे विदेश जाना ही होगा।'' उसने कहा और आर्टिस्ट ने उसे बताया कि विदेश जाना बहुत ही आसान है। आर्टिस्ट को कुछ नहीं करना है, बस एक पेंटिंग बनाकर उसे बेचनी भर है।

''बेशक!'' कात्या ने हामी भरी। ''इन गरमियों में तुमने कोई पेंटिंग क्यों नहीं बनाई?''

''तुम समझती हो कि मैं इस खलिहान जैसी जगह पर काम कर सकता हूँ?'' आर्टिस्ट ने अनमनेपन से कहा, ''और यहाँ मुझे मॉडल कहाँ मिलेगी?''

नीचे किसी ने जोर से दरवाजा खटखटाया। कात्या जो मिनट-दर-मिनट अपनी माँ के वापस आने का इंतजार कर रही थी, फुरती से कूदी और चली गई। आर्टिस्ट अकेला रह गया। काफी समय तक वह कुरसियों और बेतरतीब फैले सामान के बीच रास्ता बनाता इधर-उधर चहल-कदमी करता रहा। उसने बेवा को बरतनों को खड़खड़ाते और किसानों को जोर-जोर से गाली देते हुए सुना, जो उससे घोड़ागाड़ी का

किराया दो रूबल माँग रहे थे। युगोर सेविच घृणा से खीजकर अलमारी के पास रुका और वोदका की सुराई पर नाक-भौं चढ़ाते हुए कुछ समय तक नजरें गड़ाईं।

''आह, तुझे खत्म कर दूँगी!'' उसने बेवा को कात्या से गाली-गलौज करते हुए सुना। ''तू नरक में जाए।''

आर्टिस्ट ने एक गिलास वोदका पी, उसके अंदर जो बैचेनी थी, वह धीरे-धीरे गायब हो गई। उसने महसूस किया कि उसके भीतर का सबकुछ उसके अंदर मुसकरा उठा है। वह खयालों में खो गया, उसने एक काल्पनिक तसवीर बनाई कि कैसे वह महान् बनेगा। वह अपनी भविष्य की पेंटिंग्स की कल्पना तो नहीं कर पाया, परंतु साफ-साफ देख रहा था कि अखबार उसके बारे में क्या लिखेंगे, किस तरह दुकानें उसके फोटोग्राफ बेचेंगी, कि उसके ईर्ष्यालु यार-दोस्त उसे किस प्रकार तवज्जो देंगे। उसने कल्पना में जो तसवीर खींची, उसमें खुद को एक शानदार ड्राइंग-रूम में सुंदर और उसे बेहद प्यार करनेवाली युवतियों के बीच पाया। लेकिन वह तसवीर धुँधली थी, क्योंकि उसने अपने जीवन में अब तक ड्राइंग-रूम नहीं देखा था। खूबसूरत और बेहद चाहनेवाली महिलाओं की तो बात ही क्या, वह कात्या के सिवाय किसी दूसरी इज्जतदार लड़की को जानता तक नहीं था। जो लोग जिंदगी के बारे में कुछ भी नहीं जानते, वे अकसर किताबों से जीवन की तसवीर बनाते हैं, लेकिन युगोर सेविच का किताबों से भी कोई नाता नहीं था। एक बार उसने 'गोगोल' को पढ़ने की कोशिश की थी, पर दूसरे पृष्ठ तक आते-आते उसे नींद आ गई थी।

''वह नहीं जलेगा, धत्त!'' चाय की केतली को सेट करने के लिए बेवा नीचे झुकी। ''कात्या, मुझे कुछ कोयले उठा दो।''

स्वप्निल आर्टिस्ट ने अपनी आशाओं व सपनों को किसी और से साझा करने की एक तड़प महसूस की। वह नीचे रसोई में गया, वहाँ मोटी बेवा और कात्या केतली से उठते कोयले के धुएँ के बीच गँदले स्टोव को दुरुस्त करने में लगी हुई थीं। वहाँ वह बड़े से मटके के पास रखी हुई बेंच पर बैठ गया और सोचने लगा, 'आर्टिस्ट होना बहुत अच्छी बात है! मैं जहाँ चाहूँ, वहाँ जा सकता हूँ, जो चाहूँ कर सकता हूँ। उसे न ऑफिस में और न ही बाहर काम करना पड़ता है। मेरे ऊपर न कोई बॉस है और न अफसर···मैं खुद ही अपना बॉस हूँ और इन सबके साथ मैं मानवता के लिए अच्छा काम कर रहा हूँ।'

डिनर के बाद वह आराम करने के लिए शांत-चित्त हो गया। वह अमूमन सूर्यास्त तक सोता था। लेकिन इस समय ठीक डिनर के बाद उसे लगा कि कोई उसकी टाँग खींच रहा है। कोई उसका नाम ले रहा है, जोर-जोर से हँस रहा है। उसने आँखें खोलीं और देखा, उसका दोस्त युक्लेकिन, लैंडस्केप पेंटर था, वह गरमियों में हमेशा बाहर कोस्ट्रोमा जिले में चला जाता था। ''साले!'' वह खुशी से चिल्लाया, ''यह मैं क्या देख रहा हूँ?''

उसके बाद शुरू हुआ हाथ मिलाना, सवाल-जवाब का सिलसिला।

''···अच्छा, क्या तू कुछ लेकर आया है? मुझे लगता है, तूने तो फटाफट सौ से ऊपर स्केच बना लिये होंगे।'' युगोर सेविच ने युक्लेकिन को अपने बक्से में से सामान निकालते हुए देखा और कहा, ''हाँ मैंने कुछ बनाया है और तेरा कैसा चल रहा है? इधर कुछ पेंट किया है?''

युगोर सेविच ने पलंग के पीछे छलाँग लगाई, झिझकते हुए उसने फ्रेम की हुई धूल और मकड़ी के जालों से ढका एक कैनवास निकाला।

''इसे देख, खिड़की पर एक लड़की अपने मंगेतर से जुदाई के बाद तीन बैठकों में। अभी थोड़ा काम बाकी है।''

इस तसवीर में कात्या का हल्के हाथ से बनाया हुआ खाका था, वह खुली खिड़की में बैठी थी, जहाँ से बगीचा और नीले रंग का आकाश दिखाई दे रहा था। युक्लेकिन को तसवीर पसंद नहीं आई।

''हूँह! खिंचाव है···और चेहरे पर भाव भी।'' उसने कहा, ''अलग होने का एहसास भी है, लेकिन···लेकिन वह झाड़ी चीख रही है, भयंकर रूप से चीख रही है।''

सुराई को बीच मैदान में लाया गया। शाम होते-होते एक और होनहार नौसिखिया, ऐतिहासिक पेंटर कोस्टीलियोव युगोर सेविच से मिलने आ गया। उसका वह दोस्त पास की विला में रहता था, करीब पैंतीस साल का। उसके बाल लंबे थे, उसने शेक्सपियर-कॉलर की कमीज पहनी हुई थी और उसका तौर-तरीका स्तरीय था। वोदका को देखते ही उसने नाक-भौं सिकोड़ी, छाती में दर्द की शिकायत की, पर दोस्तों के इसरार पर नरम पड़ते हुए एक गिलास पी गया।

''मेरे दोस्तो, मैंने एक विषय के बारे में सोचा है।'' उसे नशा चढ़ने लगा था। ''मैं कुछ नया पेंट करना चाहता हूँ—हेरेड या क्लेपेंटीयन, या इसी तरह का कोई दुर्जन, तुम समझ रहे हो न? और उसके विरुद्ध ईसाइयत की अवधारणा। एक तरफ रोम, तुम समझ रहे हो न और दूसरी तरफ ईसाइयत···मैं आत्मा दरशाना चाहता हूँ, तुम समझ रहे हो न, प्रेतात्मा के विरुद्ध आत्मा।''

और सीढ़ियों के नीचे बेवा लगातार चिल्ला रही थी—''कात्या, मुझे ककड़ी दे। ओ! शैतान की आँत, सिदोरोव के वहाँ से थोड़ा क्वास ले आ।''

पिंजरे में बंद भेड़ियों की तरह तीनों दोस्त कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक आगे-पीछे कदमताल कर रहे थे। वे बिना दिल खोले बातें कर रहे थे। तीनों ही उत्तेजित थे, बातों में बह गए। उनको सुनने पर ऐसा लगता था कि आनेवाला कल, प्रसिद्धि, पैसा उनके हाथों में था। और उनमें से किसी एक को भी ऐसा नहीं लगा कि समय हाथ से

निकलता जा रहा है, कि हर पल जीवन अपनी समाप्ति की ओर बढ़ रहा है, कि काफी हद तक वे जीवनयापन के लिए दूसरों पर निर्भर हैं, कि अभी तक उन्होंने कुछ भी हासिल नहीं किया है; कि वे सभी बड़े ही कठोर नियम से बँधे हुए हैं, जिसके अनुसार एक सौ होनहार आरंभकर्ताओं में से केवल दो या तीन ही किसी पोजीशन तक पहुँच पाते हैं और बाकी सब इस दौड़ से बाहर हो जाते हैं, इस खेल में तोप के लिए ईंधन का किरदार निभाते हुए नष्ट हो जाते हैं···वे मग्न और खुश थे और भविष्य को बहादुरी के साथ अपने सामने देख रहे थे।

दोपहर एक बजे कोस्टीलियोव ने अलविदा कहा और अपने शेक्सपियर-कॉलर को सीधा करते हुए घर चला गया। लैंडस्केप पेंटर युगोर सेविच के यहाँ सोने के लिए रुक गया। सोने के पहले युगोर सेविच ने मोमबत्ती उठाई और पानी पीने के लिए नीचे रसोई की तरफ गया। अँधेरे में तंग गलियारे में एक बक्से पर कात्या बैठी हुई थी और उसने हाथों को घुटनों को घेरते हुए पकड़ रखा था, वह ऊपर की तरफ देख रही थी। एक आनंदमयी मुसकान उसके जर्द, कमजोर चेहरे पर बिखरी हुई थी, पर उसकी आँखें दमक रही थीं।

''तुम हो, क्या सोच रही हो?'' युगोर सेविच ने उससे पूछ।

''मैं सोच रही हूँ कि तुम प्रसिद्ध कैसे होगे?'' उसने धीमी आवाज में कहा, ''कल्पना कर रही हूँ कि तुम प्रसिद्ध आदमी कैसे बनोगे?···मैंने तुम्हारी सारी बातें सुन ली हैं। मैं सपने देख रही हूँ और सपने देख रही हूँ···''

कात्या खुशी के मारे हँसी, रोई और अपने हाथ श्रद्धा के साथ अपने आराध्य-देव के कंधों पर रख दिए।

१५२, टैगोरनगर, हिरणमगरी सेक्टर
उदयपुर-३१३००२ (राजस्थान)
दूरभाष : ९९८३२२४३८३

इतनी काली सुबह न हो

गीत

• सत्येंद्र कुमार रघुवंशी

आखिरी नीम

काट दिया कुछ लोगों ने कल
बस्ती का आखिरी नीम भी।

पता नहीं अब कहाँ छिपेंगे
आँधी से घबराए तोते
और धूप से डरी बकरियाँ,
कोयल की सुर भरी उड़ानें
कैसे देखेंगी रुक-रुककर
कॉलेज जाती हुई लड़कियाँ।

वह दरख्त था, सच है लेकिन
था टोले भर का हकीम भी।

लू से झुलसी हुई फाख्ता
किसी सिनेमाघर की छत पर
टपकेगी इस बार जून में,
बारिश में भीगी गौरैया
कैसे लाएगी गरमाहट
अपने जमते हुए खून में?

गुस्से में है रामखिलावन
उखड़ा-उखड़ा है करीम भी।

बुरे वक्त में भी

पड़े जरूरत सँझवाती की,
इतनी काली सुबह न हो।

इतनी धूसर हो न दोपहर
हम-तुम गर्द नजर आएँ,
चेहरे पत्तों से उड़-उड़कर
चारों ओर बिखर जाएँ।

खुद कोई मल्लाह नाव के
हिचकोलों की वजह न हो।

सिर पर गिरी शिला से हमको
झूठ अचेत न कर पाए,
बुझें हजारों बार, मगर हम
तम से जरा न घबराएँ।

बुरे वक्त में भरी सूरज की
किसी धुंध से सुलह न हो।

रोक सको तो रोको खुद को
बादल जैसा फटने से,
रात मिलेगी तारों वाली
चाँद सरीखा घटने से।

बनो न वह दीवार कि जिस पर
तसवीरों की जगह न हो।

आँखें तो आँखें हैं, नम हों,
पर आवाजें साफ रहें,
और धड़कनों के सिरहाने
कुछ रंगीन गिलाफ रहें।

कभी कठघरे से इस मन में
खुद से खुद की जिरह न हो।

२०५, ऑर्चिड ब्लॉक, पार्क व्यू अपार्टमेंट्स
नवीन गल्ला मंडी के पास, सीतापुर रोड
लखनऊ-२२६०२४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९९११८१६५७४७

हमारे पुरखों का फास्ट फूड : सत्तू

● **मालती शर्मा**

सुप्रसिद्ध वरिष्ठ लेखिका। कविता, लोकवार्त्ता, लोक-संस्कृति, समीक्षा, बाल साहित्य तथा अद्यतन सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर विगत अड़तालीस वर्षों से अनवरत लेखन। प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लगभग नौ सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित, विविध संग्रहों तथा शोध ग्रंथों में शामिल। छोटे-बड़े कई दर्जन पुरस्कार-सम्मानों से अलंकृत। संप्रति लेखन में रत।

अक्षय तृतीया शुभ मुहूर्त की तिथि है। इस दिन जो भी कार्य किया जाता है, वह अक्षय होता है। प्राचीनकाल से ही लोक-जीवन में यह अक्षय धान्य, अक्षय पुण्य और अक्षय कीर्ति देनेवाले कार्यों का शुभारंभ पर्व माना जाता है।

पर यह पर्व 'सतुआखानी तीज' के रूप में जन-जन को भोजन की चिंता और भोजन पकाने के झंझटों से अक्षय मुक्ति दिलानेवाला सुयोग बना। वह यों कि अक्षय तृतीया 'फास्ट फूड' सत्तू का जन्मदिन है।

भोजन पकाने के झंझटों से मुक्ति दिलानेवाला ठोस और साकार आविष्कार है 'सत्तू', जो साथ में बँधा हो तो मनुष्य खाने की चिंता भूलकर सौ-सौ कोस तक जा सकता है। सतुआ घोरकर वह किसी भी काम के पीछे पड़ सकता है, हर परिस्थिति से लड़ सकता है सतुआ बाँधकर।

इस अक्षय मुहूर्त में किसान चैत्री फसल का अनाज लीप-पोतकर स्वच्छ और कीटाणु रहित की गई खत्तियों, अड्डों और कुठिलों में भरकर सुरक्षित करता था, ताकि धान्य क्रम अक्षय रहे। बीजों की पीढ़ियाँ वर्षानुवर्ष अंकुरित होती रहें; इसलिए खरीफ की फसल का बीज उठाकर रखा जाता था।

खत्तियों में धान्य सुरक्षित करने के बाद किसान इसी अक्षय मुहूर्त में कृषि के लिए औजार बनवाने का लग्गा लगाता। पुराने हल, फावड़े, कुदाली की मरम्मत की तरफ ध्यान देता। नए बनवाता। कुआँ, तालाब पोखर खुदवाने, नया मकान और मंदिर बनवाने के मुहूर्त भी इसी दिन किए जाते। चारपाई बुनवाई जाती; छींके-पीढ़े, तख्त, ईडोनी, पंखे, बुनने अनेक कला-कौशल के कार्यों का शुभारंभ कराया जाता। खेतों में थोड़ी-थोड़ी खाद डालकर हल भी चला दिया जाता।

लेकिन यह सब शुभारंभों की शृंखला गूँथने के पूर्व सतुआखानी तीज मनाई जाती।

सतुआ अधिकतर चैती फसल के अनाज चना और गेहूँ का बनता है। जहाँ धान रबी की फसल है, वहाँ चावल का सत्तू बनता है। बरेली की ओर सिर्फ चने भुनाकर पीसकर सत्तू बनाया जाता है। इसमें खाली घी, बूरा मिलाकर खाते हैं, यह 'बुढ़ौर' कहा जाता है। बुंदेलखंड और ब्रज में सूखे बेरों का भी कूट-पीसकर सत्तू बनाते हैं, जिसे 'बिरचन' कहते हैं। यह बहुत पौष्टिक और अग्निमांद्य का नाशक होता है।

अकती या अखैतीज के सप्ताह भर पहले ही भड़भूजों के यहाँ सतुआ भुनानेवालों की भीड़ लग जाती है। गाँव की गलियाँ भुने अनाज की सोंधी-सोंधी महक से भर जाती हैं।

सत्तू के अनेक नाम और रूप हैं। सामान्यत: सत्तू केवल जौ, जौ में चना और गेहूँ या सिर्फ चना मिलाकर उन्हें भाड़ में भुनाकर पीसकर बनाया जाता है। भुनाने से पहले सत्तू बनानेवाला अनाज पानी में भिगो देते हैं, ताकि नए अनाज की गरमी शांत हो जाए। भुना हुआ, ओखली में छरकर भुसी निकाला हुआ जौ 'घाटि' कहलाता है। भुने हुए जौ 'चबैना' भाड़ में भुने गरम-गरम गेहूँ में राब या गुड़ मिलाकर अथवा चाशनी चढ़ाकर 'गुड़धानी' बनाई जाती है। बच्चों के लिए मुरमुरे और ज्वार-मक्का के फूले बनाए जाते हैं। गरमियों के पहाड़ से दिन-दोपहरी में श्रमिक वर्ग के घरों में ये सभी चीजें बच्चे, बूढ़े, जवान सभी के लिए थोड़ा खाकर पानी पीने का आधार हैं।

अक्षय तृतीया से भगवान् बदरीनाथ मंदिर के कपाट खुलते हैं, अत: घर-घर में अखैतीज को सुबह गुड़ के पानी में सत्तू घोलकर बदरीनाथ भगवान् को भोग लगाया जाता है। पहले किसी कन्या को सत्तू खाने को देते हैं। इसके बाद अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार समस्त श्रमिक वर्ग को पसेरी भर से लेकर कटोरा भर तक सत्तू और भेली से लेकर पाव-आधा पाव की डली तक गुड़ देने की प्रथा है। इसके बाद कृषक परिवार सत्तू खाता है। यदि अखैतीज को कोई अतिथि-अभ्यागत आ जाए तो इस दिन उसका आतिथ्य भी सत्तू से ही होता है।

आयुर्वेद के अनुसार ग्रीष्मकाल में सत्तू आदर्श आहार है। यह नए आए अनाज से उत्पन्न उष्णताजन्य बीमारियाँ नहीं देता। सत्तू पित्तशामक, शीघ्र पचनेवाला, हलका और पौष्टिक आहार है। गरमियों में सत्तू खाने से प्यास कम लगती है। गुड़ में घोलकर खाया गया सत्तू लू से बचाता है। दही या छाछ में मिलाकर खाने पर सत्तू अतिसार में लाभ पहुँचाता है।

ऋग्वैदिक युग में सत्तू को 'करंभ' कहा जाता था। उस काल में सत्तू केवल जौ का ही भून-पीसकर बनाया जाता था। महाराष्ट्र में तो जौ को आज भी सत्तू कहा जाता है। महाभारत युद्ध तक सत्तू राजा-प्रजा दोनों का प्रिय भोजन था। वैदिक आर्यों को ही नहीं, उनके देवताओं को भी करंभ अतिप्रिय था। ऋग्वेद की कई ऋचाओं में देवताओं को करंभ अर्पित करने का उल्लेख आया है।

महाभारत की विराट् युद्धभूमि में घी में जौ भूनकर, पीसकर बनाया गया करंभ ही युवा सैनिकों और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य जैसे वृद्ध

सेनापतियों का आहार था। महाभारत के योद्धा वैदिक आर्यों के सदृश्य सत्तू में दही, शहद, दूध, पानी, एक बार में एक, अलग-अलग या कभी इच्छानुसार थोड़ी-थाड़ी सारी चीजें मिलाकर खाते थे। शल्यराज को तो सत्तू बहुत ही प्रिय था।

आजकल गाँवों में सत्तू गुड़, नमक या राब (शीरा गुड़) डालकर खाया जाता है।

पर राजा-प्रजा और देवताओं का यह प्रिय सत्तू कीमा, कबाब, कोरमा, बिरयानी की मुगलशाही भोजन संस्कृति के बोलबालेवाले मध्ययुग में शाही दस्तरखान से अपदस्थ होकर किसान, मजदूर और जनसाधारण का भोजन बनकर रह गया। जो सत्तू कभी देवताओं को अर्पित होता था, उसे किसी मेहमान को खाने के लिए देना अतिथि का अनादर बन गया। दसवीं-बाहरवीं सदी के लोक महाकाव्य 'महादेव विवाह' में शुक्र-शनिचर शिवजी से कहते हैं, ''हाँ-हाँ, खूब आतिथ्य किया हमारा तुम्हारी सास मैना ने। हमें तो उसने सत्तू खिला दिये हैं, तुम्हारे लिए दलिया बनाकर रखा है। जाओ, जल्दी पहुँचो खाने के लिए।''

सत्तू मात्र भोजन ही नहीं, एक पूरी संस्कृति है। सर्वहारा वर्ग, किसान-मजदूरों, जन सामान्य की संस्कृति में सत्तू अनथक कर्मठता का मुहावरा है। सतुआ घोलना कला है, कोई ऐसा-वैसा कार्य नहीं। सत्तू बाँधकर, सतुआ घोरकर ही किसी जमाने में बेटी के लिए वर ढूँढ़ने जैसे कठिन कार्य पार पड़ते थे।

इसीलिए जनसाधारण ने तुरंत भूख मिटाने की क्षमता रखनेवाले इस सहज-सुलभ भोजन को नमक की डली और गुड़ की डेली के साथ अपनी गठरी-मोटरी में रोटी-रोजी और दूर-दराज की तलाश-प्रवासों में बाँधे ही रखा। एक भरोसेमंद साथी की तरह साथ रखा, बिना जोरू जाते के घर भी मटकी में भरे ही रखा। जीविका की खोज में कलकत्ता गए बिहारी मजदूरों का तो अभिधान ही है सत्तू। कलकत्ता का भद्रलोक उन्हें 'सत्तूखोर' कहकर ही पुकारता है, पहचानता है।

सत्तू ने तो रंधैन है, न पकवान। अत: भोज्य पदार्थों में सत्तू का मान घरजँवाई जैसा है। घरजँवाई को जैसे घर के छोटे-से-छोटे कार्य करने पड़ते हैं, वैसे ही सत्तू को सर्वहारा की भूख मिटानी होती है।

दो साढ़ू भाइयों की कहानी में दूर गाँव से आए अपनी सास के जमाई अपने साढ़ू भाई को घर जमाई अपनी सतुआ जैसी स्थिति बता ही तो देता है—

''पहलैं तो ए वासुदेव! अब भये बसुआ, कंधा पै पाम चरिके चढ़ि गई ससुआ तुम तो खाईं खीर-पूरी हम खाए सतुआ।''

कुछ भी हो, पर सत्तू अपने समय का सुपर फास्ट फूड था। किसी अच्छी विज्ञापन कंपनी की निगाह अब भी अगर उसपर पड़ जाए, कोई अच्छी एजेंसी चलानेवाला मिल जाए तो सत्तू के सोए भाग्य जग सकते हैं। कोई सुपर हिट अभिनेत्री अगर सत्तू का विज्ञापन कर दे तो आज भी वह अपना खोया गौरव फिर से पा सकता है।

आज के धीमे विष की तरह असर करनेवाले प्रिजरवेटिवों से युक्त डिब्बाबंद भोज्य पदार्थों की तुलना में सत्तू उत्तम फास्ट फूड है। इसका उपयोग अधिक सुरक्षित, कम खर्चीला, पोषक और सहज-सरल है। सत्तू का भंडारण बिना झंझट का है। सत्तू से क्या-क्या नहीं बनाया जा सकता?

प्राचीन समय में नाई ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल सभी के विज्ञापन में प्रवीण होते थे। तब का विज्ञापन विभाग इन्हीं के हाथों में था। सत्तू के बारे में एक ब्राह्मण देवता छत्तीसाजी नाई की विज्ञापन कला के हाथों मात खा गए।

बात इस तरह है कि अपने यजमान की बेटी के लिए दोनों ही साथ-साथ वर ढूँढ़ने निकले थे। अब पंडितजी की पंडितानी ने साथ में बाँधा था सत्तू और नाई की नात्रों गोरली को शायद नहीं मिला था वक्त तो नाई ले लाया था धान।

भोजन के समय दोनों ने एक-दूसरे से पूछा कि आप खाने के लिए क्या लाए हैं?

ब्राह्मण की सत्तू लाने की बात सुनकर नाई के मुँह में पानी आ गया। वह किसी तरह ब्राह्मण से सत्तू हथियाने की सोचने लगा। विचित्र सा मुँह बनाकर बोला, 'अरे पंडितजी, सत्तू लाए हैं आप! उसमें तो कितनी झंझटें हैं, सुनिए—

सत्तू मन भत्तू, भिजोए, भिजाए
सुखाए-भुजाए, फिर कहूँ छरे-छराए
तब पीसे फिर छाने, फिर घारे तब खाए।

बाप रे! मैं तो लाया हूँ धान, बेचारे सीधे-सादे हैं, उनका क्या? धान बिचारे धरि लिये कूटे-काटे छरि लिये।'

बस, ब्राह्मण नाई की विज्ञापन-पटुता के जाल में फँस गया। उसे सत्तू दे दिया। नाई तुरंत घोलकर खा गया। बेचारे ब्राह्मण देवता गाँव की गलियों में अपनी चावल की पोटली लिये उसे पकाने का आग्रह करते घर-घर घूमते रह गए।

देखा आपने, विज्ञापन का कमाल! आज ही नहीं, उस युग में भी गजब की मार करता था।

देखना है, सत्तू का यह डाउन सीजन कब तक चलता है? सा.अ.

फ्लैट नं.-८, मधु अपार्टमेंट
१०३४/१ मॉडल कॉलोनी, कैनाल रोड
पुणे-४११०१६ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ०२०-२५६६३३१६

कहानी

जूते की नोक पर

● रमाकांत शर्मा

दिनेश बाबू ने कभी किसी की परवाह नहीं की। वे कहा भी करते थे, 'जब मैंने अपने बाप की परवाह नहीं की तो किसी और की क्यों करूँ?' हर किसी को जूते की नोक पर रखने का हुनर उन्हें शायद स्वयं भगवान् ने दिया था। खाते-पीते घर में पैदा हुए थे। माँ के इतने लाड़ले थे कि वह आँचल बिछाए हमेशा उनके आगे-पीछे दौड़ती रहती। दिनेश बाबू के मुँह से बस कुछ निकल भर जाए, वह उसे पूरा करने के लिए सारे घोड़े खोल देती। यहाँ तक कि अपने पति से भी भिड़ जाती। जब भी वे कहते, 'दिनेश की माँ, यह लाड़ नहीं, बिगाड़ है।' तो वह हँसकर टाल जाती।

दिनेश बाबू पढ़ने में तो बहुत तेज थे ही, अच्छे कलाकार भी थे। पढ़ाई में हमेशा आगे रहने और छुटपन से ही नाटकों में भाग लेने के कारण उन्हें खूब सराहना मिलती। दोस्तों की मंडली में वे नायक बने रहते। उन्हें इस बात का पूरा गुमान था कि वे सामान्य लोगों से थोड़ा हटकर हैं, उन्हें ईश्वर ने कुछ विशेष करने के लिए इस संसार में भेजा है। उनका व्यक्तित्व था भी ऐसा कि आस-पास के लोग उनसे कुछ दबकर रहते और उन्हें अतिरिक्त सम्मान देते। घर में तो बस कोई उनके सामने कुछ था ही नहीं। बाबूजी जो कुछ भी कहते, माँ की आड़ में वे उसे कतई अहमियत नहीं देते थे। धीरे-धीरे उनके बीच की दूरी बढ़ती गई। ईश्वर ने उनकी बादशाहत कायम रखने के लिए ही शायद उन्हें कोई भाई नहीं दिया था। एक छोटी बहन थी, जो हमेशा उनसे दूरी बनाए रखती, क्योंकि उनका प्यार भी बड़े भाई होने के अहं से ढका रहता।

मेधावी होने के कारण उन्हें अच्छी नौकरी मिल गई। उसके बाद तो उनके अहं को और भी पर लग गए। उनका नाटकों में भाग लेना बदस्तूर जारी रहा। नाटकों में काम करनेवाली कई लड़कियाँ उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थीं और उनसे विवाह के सपने पालने लगीं, पर दिनेश बाबू उन्हें दोस्ती तक ही सीमित रखते थे। उन्होंने तय कर लिया था कि वे कभी शादी नहीं करेंगे। उनकी नजर में शादी का मतलब गुलामी है, जो उन्हें कतई मंजूर नहीं था। माँ भी रो-धोकर हार गई, लेकिन इस मुद्दे पर उन्होंने माँ की भी नहीं सुनी। उन्होंने साफ-साफ कह दिया, ''माँ, मैं अपनी जिंदगी खुलकर जीना चाहता हूँ। मैं अपने को किसी भी बंधन में नहीं बँधने दूँगा। मेरी मानो, दादी बनने के सपने देखना बंद कर दो। बच्चों के बच्चों का सुख तुम्हें सजला दे ही देगी। उसके बच्चे तुम्हें नानी कहकर पुकारेंगे, क्या इतना काफी नहीं है।''

अपने तरीके से जिंदगी जीनेवाले दिनेश बाबू ने स्वयं को बहुत व्यस्त कर लिया था। ऑफिस छूटते ही वे नाटकों की रिहर्सल के लिए निकल जाते। दोस्तों के साथ गपशप और पीने-पिलाने के दौर में आधी रात कब बीत जाती, उन्हें पता ही नहीं चलता। उन्होंने सोच लिया था कि वे सारे काम करके देखेंगे, जिन्हें मना किया जाता है। जब संसार

लगभग ४० वर्ष से लेखन कार्य। दो कहानी-संग्रह; बैंकिंग विषयों पर हिंदी में संदर्भ साहित्य सृजित करने के लिए महामहिम राष्ट्रपतिजी के हाथों पुरस्कृत। पत्र-पत्रिकाओं में लेखों का नियमित प्रकाशन। संप्रति भारतीय रिजर्व बैंक के जनरल मैनेजर पद से सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन।

में आए हैं तो हर तरह का आनंद लेकर देखेंगे। यही सोचकर उन्होंने सिगरेट पीना, हर तरह का नशा करना और मांसाहारी भोजन करना शुरू कर दिया था। हाँ, यह सब वे घर से बाहर ही करते थे। उनके घर में तो मांसाहार के नाम पर अंडा भी नहीं आता था। सच कहें तो बाबूजी की अवहेलना करने में उन्हें बड़ा मजा आता, पर हमेशा अपने पक्ष में खड़ी रहनेवाली माँ को वे जान-बूझकर दुःख नहीं पहुँचाना चाहते थे।

दिनेश बाबू ने ऐसी कई परिपाटियाँ तोड़ीं, जो न जाने कब से उनके घर और समाज में चली आ रही थीं। यह सब करने में उन्हें अद्‌भुत सुख की अनुभूति होती। कौन उनके बारे में क्या कह रहा है, इसकी उन्हें न तो कोई परवाह थी और न ही वे उसके बारे में सोचते थे। उन्हें लगता, वे जैसी जिंदगी जीना चाहते हैं, वैसी जी रहे थे और किसी की मजाल नहीं, जो उन्हें ऐसा करने से रोक सके। पर इधर उन्हें कुछ दिन से लग रहा था, जैसे वे अपने आपे में नहीं थे। विजया नाम की लड़की ने उनका जीना हराम कर दिया था। उठते-बैठते, सोते या फिर कुछ भी करते, उसका चेहरा उनकी आँखों के सामने घूमता रहता। कितनी ही लड़कियाँ उनके आगे-पीछे घूमती थीं, पर उन्हें कभी भी ऐसा एहसास नहीं हुआ था। उन्हें पता था, वह लड़की भी नजरें बचा-बचाकर उन्हें देखती और उनसे बात करने के लिए बहाने खोजती थी। नाटक की रिहर्सल के समय वह उनके साथ काम करते हुए रोमांटिक सीन को जीवंत बना देती। पर दिनेश बाबू सबकुछ समझते हुए भी अनजान बने रहते। ऐसी कितनी ही लड़कियों को उन्होंने अपने जूते की नोक पर रखा था। इस बार पता नहीं, ऐसा क्या हो रहा कि वे अपने को सँभाले नहीं सँभाल पा रहे। ऊपर से चाहे कुछ भी दिखा रहे हों, लेकिन अंदर से वे चाहते थे कि विजया हमेशा उनके सामने बनी रहे।

उस रात जब नाटक खत्म हुआ तो वे दोस्तों से विदा लेकर घर के लिए चल दिए। वे एक पैर आगे बढ़ाते तो दूसरा पैर वहीं रुक जाता। उन्हें पता था, विजया अभी तक नहीं निकली। उनका दिमाग कह रहा था कि उन्हें विजया को कोई भाव नहीं देना, पर दिल उसे एक नजर देखने के लिए बेचैन किए था। उन्होंने यों ही पीछे मुड़कर देखा तो विजया उन्हें अपने स्कूटर पर आती दिखाई दी। वे अपनी जेबें टटोलते हुए इस मुद्रा

में उसकी तरफ चलने लगे, जैसे ग्रीन रूम में अपनी कोई जरूरी चीज भूल आए हों। विजया ने उनके पास पहुँचकर अपना स्कूटर रोका और पूछा, ''कुछ भूल आए हैं क्या, दिनेश बाबू? आइए, मेरे स्कूटर पर बैठ जाइए, मैं आपको लिये चलती हूँ।''

''नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। लगा अपना पर्स वहीं भूल आया हूँ, पर वह अंदर की जेब में मिल गया।''

''तो फिर मैं चलूँ?'' विजया ने कहा।

''तुम्हारी मरजी है।'' दिनेश बाबू ने कंधे उचकाते हुए कहा।

''मेरी मरजी तो थोड़ी देर समुद्र के किनारे बैठकर रात में किनारे से टकराती लहरों का आनंद लेने की है, चलेंगे आप?''

इस आकस्मिक निमंत्रण से दिनेश बाबू सकपका गए। फिर कुछ सोचते हुए विजया के स्कूटर की पिछली सीट पर बैठ गए।

कुछ देर बाद वे दोनों समुद्र के किनारे रेत पर बैठे समुद्र की लहरों को तट से टकराते और फिर बिखरकर समुद्र में वापस जाते देख रहे थे। दोनों के दिलों में भी वैसी ही लहरें उठ रही थीं। इन लहरों का उद्वेलन उन्हें बेचैन किए था। पर दिनेश बाबू अपने प्यार का खुद इजहार करें, यह उनकी खुदी को मंजूर नहीं था।

आखिर विजया ने ही अपने मन की बात छेड़ी। उसने कहा, ''दिनेश बाबू, घर में मेरी शादी की बात बहुत जोर-शोर से चल रही है, पर मैं अपनी पूरी जिंदगी आपके साथ बिताना चाहती हूँ। आपकी आँखों में मैंने अपने लिए प्यार महसूस किया है, इसीलिए हिम्मत करके आज यह बात कह रही हूँ। बोलो, क्या मुझसे शादी करोगे?''

दिनेश बाबू कुछ क्षण चुप रहे और फिर बोले, ''यह सच है कि मैं कुछ समय से तुम्हारे बारे में ऐसा महसूस कर रहा हूँ, जैसा मैंने कभी किसी लड़की के बारे में महसूस नहीं किया। मैं तुम्हारा साथ पाना चाहता हूँ, पर मैं शादी करने और बच्चे पालने के बंधन में नहीं बँधना चाहता।''

''क्या कहना चाहते हो तुम, बिना शादी किए तुम्हारे साथ रहूँ? यह मेरे संस्कार में नहीं है और फिर मैं तो बच्चों के साथ अपना पूरा परिवार चाहती हूँ। फिर समाज नाम की भी तो कोई चीज है।''

''ऐसी-तैसी तुम्हारे समाज की। अगर हम दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं तो फिर शादी करके या शादी के बिना साथ रहें, इससे क्या फर्क पड़ता है। समाज हमारी कितनी परवाह करता है, जो हम समाज की करें। कभी सोचा है, बच्चे होंगे तो क्या हम अपने तरीके से जिंदगी जी पाएँगे? मैं तो अपने तरीके से जिंदगी जीना चाहता हूँ, बस। हाँ, तुम्हारा साथ मिलेगा तो मुझे अच्छा लगेगा।''

विजया ने दिनेश बाबू को हैरत से देखा। उन्हें हर तरह समझाने की कोशिश की, पर शीघ्र ही उसे समझ में आ गया कि वह पत्थर से सिर फोड़ रही है। उसने उठते हुए कहा, ''अगर आपका मन बदल जाए तो मुझे जरूर बताना। मैं इंतजार करूँगी।''

दिनेश बाबू के जवाब का इंतजार किए बिना विजया वहाँ से चली गई। दिनेश बाबू कुछ समय वहाँ वैसे ही बैठे रहे। उन्हें इस बात का मलाल था कि वे विजया को अपने साथ रहने के लिए नहीं मना पाए। पर उन्हें अपने सिद्धांतों से समझौता करने का कोई ठोस कारण समझ में नहीं आ रहा था। फिर कोई लड़की उनसे अपनी बात सिर्फ इसलिए मनवा ले कि वह उन्हें अच्छी लगने लगी थी, यह उन्हें कतई मंजूर नहीं था।

नाटकों की रिहर्सल के दौरान वे लगभग रोज ही विजया से मिलते। विजया जितना जरूरी होता, उनसे बात करती। वे अपने स्वभाव के अनुसार यह दिखाने की कोशिश करते कि उन्हें किसी की कोई परवाह नहीं है। लेकिन उस दिन जब विजया ने उन्हें भरी आँखों से यह बताया कि उसकी शादी तय हो गई है, तो उनके दिल में कुछ कसक जरूर उठी, पर उन्होंने उसे हँसकर बधाई दी और कहा, ''तुम बुलाओगी तो तुम्हारी शादी में जरूर आऊँगा।'' विजया ने अजीब निगाहों से उन्हें घूरा और फिर सिर झुकाकर तुरंत ही वहाँ से चली गई।

उस दिन के बाद वह उन्हें फिर कभी दिखाई नहीं दी। उनकी नजरें उसे खोजती रहतीं। कुछ दिन बाद उन्हें एक दोस्त से पता चला कि विजया शादी करके किसी दूसरे शहर चली गई है। एक पल को उन्होंने ठगा सा महसूस किया था, पर दूसरे ही क्षण अपने सिर को झटका देकर उन्होंने खुद से कहा, 'वह शादी करके चली गई तो आज मेरी जिंदगी से भी चली गई। मैंने कभी किसी की परवाह नहीं की, फिर विजया की ही क्यों करूँ?'

माँ समझ गई कि वह दिनेश बाबू को शादी के लिए कभी मना नहीं पाएगी। सजला के लिए अच्छा रिश्ता आया तो उन्होंने बिना देर किए उसकी शादी कर दी। शादी के बाद वह जब भी अपने पति के साथ ससुराल से आती तो उसे इस बात का बहुत बुरा लगता कि दिनेश बाबू उसके पति के साथ ज्यादा बातचीत नहीं करते थे और कभी करते भी थे तो उनपर हावी होते या बेवजह नीचा दिखाते। उसका धीरे-धीरे उनके यहाँ आना कम होता गया। माँ और बाबूजी इस बात को लेकर परेशान रहते, पर दिनेश बाबू को इससे क्या फर्क पड़ता।

ऑफिस में भी वे अपने वरिष्ठों से उलझ जाते। उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि कोई भी उनपर हुकुम चलाए। इतने सालों तक वे अपने अच्छे काम की वजह से ही टिके हुए थे। पर जब से सिन्हा साहब उनके बॉस बनकर आए थे, तब से उन्हें परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। सिन्हा साहब उनके व्यवहार को सिर्फ इसलिए नजरअंदाज करने के लिए तैयार नहीं थे कि उनका काम बहुत अच्छा है। उन्होंने दिनेश बाबू से साफ-साफ कह दिया था कि ऑफिस में वही सफल हो सकता है, जिसका काम और व्यवहार दोनों ठीक हों। इनमें से एक भी अगर ठीक न हो तो वह अपने लिए खुद कब्र खोद रहा होता है। दिनेश बाबू ने इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। मन-ही-मन सोचा, यह सिन्हा अपने आपको समझता क्या है, ऐसे लोगों को मैं अपने जूते की

नोक पर रखता आया हूँ।

दोनों के बीच फासले बढ़ते गए और फिर एक दिन दिनेश बाबू को तब जोर का झटका लगा, जब उनके हाथों में ट्रांसफर ऑर्डर थमा दिया गया। उन्हें तुरंत ही दूसरे शहर में रिपोर्ट करने के लिए कहा गया। दिनेश बाबू अंदर तक तिलमिला गए। बीस सालों तक मेहनत से काम करने का यह सिला मिला उन्हें? अगर कोई उनके ऊपर सिर्फ इसलिए हुकूमत चलाना चाहेगा कि वह उसका बॉस है, तो वे इसे कैसे मंजूर कर लेंगे। दूसरे ही दिन उन्होंने वी.आर.एस. के लिए अर्जी दे दी। उनके सहयोगियों ने उन्हें बहुत समझाया, पर वे तो दिनेश बाबू थे, टस-से-मस नहीं हुए।

बीस वर्ष की सेवा पूरी कर लेने के कारण उनकी वी.आर.एस. की अर्जी मंजूर हो गई। उन्हें एकमुश्त पैसा मिल गया, जिसे उन्होंने बैंक में रख दिया, ताकि उसके ब्याज से उनकी जरूरतें पूरी होती रहें। अब वे पूरी तरह से अपना नाटकों का शौक पूरा करने में लग गए।

बाबूजी की मौत को वे आसानी से झेल गए। उनसे उन्हें वैसा लगाव कभी रहा भी नहीं, जैसा बाप-बेटे के बीच होता है। पर उनके जाने के दो साल बाद जब माँ भी चली गई तो उन्हें लगा, जैसे किसी ने माँ को जबरदस्ती उनसे छीन लिया हो।

नाटकों में व्यस्तता के बीच समय कितनी तेजी से गुजर गया, उन्हें पता ही नहीं चला। बढ़ती उम्र का प्रभाव तो था ही, असमय कुछ भी खाने-पीने की वजह से कई बीमारियों ने उन्हें घेर लिया। अब उनमें इतनी शक्ति नहीं बची थी कि वे लगातार नाटकों में भाग ले सकें। इधर उनके साथियों की उम्र भी अब उनका साथ नहीं दे रही थी। धीरे-धीरे उनकी नाटक मंडली बिखरती गई। सभी साथी अपने-अपने रास्ते चले गए और फिर एक दिन उनकी पाली-पोसी संस्था से नाटकों का मंचन बिल्कुल बंद हो गया और खुले आसमान में उड़नेवाला पंछी घर के पिंजरे में कैद होकर रह गया।

बीमारी के कारण मजबूरी में ही उनका बाहर निकलना होता। नाटक के किसी साथी का कभी कोई फोन आ जाता या फिर कोई साथी भूला-भटका घर चला आता तो उन्हें बहुत अच्छा लगता, उसके आने से उन्हें एक सुकून सा मिलता। फिर धीरे-धीरे यह सिलसिला भी खत्म होता चला गया। बहुत जरूरी होने पर ही वे किसी को फोन करते और उनके पास भी गाहे-बगाहे ही कोई फोन आता। नाटक-मंडली के बिखर जाने के बाद तो उनके मोबाइल फोन ने बजना लगभग बंद ही कर दिया था। खीजकर उन्होंने उसे उठाकर रख दिया। हाँ, वे टी.वी. लगातार चलाकर रखते, क्योंकि इससे उनका मन लगा रहता और घर का सूनापन नहीं अखरता था।

बढ़ती उम्र और बीमारियों की वजह से उन्हें चलने-फिरने में परेशानी महसूस होने लगी थी। इस वजह से खाना खाने के लिए कहीं दूर जाने की हिम्मत नहीं होती थी। घर के आस-पास कोई ऐसी जगह नहीं थी, जहाँ ठीक-ठाक खाना मिलता हो। बहुत कोशिश की कि कोई खाना बनानेवाला मिल जाए, पर उनका स्वभाव पड़ोसियों और आस-पास के लोगों के बीच इतना कुख्यात था कि किसी ने भी इसमें मदद करने की कोशिश नहीं की। किसी से भी हार न माननेवाले दिनेश बाबू ने अब खुद ही घर में खाना बनाना शुरू कर दिया। खाना जैसा भी बनता हो, पर इससे उनका कुछ समय अवश्य कट जाता।

समय-असमय बिजली का चला जाना कोई असामान्य बात नहीं थी। लेकिन उस दिन सुबह से ही बिजली गायब थी। न तो वे कुछ पढ़ पा रहे थे और न ही टी.वी. देख पा रहे थे। टी.वी. चलता था तो उन्हें ऐसा लगता, जैसे वे अकेले नहीं हैं। पर घंटों से टी.वी. न चल पाने के कारण उनमें अकेलापन घर करने लगा और घबराहट भरने लगी थी। किसी से बात करने के लिए उनका मन तड़पने लगा। कोई तो हो, जिससे वे बात कर लें। उनकी घबराहट इस सीमा तक बढ़ गई कि वे घर से बाहर निकलकर खड़े हो गए। अँधेरे की वजह से गली में इक्का-दुक्का लोग ही आ-जा रहे थे। उन्हें उनके चेहरे दिखाई नहीं दे रहे थे। थोड़ी ही देर में थकान होने लगी और वे वहीं पड़े एक बड़े से पत्थर पर बैठ गए। घबराहट थोड़ी कम हुई तो सोचने लगे कि आदमी खुद से बातें करके क्यों नहीं जी सकता। क्यों किसी से बात किए बिना उसके अंदर एक बेचैनी भरने लगती है?

वे खुद को समझा नहीं पा रहे थे। तभी पास से गुजरती एक परछाईं से उन्होंने पूछ लिया, ''कब आएगी बिजली?''

''मुझे क्या मालूम?'' यह संक्षिप्त सा जवाब देकर वह काला साया तेजी से आगे बढ़ गया था।

वे खिसियाए से उठे और घर के अंदर चले गए। उनकी मन:स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे मोमबत्तियाँ ढूँढ़कर जला लें। वे अँधेरे में टटोलते हुए अपने पलंग तक पहुँचे और निढ़ाल से पड़ गए। उन्हें लग रहा था, कोई अनजान व्यक्ति ही घर में घुस आए और उनसे थोड़ी देर बात कर ले, नहीं तो उनका दम घुट जाएगा।

घबराहट में वे उठकर बैठ गए। अँधेरे में उनकी आँखों के सामने कुछ अक्स उभरने लगे। उन्हें लगा, जैसे अँधेरी दीवार को चीरकर माँ-बाबूजी उनके पास आ खड़े हुए हों और उनके सिर पर प्यार से हाथ रख दिया हो। उनके भीतर न जाने कौन सा बादल उमड़ने लगा। वह बादल आँखों के रास्ते बरसने को ही था कि उन्होंने देखा, उस अँधेरी दीवार से निकलकर एक और साया उनकी तरफ तेजी से बढ़ा चला आ रहा है। उन्होंने तुरंत उसे पहचान लिया, वह विजया ही थी। वे भावावेश में उठ खड़े हुए। उसे अब वे किसी भी कीमत पर जाने नहीं देंगे। उसे बाँहों में समेटने के लिए उन्होंने अपने काँपते हाथ उसकी तरफ बढ़ाए ही थे कि कमरा रोशनी से भर गया। बिजली आ गई, परछाइयाँ न जाने कहाँ खो गई थीं। उनकी बाँहें अभी भी फैली हुई थीं और वे अवाक् से रोशनी में नहाई उस दीवार को घूरे जा रहे थे।

सा.अ.

४०२, श्रीराम निवास
पेस्तम सागर रोड नं.३
चेंबूर, मुंबई-४०००८९
दूरभाष : ९८३३४४३२७४

प्रयाग से रामेश्वरम्

• शिवमूर्ति सिंह

वाल्मीकि रामायण के कतिपय विलक्षण प्रसंगों में राम द्वारा अगाध-असीम महासागर पर सुदृढ़ सेतु का निर्माण और अपने आराध्य भगवान् शिव के रामेश्वर स्वरूप की स्थापना उनके अद्‌भुत पराक्रम का परिचायक होने के नाते मुझे सदैव आश्चर्यचकित करते रहे हैं। युवावस्था से ही उस विशाल सेतु-बंध, जिसका अधिकांश भाग काल के प्रवाह में टूटकर सिंधु-गर्भ में समा चुका है, को देखने और रामेश्वरम् भगवान् शंकर के प्रयाग की त्रिवेणी के जल से अभिषेक करने की प्रबल इच्छा थी, साथ ही दक्षिण भारत के अन्य प्रसिद्ध तीर्थों व विशाल मंदिरों के वास्तुशिल्प को देखने की भी। मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हुई २०१५ के अक्तूबर महीने के प्रथम सप्ताह में। सहयात्री थे अवधी के श्रेष्ठ गीत कवि मित्र श्री रामलखन शुक्ल और गीतकार भाई प्रद्युम्न नाथ तिवारी 'करुणेश'। 'करुणेश' के कारण यात्रावधि छोटी करनी पड़ी, मात्र ८ दिनों में जाना और दर्शन करके वापस लौटना, क्योंकि उनका आवास (महादेवीजी द्वारा स्थापित साहित्यकार संसद् भवन) श्मशान से लगा हुआ और कलयुगी राक्षसों से घिरा हुआ है। उसे लंबे समय तक पत्नी के भरोसे छोड़ना खतरे से खाली नहीं है।

२९-३० सितंबर को रात २ बजे हम लोग एर्नाकुलम एक्सप्रेस में बैठे। लगभग ३३ घंटों की लंबी यात्रा के बाद पहला पड़ाव तिरुपति में था, जहाँ हम लोग पहली अक्तूबर को प्रातः ११ बजे पहुँच गए। अभीष्ट था तिरुपति बालाजी का दर्शन। जीवन में प्रथम बार ऐसा होनेवाला था कि भगवान् के दर्शनार्थ टिकट लेना पड़ रहा हो, किंतु ऐसा हो नहीं पाया। ज्ञात हुआ कि दो अक्तूबर तक के टिकट बिक चुके हैं। टिकट काउंटर पर ही टिकट-विक्रेता ने मुझे दर्शन का विकल्प सुझाया। वहीं यह भी पता चला कि मुफ्त दर्शनवालों को पंक्तिबद्ध होकर मंदिर-द्वार तक पहुँचने में १०-१२ घंटे लग जाते हैं। भगवान् का यह स्वर्ण मंदिर पर्वत पर स्थित है—यह जानकर मन प्रसन्न हो गया। वन-पर्वत, पर्वतीय झरने, नदी, समुद्र सदा से ही मेरे आकर्षण का केंद्र रहे हैं। जब भी अवसर मिला है, इन्हें देखने, इनकी प्राकृतिक सुषमा को अनिमेष निहारने का लोभ-सँवरण मुझसे कभी न हो सका है।

उत्तराखंड के वनों और पर्वतों की शोभा का क्या कहना! देखो, देखते ही रह जाओ, घूमना शुरू करो, घूमते रह जाओ। न शरीर थकता है, न ही आँखें तृप्त होती हैं। और मन, यह तो मंत्रमुग्ध सा झूमने लगता है। प्रकृति ने जो अकूत वैभव अपने प्रिय कवि सुमित्रानंदन पंत की जन्म-स्थली कौसानी की सघन श्याम वनराजि को प्रदान किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वर्ष १९७० की एक घटना आज तक स्मृति में बनी हुई

सुपरिचित साहित्यकार। अब तक दो कथा-संग्रह, तीन गीत-नवगीत-संग्रह, दोहा-संग्रह, कविता-संग्रह, नाटक, एक भोजपुरी कविताओं का संग्रह आदि प्रकाशित। 'राष्ट्रभाषा-गौरव', 'साहित्य-शिरोमणि', 'साहित्य-भारती', 'साहित्य-प्रवीण', 'साहित्य शिखर सम्मान' सहित दर्जनों सम्मान व पुरस्कार।

है, तनिक धूमिल नहीं हुई। मैं अपनी ऑडिट-टीम के साथ अल्मोड़ा के एक होटल में चाय पी रहा था। वहीं लखनऊ के तीन कवि-मित्र मिल गए, जो आकाशवाणी लखनऊ द्वारा आयोजित एक कवि-सम्मेलन में भाग लेने कौसानी जा रहे थे। उन्होंने मुझसे कौसानी चलने का आग्रह किया, मैं टाल नहीं पाया। ऑडिट अफसर को सूचित कर उनके साथ पहुँच गया कौसानी, कोसी के तटवर्ती अनार और बुरूँश के रक्त पुष्प लदे वृक्षों को निहारते हुए। बस को छोड़ पैदल जाते समय एक अंग्रेज दंपती मिल गए, दोनों हिंदी नहीं जानते थे, अंग्रेजी का सहारा लेना पड़ा। पति कौसानी के उत्तरी पार्श्व में स्थिति सघन देवदार वनों की ओर उँगली के संकेत से बताने लगा कि उसने विश्व के लगभग हर देश के प्राकृतिक स्थलों को देखा है, किंतु वनों-पर्वतों का ऐसा नयनाभिराम वैभव किसी भी देश को सुलभ नहीं है।

तिरुपति बालाजी के दर्शन के लिए हम लोगों के पास मात्र दो अक्तूबर का दिन था। अगले दिन चैन्नई और वहाँ से कन्याकुमारी पहुँचना था। दर्शन की कोई युक्ति समझ में नहीं आ रही थी, क्योंकि टिकट नहीं प्राप्त हो पाया था। असमंजस की स्थिति में मन में उधेड़बुन चल रही थी, तभी कौंध गई अंधे कवि मिल्टन की पंक्ति—'They also serve who only stand wait. मैंने मंदिर के द्वार पर जाकर मत्था टेककर वापस आने का प्रस्ताव रखा, इसे सभी ने स्वीकार लिया।

मंदिर पहाड़ पर है, सुनते ही बाँछें खिल गईं। सोचा, अधिक-से-अधिक आध-पौने घंटे मे पहुँच जाएँगे। मंदिर न्यास की बस में बैठे। बस ने ज्यों ही पहाड़ चढ़ना शुरू किया, लगा जैसे मसूरी या नैनीताल जा रहे हैं। वैसी ही साफ-सुथरी बलखाती सर्पिल सड़कें, वैसे ही रस्सीनुमा मोड़, जगह-जगह सावधानी के संकेत। हाँ, यहाँ के पार्श्ववर्ती वनों में उत्तरांचल के वनों जैसी सघन हरीतिमा नहीं थी, न ही चीड़, देवदार, बाँस जैसे लंबे-चिकने वृक्ष थे। यहाँ के लोगों में कुमाऊँनी-गढ़वाली लोगों जैसी देवदारीय ऋजुता या सरलता भी नहीं थी। उनकी कन्नड़ तो जैसे कोंचती थी। किसी भी चीज के बारे में जानने की उत्कंठा को दबा लेना पड़ता था। संवाद का संकट था। कभी तो ऐसा लगता कि जैसे हिंदी

समझते हुए भी यहाँ के लोग कुछ बताना नहीं चाहते थे।

तिरुपतिमाला (शहर) से तिरुपति बालाजी (मंदिर) की दो घंटे की यात्रा बड़ी सुखद रही। बस के साथ मेरा मन भी पहाड़ चढ़ रहा था। बादल घिर आए थे। कुछ घाटी में टहल रहे थे, कुछ हमारे साथ चल रहे थे। जगह-जगह सर्पिल मोड़। आँतें कभी दाएँ, कभी बाएँ चक्राकार घूम रही थीं। अंततः हम लोग पहुँच गए दुनिया के सबसे धनी मंदिर के परिक्षेत्र में। पहाड़ को डायनामाइट से तोड़कर इतनी अधिक भूमि हासिल कर ली गई थी कि वहाँ पर एक छोटा सा नगर ही बस गया था, जहाँ पैसा फेंको, हर तरह की सुविधा प्राप्त कर लो। सफाई व्यवस्था ऐसी चुस्त कि कहीं कोई दोना या कागज का टुकड़ा गिराने पर सफाई कर्मचारी उसे तुरंत उठाकर अपने कंधे में लटक रहे कनस्तर में डाल लेते।

मंदिर के विस्तृत परिक्षेत्र में हम लोग लगभग आधे घंटे तक भटकते रहे, किसी ने मंदिर का सही रास्ता नहीं बताया। जहाँ देखो, दर्शनार्थियों की पंक्ति, किंतु मंदिर किस दिशा में है, उनमें से किसी को भी पता नहीं था। अंत में किराए की एक जीप लेनी पड़ी। ड्राइवर ने १० मिनट में मंदिर की देहरी के निकट पहुँचा दिया। हम लोग मत्था टेककर बस स्टॉप लौट रहे थे। देखा, निःशुल्क दर्शनार्थियों की लंबी कतारें। धुर देहात से गठरियाँ व कंधे पर बच्चे लादे स्त्री-पुरुषों की भीड़। क्षण भर के लिए मन में भाव आया कि हाड़तोड़ मेहनत से अर्जित अपने खून-पसीने की कमाई से कुछ-न-कुछ चढ़ावा अपने इस सोने के भगवान् को अर्पित करने की लालसा लिये इन गरीबों पर भी यदि भगवान् की थोड़ी कृपा बरस जाती तो इनकी गरीबी दूर हो जाती और किसान आत्महत्या करने को विवश न होते।

पहली अक्तूबर की रात तिरुपति के एक होटल में बिताने के बाद हम लोग बस द्वारा चैन्नई के लिए चल पड़े। बादल घिरे थे, रुक-रुककर हलकी बूँदाबाँदी भी हो जाती थी, हवा नम थी। मध्य प्रदेश या महाराष्ट्र वाली उमस के विपरीत यहाँ का मौसम सुहाना था। सड़क के पश्चिमी ओर लगभग दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर पर्वत-शृंखला ने जो हरियाली से ढकी थी, आँखों को सुखद अनुभूति दे रही थी। सड़क के दाएँ-बाएँ खेतों में धान की रोपाई हो रही थी, कहीं-कहीं हल चलाकर रोपाई के लिए खेत तैयार किए जा रहे थे। जैसे-जैसे चैन्नई पास आ रहा था, धान के खेतों का स्थान नारियल व केले के विस्तृत बाग लेते जा रहे थे। नारिकेल व कदली के कुंजों से छनकर आनेवाली ठंडी हवा स्पर्श-सुख प्रदान कर रही थी। चैन्नई में ही सहयात्री शुक्लजी के समधी का बेटा, जो इंजीनियर था, ड्यूटी छोड़कर हम लोगों को लेने के लिए बस अड्डे पर हाजिर था। लगभग तीन दिनों के बाद उसके यहाँ घर के भोजन का स्वाद मिला, मन प्रसन्न हो गया। इंजीनियर के एक वर्ष के बेटे ने अपनी बाल-क्रीड़ा से ट्रेन-बस की यात्रा की सारी थकान ही दूर कर दी। भोजन करते समय घुटुरूवन आकर उसका मेरी थाली के पास बैठना, रोटी का टुकड़ा मुँह में लिये हुए माँ के पास रसोई में भागना, वहाँ से किवाड़ पकड़कर खड़े-खड़े लड़खड़ाते हुए पुनः मेरे पीछे जाकर कुरते की कॉलर पकड़कर झकझोरने लगना, भोजन के बाद अपनी टॉय मोटरसाइकिल लिए हुए मुझे चाभी भरने को देना, दौड़ती मोटरसाइकिल देखकर खिलखिलाकर हँसना, आज तक उसकी स्मृतियाँ मानसपटल पर अंकित हैं। शैशव भी कितना अलमस्त होता है, वह सिर्फ प्यार का भूखा होता है। अपनी गीत-पंक्तियाँ, 'जिसने प्यार परोसा, ये उसके हो जाते हैं/ जिसने आँख दिखाई, उससे आँख चुराते हैं/ तन चंदन, मन चंदन, गंध-पिटारे लगते हैं/ बच्चे मन के सच्चे कितने प्यारे लगते हैं'—सहसा कौंध जाती हैं।

चैन्नई से कन्याकुमारी, वहाँ से मदुरई, मदुरई में मीनाक्षी देवी के दर्शन के बाद सीधे अपने असली गंतव्य रामेश्वरम् जाना था, जहाँ भगवान् शिव के जलाभिषेक के लिए हम लोगों ने २८ सितंबर को ही तीर्थराज प्रयाग की पावन त्रिवेणी का जल सहेजकर झोले में रख लिया था। दो अक्तूबर को शाम ५ बजे प्रारंभ हुई ट्रेन द्वारा कन्याकुमारी की यात्रा। यात्रा रात की थी। शाम से ही मन ऊब रहा था। यदा-कदा जब ऐसी उदासी घेरती है तो मैं कभी शुक्लजी से तो कभी करुणेश से गीत सुनाने का आग्रह करता हूँ। दोनों के स्वरों में माधुर्य है। करुणेश गीत सुनाने लगे, अगल-बगल व ऊपर की बर्थ से लोग आकर नीचे बैठ गए। गीत समाप्त होने पर कई लोग गीत-संग्रह मोल ले लेते हैं। करुणेश अपने गीतों के कई संग्रह बैग में रखकर चलते हैं।

रात के नौ बज रहे थे। बेयरा खाने की तीन थालियाँ रखकर चला गया। शुक्लजी ट्रेन का भोजन नहीं लेते, फल-फूल खाकर सफर काट लेते हैं। उनके हिस्से की थाली भी करुणेश की भूख को तृप्त करने के लिए अपर्याप्त थी। मैंने प्लास्टिक की थाली में रखी तीन रजतवर्णी प्लेटों का आवरण हटाया। एक में चार निवालों के दो कृशकाय पराँठे, दूसरी में चार निवाले भर चावल और तीसरी में सात-आठ चम्मच भर दाल। मुश्किल से दस रुपए का भोजन और देने पड़े चालीस रुपए। मैंने रेल मंत्री को दिल से धन्यवाद दिया। आखिर ठेके पर भोजन-आपूर्ति करनेवालों से इससे ज्यादा क्या उम्मीद की जा सकती है? वे यात्री को चालीस का भोजन उपलब्ध कराएँगे तो मंत्रीजी को क्या देंगे? खाना खाने के बाद खुद को नींद के हवाले करना था। बाहर हलकी बूँदाबाँदी हो रही थी, हवा नम थी, इसलिए नींद जल्दी आ गई। मुश्किल से दो घंटे सोये होंगे कि खुली खिड़की से आ रही बौछारों ने नींद में खलल डाल दिया। नींद उचटी तो घंटों नहीं लगी। मन में देश का दक्षिणी सीमांत और सीमांत पर तीन सागरों का संगम लहराने लगा। इस संगम-तट पर बसी प्राचीनतम नगरी (कन्याकुमारी) के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होने जा रहा था, जिसके बारे में पौराणिक मान्यता है कि इसी सागर-तट पर पराशक्ति ने कन्या-वेश में तपस्या की थी, इसीलिए कालांतर में इसका नाम कन्याकुमारी पड़ गया।

इस पराशक्ति का माहात्म्य ही नरेंद्र (विवेकानंद) को कोलकाता से इतनी दूर खींच लाया। कहते हैं कि नरेंद्र लगभग दो किलोमीटर तक तैरकर एक विशाल चट्टान तक आए और यहीं पर तीन दिनों तक निराहार रहकर तपस्या की। उन्हें इसी स्थल पर देवी का साक्षात्कार हुआ।

उसी चट्टान पर विवेकानंदजी की विशाल प्रतिमा है, जिसे रामकृष्ण मिशन और विश्व हिंदू परिषद् के सौजन्य से एक मंदिर का स्वरूप दे दिया गया। मंदिर के तीन तल हैं—ऊपरी तल पर विवेकानंद की विशाल प्रस्तर-प्रतिमा है, मध्य तल पर देवी कन्याकुमारी के उभरे हुए युगल चरण-चिह्न हैं और निम्न तल पर आराधना कक्ष है, जिसकी उत्तरी दीवार पर रुपहले वर्ण में 'ऊँ' उत्कीर्णित है, जिससे निरंतर ओंकार-ध्वनि निकलती रहती है। यहाँ अद्‌भुत शांति का साम्राज्य है। थोड़ी देर बैठकर ध्यानपूर्वक 'ऊँ' जाप करने से मन पवित्र हो गया। उठने की इच्छा ही नहीं हो रही थी, जैसे उतनी देर के लिए मैं निर्वेद की स्थिति में पहुँच गया।

विवेकानंद-स्मारक से लगभग सौ मीटर की दूरी पर एक दूसरे शिलाखंड पर तमिल के सुविख्यात भक्तकवि तिरुवल्लुवर की ३० फीट ऊँची प्रस्तर-प्रतिमा है। यदि इस भक्तकवि के हाथ में पुस्तक की जगह तलवार होती तो दर्शक इसे शिवाजी कहने की भूल कर बैठते। एक के अनंतर एक हहराती-गरजती सिंधु लहरों का इन चट्टानों से निरंतर जूझना, टकराना और टूटना, किंतु उनपर अपने संघर्ष का अमिट लेख लिखते जाना, जीवन से थके-हारे आदमी के लिए उत्साहवर्धक संदेश है।

जनश्रुति है कि कन्याकुमारी में ही देवी कन्याकुमारी ने त्रिलोकजयी बाणासुर का वध किया था। बाण-तीर्थ इसका प्रमाण है। मंदिर से प्राप्त पुस्तिका में एक जगह उल्लेख है कि परशुरामजी ने यहीं पर सर्वप्रथम 'कन्या का आलय' नाम से देवी कन्याकुमारी को प्रतिष्ठापित किया था। कालांतर में किसी राजा ने यहीं पर भव्य मंदिर बनवा दिया।

दोनों स्मारकों को देखते, घूमते-टहलते, शंख-सीपियाँ बटोरते दिन ढलने को आ गया। तभी एक विशाल रेला भागता-पराता सागर-तट पर जमा हो गया, दिन भर जलते-तपते सूरज को अरब सागर में डुबकी लगाते देखने (सूर्यास्त-दर्शन) के लिए। थोड़ी देर तक बादलों में लुका-छिपी करता हुआ सूरज अंततः प्रगट हो जाता है और हम लोग ताँबई क्षितिज पर टँगे उस अग्नि-गोलक को जल-समाधि लेते हुए देखने में सफल हो जाते हैं।

आज का दिन सार्थक रहा, सोचकर संतोष हुआ।

होटल में रात्रि-विश्राम। सुबह 'हिंदू' अखबार में प्रथम पृष्ठ पर ही एक बड़ी खबर—'व्यापारी ने साढ़े तीन करोड़ का सोना तिरुपति भगवान् के पद-पाद में अर्पित किया।' सोचा, सोने के भगवान् की स्वर्ण-संपदा में थोड़ी और वृद्धि हो गई। प्रथम पृष्ठ पर ही एक और बड़ी खबर, 'आंध्र प्रदेश में भीषण बाढ़ से ६५ लोगों की मृत्यु और हजारों गाँव जलमग्न, लाखों लोग बेघर-बार।' प्रदेश के एक भाग में स्वर्ण-वृष्टि और दूसरे में प्रलयंकारी जल-उपल-वृष्टि—लाखों लोगों के आवास और फसलों को मटियामेट करनेवाली। काश! व्यंकटेश भगवान् के स्वर्ण-भंडार की निरंतर श्री-वृद्धि करनेवाले धन-कुबेरों के धन का शतांश भी इन बाढ़-पीड़ितों की सहायता में खर्च हो पाता! यदि ऐसा होता तो आंध्र और कर्नाटक के लाखों किसान आत्महत्या करने को विवश न होते, न ही गरीब वनवासी नक्सलपंथ अपनाने को।

अखबार अभी हाथ में ही था कि करुणेश ने हाँका लगाया—'जल्दी कीजिए, सूर्योदय होने में ज्यादा विलंब नहीं है। देर होगी तो सूर्योदय नहीं देख पाएँगे।' तुरंत होटल से निकल पड़े, बाहर देखा, लोग बेतहाशा समुद्र की ओर भागे जा रहे हैं। वहाँ पहुँचते-पहुँचते तट पर एक विशाल मेला जुट गया था। कॉफी, नाश्ते, खिलौने, गुब्बारे, शंख-सीपी, असली-नकली मोतियों की मालाएँ—सबकुछ उपलब्ध था उस मेले में। जगह-जगह कैमरे साधे हुए लोग; सभी की निगाहें विवेकानंद और तिरुवल्लुवर स्मारकों के मध्यभाग में, जहाँ जल से प्रगट होना था उस आलोक-मधुर बालारुण को। किंतु अरब सागर की ओर से बादलों का एक बड़ा टुकड़ा आकर वहीं ठहर गया। पूर्वी क्षितिज की अरुणिमा श्याम हो गई और इसी के साथ सूर्योदय-दर्शनार्थियों की उम्मीदें भी धुँधला गईं। बीच-बीच में एक काले विशाल घनखंड के पीछे से झाँकने का यत्न करती किरणें अपने अस्तित्व का बोध तो कराती हैं, किंतु उम्मीदों की धुंध हटाने में सफल नहीं हो पातीं। हजारों निगाहें जिसकी प्रतीक्षा कर रही थीं, वह अंततः प्रगट तो हुआ, किंतु जल से नहीं, बादल से, स्वर्णाभा के साथ नहीं रजताभा के साथ; समय से नहीं, समय के आधे घंटे बाद।

हम लोग सिंधु-तट से होटल आए। बिखरे हुए सामान अटैची व बैग के हवाले कर नटराज टूरिस्ट सेंटर पहुँचे, जहाँ एक दिन पूर्व, यानी कल ही मदुरई चलने की बात तय हो गई थी। अब बस-यात्रा दो चरणों में पूरी करनी थी, कन्याकुमारी से मदुरई और वहाँ से रामेश्वरम्। बस वाले ने पूरे पैसे जमा करा लिये थे। इसलिए उसपर कोई दबाव भी नहीं बना पा रहे थे। सुबह आठ बजे छूटनेवाली बस ग्यारह बजे छूटी। मदुराई पहुँचते-पहुँचते रात के आठ बज गए। मदुरई में बसवाले ने मीनाक्षी मंदिर के पास ही ठहरने की व्यवस्था कर दी। जल्दी ही दर्शन कर लेना था और क्योंकि मंदिर का कपाट नौ बजे तक बंद हो जाता है। हाथ-पाँव धोए और कपड़े बदलकर भागे। लगभग दौड़ते हुए मंदिर पहुँचे। मंदिर के चतुर्दिक् १५ फीट ऊँची सुरक्षा प्राचीर, चारों दिशाओं में एक-एक विशाल द्वार। एक द्वार से भीतर गए, लगभग २०० श्रद्धालु पहले से ही पंक्तिबद्ध खड़े थे। हम तीनों भी पंक्ति में लग गए। लगभग आधे घंटे बाद देवी-दर्शन का सौभाग्य मिला। इस आधे घंटे में मंदिर के

अंतर्प्राचीरों पर स्थापित नारी व पुरुष-प्रतिमाओं का जो शिल्प-सौंदर्य देखा तो देखते ही रह गए। पुरुष-मूर्तियों की सुगठित देह, स्फीत वक्ष, सुदृढ़ संतुलित भुजाएँ, भुजाओं पर मांसपेशियों का उभार, पुष्ट स्कंध—सबकुछ अद्‌भुत! नारी-प्रतिमाएँ तो और भी सुंदर; देखकर आँखें ठगी रह गईं। बहुत पहले पढ़ी गई विदेशी लेखिका स्ट्रेला कैमरिश की पुस्तक 'इंडियन आर्ट' का सहसा स्मरण हो आया। पुस्तक के आरंभ में ही एक घटना का उल्लेख है। एलोरा के शिव-मंदिर के शिल्प-सौंदर्य पर स्वयं उसका मूर्तिकार इतना मुग्ध हो गया कि उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि इसे उसने बनाया है। एकदम ठगा-ठगा-सा, घंटों निहारता रहा। अंतत: इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि इसे उसने नहीं, किसी और ने बनाया है। वस्तुत: ऐसा देखा गया है कि विलक्षण कलाकृतियों की रचना किसी कलाकार की व्यक्ति-सत्ता द्वारा संभव ही नहीं है। उत्कृष्ट सृजनकर्म मन की नितांत निर्वैयक्तिक अवस्था में ही संभव है और यह उस मनोदशा में संपन्न होता है तो अहंकार के पूर्व की स्थिति होती है। यहाँ 'स्व' तिरोभूत हो जाता है। ऐसी ही भाव-दशा में ऋषि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की होगी। एक आखेटक द्वारा रति-क्रीड़ारत क्रौंच का वध होता है। ऋषि का मन इतना विषण्ण, शोकाभिभूत हो जाता है कि वह अपनी व्यक्तिसत्ता भूल जाता है, बुद्धि का चैतन्यमय स्तर जाग्रत् हो जाता है और हृदयोच्छ्वास स्वत: शाप के रूप में फूट पड़ता है श्लोक बनकर—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वामगम: शाश्वती समा: ।
यत्क्रौंच मिथुनादेकं वधी: काममोहितम ॥

अब सामने था यात्रा का अंतिम चरण। मदुरई से रामेश्वरम्—तीन समुद्रों की संगम-स्थली। मन के भीतर असीम सागर हिलोरें लेने लगा, साथ ही यह प्रश्न भी उठने लगा कि हहराती-गरजती, व्यालों सी फन फैलाए, फेन उगलती उत्ताल लहरों पर राम ने कैसे किया होगा ऐसे सुदृढ़ सेतु का निर्माण? क्या महासागर के अनंत विस्तार और अगाध जलराशि को देखकर उनका मन तनिक भी विचलित न हुआ होगा? कार्य दुष्कर था, किंतु राम जैसे कर्मयोगी पुरुषार्थी के लिए असंभव नहीं था। राम केवल पराक्रमी ही नहीं थे, वे राजनीति के भी पंडित थे। वे सुग्रीव और हनुमान से नहीं, शत्रु के भाई विभीषण से मंत्रणा करते हैं। उसकी राय मानकर समुद्र से रास्ता देने की प्रार्थना करते हैं, किंतु अहंकारी समुद्र प्रार्थना ठुकरा देता है। रक्तांत लोचन राम को तेवर तिरछा करना पड़ता है—'अद्य त्वां शोषयिष्यामि सपातालं महार्णव।' नीतिज्ञ राम भलीभाँति जानते हैं कि साम द्वारा इस लोक में न तो कीर्ति प्राप्त होती है और न ही युद्ध में विजय। वे अग्नि बाण का संधान करते हैं। अहंकार पुरुषार्थ के समक्ष स्वर्ण-थाल में मणियों और रत्नों के साथ नतशीश होकर उपस्थित हो जाता है। राम जानते हैं कि सेतु-निर्माण जैसा महान् कार्य प्रारंभ करने के पूर्व भगवान् शंकर की कृपा परमावश्यक है, क्योंकि जिस रावण के वध का उन्होंने संकल्प लिया है, वह भी उन्हीं का भक्त है। रावण को अपनी शक्ति का ही नहीं, अपनी भक्ति का भी अहंकार है। वह जब अपने आराध्य भगवान् शंकर को शीश काट-काटकर चढ़ाता था, उसके मुख पर दर्प मिश्रित अहंकार स्पष्ट दिखाई देता था। राम विनयावनत होकर हृदय की संपूर्ण श्रद्धा से पहले शिवलिंग की स्थापना करते हैं, तदनंतर प्रारंभ करते हैं सेतु-निर्माण-कार्य।

□

बस रामेश्वरम् मंदिर की ओर द्रुत गति से भागी जा रही है। चालक बताता है कि सिर्फ आधे घंटे में बस वहाँ पहुँच जाएगी। जिधर दृष्टि जाती है, समुद्र-ही-समुद्र। सड़क के समानांतर रेल-पथ भी हैं, कोई रेलगाड़ी गुजर रही है। ऐसा आभास होता है कि यह छोटी नगरी किसी द्वीप पर बसी है। सड़क के दोनों तरफ मछुवारों की बस्ती है। घर के नाम पर नारियल के पत्तों के झोंपड़े, झोंपड़ों के पास सूखती मछलियों की ढेरी। हवा में मत्स्य-गंध घुल गई है। सभी नाक पर रूमाल बाँध लेते हैं। मछुवारों के अर्धनग्न काले बच्चों की देह पर फटे-चिथड़े देखकर मन भीग जाता है। इन्हीं दरिद्र-नारायणों की दयनीय दशा देखकर स्वामी विवेकानंदजी आवेशित हो गए थे, आवेश में ही बोल पड़े, 'मेरा ऐसे भगवान् से कुछ लेना-देना नहीं, जो भूखे को रोटी और नंगे को वस्त्र नही दे सकता।' इसी तमिलनाडु में कभी लाखों पैरिया आदिवासी धर्म बदलकर हिंदू से ईसाई बन गए थे। ब्राह्मण उनकी छाया के छू जाने पर स्नान करते थे। व्यवस्था का आदेश था कि वे कमर में घंटी बाँधकर तथा पीछे झाड़ू लटकाकर चलें, ताकि उनके अपवित्र पद-चिह्न मिटते जाएँ। इतना ही नहीं, वे मुख्य मार्ग से इतनी दूरी बनाकर चलें कि उनकी छाया तक मार्ग पर न पड़ सके। ब्राह्मणों के कुत्सित आचरण को देखकर स्वामीजी ने क्रोधावेश में यहाँ तक कह दिया कि 'छुआछूत पंथियों के ऐसे घृणित आचरण पर मार झाड़ू, मार लात।' सड़क के पूरब में बनी चर्च देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन गरीब मत्स्यभोजी मछुवारों ने इस घोर अपमान से तंग आकर ही ईसाई धर्म स्वीकार किया होगा।

□

बस जिसे ११ बजे पहुँचना था, पहुँची १२ बजे। मंदिर का कपाट एक बजे बंद हो जाता है। हम लोग सुबह से निराहार थे। प्रयाग का त्रिवेणी-जल रामेश्वर भगवान् शिव को श्रद्धापूर्वक चढ़ाने के बाद ही अन्न-ग्रहण करने का संकल्प लिया था। बस लेट होने से वही मदुरई वाली आपाधापी शुरू हुई। बस-स्टॉप पर मिले पंडा महाराज के निर्देशानुसार हम लोग दौड़ते हुए समुद्र-तट पर आए। मंदिर में प्रवेश-पूर्व समुद्र-स्नान आवश्यक था। धोती-कुरता बस में ही छूट गया। ऐसी धर्मसंकट की स्थिति में हाथ-पाँव धोकर और जल छिड़ककर पवित्र मान लेने के अलावा हम लोगों के पास कोई विकल्प नहीं था। पंडाजी के साथ लगभग दौड़ते हुए मंदिर में आए। प्रवेश करते ही मंदिर-परिक्षेत्र स्थित २४ कुओं के जल से स्नान करना आवश्यक था। इस कार्य के लिए प्रत्येक कुएँ पर एक व्यक्ति तैनात था, जो बाल्टी से जल खींचकर स्नान कराता था। यह औपचारिकता भी पूरी हो गई। तदनंतर साथ चल रहे पंडा ने एक वयोवृद्ध पुजारी को बुलाकर हम लोगों से १५१-१५१ रुपयों का संकल्प कराया। अब शुरू हुआ पंडाजी का मोल-तौल। उनकी अलग से हजार-हजार रुपयों की माँग। अनुमान यही था कि वृद्ध पुजारी को दिए

गए रुपयों में से इन्होंने भी अपना हिस्सा ग्रहण कर लिया होगा, लेकिन नहीं। वे हठ कर बैठे, इधर हम लोग भी और अधिक देने को तैयार नहीं थे। पंडे ने बिना द्रव्य चुकाए जलाभिषेक न करने देने की धमकी दी। करुणेश ने क्रोधावेश में उसे अपशब्द कह दिया। वह मरकहे बैल की तरह भड़क उठा। हम लोग किंकर्तव्यविमूढ़, कोई युक्ति नहीं सूझ रही थी। तभी करुणेश की प्रत्युत्पन्नमति ने हमें उबार लिया। 'आई एम अ पुलिस ऑफिसर!' उनके इस छोटे से झूठ ने पंडा महाराज को सद्‌बुद्धि दे दी और उन्होंने मौन हो जाने में ही भलाई समझी। तो भी अपने हाथ से भगवान् रामेश्वरम् का जलाभिषेक

करने की अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। हम तीनों चार मीटर दूर थे, तभी एक पुजारी ने हमारे हाथ से जल-पात्र लेकर 'शिवलिंग' पर चढ़ा दिया। परंपरा भी यही थी। हम लोग आप्तकाम हुए। मन को तो तुष्टि मिली, किंतु आँखें अपने दक्षिण भारत के अन्यान्य रमणीक स्थलों के दर्शन-सुख से वंचित रह गईं।

डी-११, पी.डब्ल्यू.डी. फ्लैट (पंजाबी कॉलोनी) अलोपी बाग,
इलाहाबाद-२११००६
दूरभाष : ०८८५३९९१२२६

आई बसंत की वेला है

गजल

● वेद मित्र शुक्ल

: एक :

तुलसी का एक चौरा, आँगन को ढूँढ़ता हूँ,
पेड़ों पे झूलोंवाले सावन को ढूँढ़ता हूँ।

शहरों की हो चली है धरती तो आज देखो,
मिट्‌टी से अपनी यारो! बंधन को ढूँढ़ता हूँ।

उलझे हुए हैं धागे अपनों के बीच के ही,
रिश्तों में देखिए मैं निजपन को ढूँढ़ता हूँ।

कागज के फूलोंवाले चेहरों की भीड़ में मैं,
शबनम से भीगी पँखुरी से मन को ढूँढ़ता हूँ।

ये उम्र बीतने को हर लम्हा, हर घड़ी है,
फिर से मैं अपने उस बचपन को ढूँढ़ता हूँ।

: दो :

पहियों पे घूमता है ये शहर तो देखिए,
पीता है यहाँ आदमी जहर तो देखिए।

सड़कें हैं कंक्रीट की पत्थर से राहगीर,
हमने भी क्या चुनी है यह डगर तो देखिए।

उसने लगाए पोस्टर कुछ यों दीवार पे,
उसकी ही बह रही है अब लहर तो देखिए।

गाँवों की ओर आइए अब इक नजर करें,
यह फाइलों में चल रही नहर तो देखिए।

इनसानियत हो या कि हो कुदरत जहान में,
ढाता है सदा आदमी कहर तो देखिए।

: तीन :

कुछ यों कही गजल कि देखो बाँसुरी हुई,
बजने लगी तो मन में मेरे माधुरी हुई।

वो थी तो रातरानी मगर आई जब सुबह,
शबनम से भीग करके एक पँखुरी हुई।

हर शेर इक गजल का है जैसे जुगल किशोर,
कान्हा के होंठ, राधिका की आँगुरी हुई।

उसने कही थी बात सारी दिल से ही मगर,
मालूम नहीं कैसे किसकी वो बुरी हुई।

होती रही यों कोशिशें कि दूर रह सकूँ,
बरबस ही शायरी की मेरी वो धुरी हुई।

: चार :

जीने का बस एक चलन है,
बहती नदियों में जीवन है।

ठहरे पानी की किस्मत में
बदबू, कीचड़ और सड़न है।

कैसी भी बह रही हवा हो,
महकाने को खिला सुमन है।

शाखों पर फूलों संग काँटें,
सुख-दुःख का कैसा यह मिलन है?

साँपों के संग रह करके भी,
चंदन तो रहता चंदन है।

: पाँच :

शाखों ने रंग उड़ेला है,
आई वसंत की वेला है।

लद गए शजर हैं फूलों से,
लग रहा आज ज्यों मेला है।

मौसम जब हुआ सुहाना, तो
रह पाया कौन अकेला है।

खिलते पलाश औ सेमल हैं,
जश्न-ए-बहार अलबेला है।

यारो वसंत की ड्योढ़ी पर
रंगों का उमड़ा रेला है।

फसलें किसान की दमके हैं,
ज्यों छाया रंग सुनहला है।

अंग्रेजी विभाग, राजधानी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-१५
दूरभाष : ९५९९७९८७२७

भारत में इंडिया

● परमात्मा स्वरूप तिवारी

साहब गाँव में आए हैं। साथ में साहबाइन हैं। सन्नी और कूकी भी हैं। सन्नी उनकी लाड़ली बिटिया का नाम है और कूकी साहब के शहजादे का नाम। साहब सूट-बूट में हैं। साहबाइन पैंट-कुरता में शोभायमान हैं। बेटी सन्नी तंग पैंट और खुली बटन की शर्ट में सिर के बाल बनवाकर, जिसे गाँववाले 'बलकटी' कहते हैं। बेटी का यौवन वस्त्र फाड़कर बाहर निकल पड़ने को मचल रहा है। हाँ, कूकी जो कि बेटा है, उसके बाल पीठ पर लहरा रहे हैं। क्लीन सेव है।

गाँववाले इन्हें देखकर निहाल हो रहे हैं। एक-दूसरे से फुस-फुसाकर बता रहे हैं—''आदमी जब खूब पैसा बटोर लेता है। तब पैसा उसकी आत्मा को डस लेता है। वह दुनिया से अपने को भिन्न समझने लगता है। अपना रूप-रंग अपने मन की इच्छा से बदलने लगता है। हम गाँववालों की आँख में चाहे वह जोकर जैसा दिखे, चाहे जानवर जैसा दिखे, पर आम आदमी से विलग दिखना ही उसका बड़प्पन है।''

साहब ने बाई को तलब किया। पंडित को तलब किया। नाई के हाथ में मिठाई के ढेर सारे पैकेट देकर दूर के भूले-बिसरे रिश्तेदारों को अपने आने का संदेश भेजा।

पंडित को मोटी दक्षिणा देकर कहा, ''कूकी अब २२ वर्ष का हो चुका है, इसके लिए एक सुंदर-सुशील, शांतिप्रिय कन्या से वरण करने को इच्छुक हूँ। शहर के बड़े-बड़े रईस अपनी बेटियों के लिए कूकी को पसंद करते हैं, पर मैं गाँव में ही पैदा हुआ था। जब हम जैसे बड़े आदमी गवई-गाँव से संबंध स्थापित करेंगे, तभी गाँव बदलती दुनिया को समझकर तरक्की कर सकेगा।'' साहब की बात को स्पष्ट करते साहबाइन ने कहा, ''कुक्की के लिए हमें लड़कियों की कमी नहीं है, पर शहर की लड़कियाँ उद्दंड होती हैं। हमें गऊ जैसी लड़की चाहिए, जो गाय की तरह जिस खूँटे पर बाँध दें, पड़ी रहे। पगड़ी तोड़ने की जुर्रत न करे। और हाँ, हमारी शान के मुताबित दहेज भी मिले।''

पंडित दक्षिणा लेकर चला गया। इसी बीच साहब की लाडली गुस्से से तमतमाती दाखिल हुई—''पापा! तुम झूठे हो! हम सबको धोखा दिया। कूकी शर्म से रो रहा है।''

''क्या बात हुई?''

साहब-साहबाइन चौंक पड़े!

बेटी ने कहा, ''अनर्थ हो गया! गाँव के लड़के भी अंग्रेजी जान गए हैं, वे कूकी से एकेडमिक क्वालिफिकेशन पूछते हैं।''

बेटी की बात सुनकर साहब ठहाका मारकर हँस पड़े।

''नानसेंस! अकादमिक क्वालिफिकेशन की क्या वैल्यू होती है, मैं जानता हूँ। आज ग्रामीण क्षेत्र के युवक आइ.ए.एस., आई.पी.एस. में टॉप कर रहे हैं, पर इसकी कीमत क्या है? नौकरी! बस नौकरी।

''आज वैल्यू है पैसे की। जिसके घर की दीवारें जितने ऊँचे रकम की हैं। वही सर्वेसर्वा है। मेरी अपनी शिक्षा कितनी थी? मैं तो एक कंस्ट्रक्शन कंपनी में महज एक क्लर्क था, पर अपनी चतुराई से उसी कंपनी का पार्टनर हो उठा। पैसा ज्ञान प्राप्त करने से नहीं बढ़ता। पैसा बढ़ाना है—तिकड़म से! तिकड़म ही 'स्किल' है और आज के युग में पैसा ही महान् है।''

साहबाइन चिंतित स्वर में कहने लगीं, ''तुम्हारा चचेरा भाई, जो स्कूल में फटीचर मास्टर है। उसने अपने लड़के को फौज में मेजर बना दिया। लड़की को डॉक्टर बना रहा है। हमने अपने बच्चों को क्या बनाया?''

साहब ने एक विषैली मुसकान भरते हुए कहा, ''मेजर आतंकियों के हाथों मारा जाएगा। लड़की डॉक्टर बनकर आसमाँ के तारे नहीं तोड़ लेगी! मेरे पास इतना धन है कि बच्चों के लिए चिंता करने की जरूरत नहीं है।''

साहबाइन खामोश तो हो गईं, पर उनके चेहरे पर गहन चिंता की लकीरें उभर उठीं। कुछ देर खामोश रहकर बोलीं, ''गाँव की औरतें ताना कसती हैं कि लड़की तो लड़के से बड़ी है। रीति के अनुसार पहले लड़की की शादी करनी चाहिए।''

साहब ने मुसकराकर पत्नी को घूरते हुए कहा, ''तुम क्लब में जाती हो। पब में जाती हो। मेरी सोच थी कि तुम मॉडर्न हो। अपनी लड़की के चाल-चलन से तुम इतनी बेखबर होगी? यह जानने में मैं असमर्थ रहा। तुम्हारी बेटी भी सोसाइटी गर्ल है। कोठरी साहब से उसका अफेयर चल रहा है।''

साहबाइन गुस्से से काँपती चीख पड़ीं, ''तुम पिता हो कि कोठे के दलाल!''

साहब पर साहबाइन के गुस्से का कोई असर नहीं पड़ा। समझाने के लहजे में कहने लगे—''रिलैक्स, रिलैक्स! बड़े लोगों की सोच आम लोगों से उच्च होती है। राजा-महाराजा अपने राजविस्तार या राज्य सुरक्षा के लिए अपनी बेटियाँ अपने से बड़े राजाओं को स्वयं देते रहे। हमारी बेटी तो हमसे भी ज्यादा बुद्धिमान है। कोठारी साहब करोड़ों नहीं, अरबों

के मालिक हैं। उनके धन के घड़े में सन्नी बड़ी होशियारी से सेंधमारी कर रही है।''

साहबाइन गुस्से से पैर पटकती गरज उठीं—''मैं थूकती हूँ तुम्हारी सोच पर।''

अब साहब भी तैश में आकर गरज उठे—

''पहले अपने पर थूको। पब में जाती हो। क्या-क्या करती हो, पर जबान सती-सावित्री जैसी चला रही हो!''

साहबाइन वहाँ से हट गईं।

''अगले पल बेटी बाप के सामने आकर बोली, ''क्या बात हुई डैड, मम्मी क्यों रो रही हैं?''

साहब ने कहा, ''संवेदनशील मन तनिक आघात से घायल हो उठता है। दुनिया में तरक्की करने के लिए संवेदना, आचार-विचार बाधक होते हैं। बेटी! मैं इन वाहियात विचारों को अपने पास फटकने नहीं देता।''

''यू आर ग्रेट पापा!''

बेटी ने बाप को सराहा।

साहब खुश होकर बोले, ''बेटी! इन तीन दिनों में मैंने घूम-फिरकर यहाँ की लोकेशन देख ली। गाँव के पास से ही हाइवे गुजरता है। पर यहाँ कोई शराब की दुकान नहीं है। मेरा विचार है कि कुक्की की शादी में दहेज के रूप में यहाँ जमीन माँगी जाए। उसी जमीन पर शराब का ठेका बने। लाइसेंस पाना तो हमारे बाएँ हाथ का खेल है। शराब की दुकान खोलने के बाद यहाँ एक होटल खोला जाए, जिसमें शराब और शबाब का पूरा इंतजाम हो। ऐसा करने से हमें दोहरा लाभ होगा। पैसा भी आएगा, साथ-साथ गाँववाले भी एडवांस जिंदगी जीना सीख लेंगे।''

''गुड आइडिया डैड! आज जो मट्ठा पीते हैं, कल जब वे बीयर पीने लगेंगे, तब गाँव में भी मॉडर्न कल्चर उतर आएगा। वैसे बिक जाएगी। बियर के साथ कबाब व चिकन की दुकानें सज जाएँगी। गाँव शहरी कल्चर में बदल जाएगा। ग्रामीण बैकवर्ड से फॉरवर्ड हो जाएँगे।''

बाप-बेटी की बात में विघ्न डालते यकायक पंडितजी आ पहुँचे।

''बगहा के तिवारीजी लड़का देखने आ रहे हैं। वे ऊँचे रसूक और खानदानी रईस हैं। उनकी आव-भगत करने का विशेष ध्यान रखना यजमान।''

पंडित की बात सुनकर साहब फूलकर कुप्पा हो उठे।

'गाँव के रईस बेटी की शादी में सबकुछ लुटा देते हैं।'

ऐसा सोच साहब का मन खुशी से मचल उठा। बेटी यह शुभ समाचार बताने माँ के पास गई। साहब ने टैंट व कुरसी का ऑर्डर देने के साथ हलवाई को पकवान का मीनू थमाया। इसके बाद गाँववालों को निमंत्रित करने स्वयं चल पड़े।

अभी वे पड़ोस के पहले ही घर के चौखट पर पहुँचकर निमंत्रण दिया तो तत्काल जवाब मिला, ''हम तुमसे खान-पान का रिश्ता नहीं रख सकते। हमारी अपनी परंपरा है, आचार-विचार हैं। तुमसे हमारा किसी प्रकार का संबंध नहीं हो सकता है।'' साहब यह सुनकर जल-भुन उठे। पर समय की नजाकत देखकर दूसरे दरवाजे पर माथा टेका। वहाँ इससे भी कटु उत्तर देते गृहलक्ष्मी ने डाँट लगाई—

''पैदा तो तू भी इसी धरती पर ही हुआ था, पर गाँव छोड़ने के बाद बाप की अरथी को कंधा देने की तुझे फुरसत नहीं मिली। तुझ जैसे शराबी-कबाबी के घर पानी कौन पिएगा?'' साहब अपमान से काँपते घर लौटे। तभी खबर मिली कि हलवाई तथा टैंटवालों ने भी यहाँ आने से इनकार कर दिया है।

साहब ने गुस्से से काँपते बोतल उठा ली और आधी बोतल हलक में उतारी, हताश होने पर साहब आदतन गोल बोतल से ही ऊर्जा प्राप्त करते रहे हैं। बोतल का नशा चढ़ा, तब बाहर आकर शेर की तरह दहाड़ने लगे—

''स्सालो! तुम्हारी औकात क्या है?

''हमारी शान-ओ-शौकत देखकर जल रहे हो।''

उधर बाप को बिफरते देख बेटी ने भी बोतल चढ़ा ली। बेटे ने भी हलक तर किया। अब तीनों मिलकर गाँवालों को ऐसी कुत्सित गालियों की तोप दागने लगे कि शर्म भी शर्मिंदा हो उठी। गाँववालों ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उनके लिए यह एक मनोरंजक तमाशा बन गया।

साहब का परिवार उछल-उछलकर हाथ के इशारे गाँव के लोगों की क्या-क्या दुर्गति करेगा, गाँववाले समझ रहे थे।

पैसेवाले बड़े आदमी के स्टॉक में सिर्फ पैसा ही नहीं होता, बल्कि उनके स्टॉक में आम आदमी की दुर्गति कर डालने की गालियों का बेहतरीक स्टॉक भरा रहता है। यद्यपि वे कर तो कुछ नहीं सकते, पर बकते खूब हैं। देर तक यह तमाशा चलता रहा। इसी बीच पंडितजी साहब के सामने प्रकट हुए।

साहब परिवार ने गालियाँ रोककर पूछा, ''तिवारीजी कब पहुँच रहे हैं?''

''वे आए थे, पर आपकी करतूत देखकर उलटे पाँव भाग लिये।''

इतना कहकर पंडितजी ने जेब से रुपया निकालकर साहब के मुँह पर फेंकते हुए कहा, ''तुम जैसी निकृष्ट की दक्षिणा लेकर मुझे नरक में नहीं जाना है।''

साहब को पंडित की बात शूल सी चुभ उठी। वे तड़पकर बोले, ''चलो, निकल भागो इस जहन्नुम से।'' और झटपट उनका परिवार कार में सिमटकर भागने लगा। कार दौड़ रही थी। खेत-अमराइयों, चमकता सूरज, बहती नदियों को लाँघते वे शीघ्र ही अपने उस स्वर्ग में पहुँचने को व्याकुल हो रहे थे, जहाँ धरती नहीं, बंद कमरे होते हैं। दिन में भी सूरज की रोशनी जहाँ नहीं पहुँचती। मध्यम अँधेरे में जहाँ शराब की महक उठती है, जिस्मों का टकराव होता रहता है।

जहाँ दुनिया एक कमरे तक सीमित रहती है।

२३७ शिव मंदिर परिसर,
गली नं. १२, जाफराबाद, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ७२९२०६०६३८

भवाई लोकनाट्य

● बलवंत जानी

हजारों सालों से संरक्षित भारतीय संस्कृति अभी तक अक्षुण्ण-अखंड रही, उसे तोड़नेवाले, नष्ट करनेवालों के कई प्रयासों के बाद भी वह लुप्त नहीं हुई; उसके खिलाफ अपप्रचार करनेवाले विविध कारकों और अभारतीय विचारधारा के बहुविध प्रकार के प्रसार-प्रचार के बाद भी वह अटूट रहकर आज तक प्रवाहित रही, उसके पीछे के कारकों की जाँच अब विश्व के अभ्यासु कर रहे हैं। इन अभ्यासुओं को कला-साहित्य की जाँच के लिए 'कल्चरल स्टडीज' नामक अभिगम उचित लगा है, इसलिए वे इस पद्धति से कला के अध्ययन की ओर अभ्यास करने हेतु प्रेरित हो रहे हैं।

सांस्कृतिक चेतना तो शाश्वत और सनातन है। इस सांस्कृतिक चेतना के अलावा किसी भी राष्ट्र को अखंड बनाए रखनेवाला तत्त्व उसकी संस्कृति है। इन सांस्कृतिक मूल्यों-घटक तत्त्वों से उस राष्ट्र का निर्माण और रचना होती है। ऐसे दर्शन, जीवन-मूल्यों और जीवन-व्यवहार से संस्कृति समाज में जीवंत रहती है। जिसे कलम पकड़ना नहीं आता, पढ़ना भी नहीं आता, ऐसे निरक्षर जनता-समाज भी असंस्कृत अथवा असभ्य नहीं माना जाता है। उन लोगों में भी राष्ट्र के जीवन-मूल्य संरक्षित दिखाई देते हैं, जिसका कारण दर्शन, जीवन-मूल्यों और जीवन व्यवहार से गहन रूप से जुड़ी लोक-संस्कृति तथा भारतीय दर्शन से अनुप्राणित लोककलाएँ हैं। वैदिक संस्कृति में उस समय में शास्त्र, शास्त्रार्थ और अध्ययन की बहुत अधिक महिमा थी। उसके आधार पर संस्कृति का संवर्धन एवं संरक्षण होता था। लेकिन उस समय एक बहुत बड़ा वर्ग शास्त्र या शास्त्रार्थ में रुचि नहीं रखता था या उसके लिए समय नहीं देता था। दूर-दराज के जंगलों, गिरि-कंदराओं अथवा समुद्र के बीच रहनेवाली या ग्रामीण प्रदेश में निवास करनेवाली प्रजा या जिसमें कोई पंडितों का प्रवेश नहीं था अथवा जहाँ प्रजा को उसकी फुरसत या खेवना भी नहीं थी, इन सभी श्रमजीवी प्रजा में भारतीय दर्शन, संस्कृति और जीवन-मूल्यों का संप्रेषण-संरक्षण कैसे हुआ; उसपर विचार करने पर विद्वानों को समझ में आया कि वैदिक काल से ही लोककलाओं ने लोक-संस्कृति भारतीय दर्शन को भारतीय संस्कृति को आत्मसात् करके उसके माध्यम से प्रजा के समक्ष राष्ट्र का दर्शन, राष्ट्र के मूल्य प्रस्तुत किए हैं। प्रजा सहज रूप से उसे सँभालती गई। उसे जीवन व्यवहार में दरशाती गई। ऐसी लोककलाएँ वैदिक काल से चार वेदों के साथ-साथ पाँचवाँ वेद मानी गई हैं।

'नाटक पाँचवाँ वेद' का अर्थ केवल नाटक तक सीमित नहीं है। नाटक मतलब पेशकश, प्रस्तुतीकरण। लोककला देखने की, पेश करने की कला है। लोककलाओं में लोक-संगीत, लोक-नृत्य, लोक-साहित्य और लोकनाट्य समाविष्ट हैं। जो अलिखित है, मौखिक है, पश्चिम के अभ्यासु उसे ओरल आर्ट अथवा फ्लोटिंग आर्ट के नाम से जानते हैं। यह कला समाज के समक्ष कंठस्थ रहकर तैरती रहती है। इस कला के शास्त्र का भी गठन हुआ है। उसे मान्यता भी प्राप्त हुई, लेकिन उसे मुख्य प्रवाह में स्थान नहीं मिल पाया और उसकी बहुत महिमा भी नहीं हुई। इसलिए उसकी पहचान मार्जिनल आर्ट के रूप में होती रही, जो हाशिए में सिमटकर रह गई है। अब कल्चरल स्टडीज करनेवाले अभ्यासुओं को समझ में आया कि यह तो समूहजन्य और समूहभोग्य कला स्वरूप है। कॉम्बिनेटिव और कोलाबरेटिव आर्ट है। उसकी कोई पाठशाला नहीं है। यह अपने आप देखने-जानने से लोक-व्यक्तित्व में से प्रकट और प्रस्तुत होती है। दूसरी बात, यह कला प्रारंभकालीन परंपरा को उजागर करती है, इसलिए वह सही अर्थ में भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन की वाहक है। उसे प्रिमिटिव आर्ट भी माना जाता है। उसमें कुछ भी इंटरपोलेशन नहीं होता। उसके धारकों का अन्य संस्कृति-सभ्यता के साथ संवाद न होने से उसने निजता व अपना सही रूप तीव्रता से बनाए रखा है। उसकी विषय-सामग्री में सांप्रत का जोड़ा जाना हो या भाषाकीय उच्चारण बदले-मुड़े, लेकिन उसका टोन-सुर संपूर्ण रूप से नेटिव रहता है। यह सबसे बड़ी विशेषता लोककला के संदर्भ में समझनी होती है।

फ्रांस के सोरोबोन विश्वविद्यालय पेरिस में जब मैं विजिटर अध्यापक के रूप में था, तब वहाँ के भारतीय लोककला और कंठस्थ परंपरा के भक्ति-साहित्य के विद्वान् प्रो. फ्रांस्वा मालिजो ने मुझसे पूछा था कि 'मुझे एक चीज समझ में नहीं आ रही। गांधीजी तो भारत के कोने-कोने में नहीं गए थे। दूर-सुदूर इलाकों में कंट्रीसाइड में रहते लोगों के पास, जहाँ अखबार, रेडियो और गांधी विचारधारा के प्रचारक नहीं पहुँचे थे, वहाँ समूह माध्यमों की अनुपस्थिति में भी गांधी-विचार, गांधी-दर्शन किस तरह पहुँचे, समझे और स्वीकृत हुए थे?' मैंने उन्हें समझाया था कि गांधीदर्शन अनुप्राणित लोक-साहित्य द्वारा गांधी-भाव विश्व के लोगों तक पहुँचा था। कवि काग ने तो 'मोहनायण' प्रकार के

सुपरिचित लेखक। 'लोकगुर्जरी' लोकसाहित्य का संपादन। लोक-साहित्य पर दस पुस्तकें प्रकाशित। संत साहित्य और मध्यकालीन गुजराती साहित्य विषयक तीस से अधिक पुस्तकें, गुजराती डायस्पोरा और अर्वाचीन गुजराती विषय पर अस्सी पुस्तकें प्रकाशित। गुजरात साहित्य अकादेमी के पुरस्कार और उत्तर प्रदेश के सुहृद पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत। संप्रति गार्डी रिसर्च इंस्टीट्यूट फॉर डायस्पोरा स्टडीज के नियामक।

रामायण परंपरा की लोककथा गीत बैले का गठन किया था और गांधी-संदेश गाँव-गाँव में गूँजने लगा था। लोकसमुदाय में वह लोकनायक के रूप में स्वीकृत हुआ।

लोककलाओं की जड़ें भारतीय भू-भाग में अत्यंत गहरी और मजबूत हैं। वह भले ही अक्षरज्ञान-विहीन समाज के समक्ष उसके प्रतिनिधि द्वारा प्रस्तुत होती हो, प्रदेशभेद-विस्तारभेद के कारण उसमें स्थानीय शब्दावली, सूर-स्वर बदलते हैं; लेकिन उसमें स्थित प्राणतत्त्व तो एक और अभिन्न भारतीय दर्शन है; भारतीय संस्कृति और भारतीय जीवन-मूल्य हैं। ऐसी लोककलाओं का एक उदाहरण है, गुजरात में हजारों सालों से प्रवाहित और प्रचलित लोकनाट्य स्वरूप भवाई। विविध प्रदेशों में, अलग-अलग विस्तारों में भारतीय लोकनाटक विभिन्न नाम से आज भी जीवंत है। वह जीवंत है, इसलिए भारतीय दर्शन और संस्कृति भी जीवंत है। फिर वह तमाशा हो या तैयम, गुजरात में प्रचलित नाम है 'भवाई'।

उसका मंचीय स्थान प्राचीन भारतीय परंपरा का अनुसंधान है। स्टेज की भारतीय दर्शन की परिकल्पना ग्रीस से कितनी अलग है, उसका खयाल भवाई की पेशकश के स्थानक पर से समझ में आती है। गोलाकार में निश्चित स्थान में वह खेली जाती है और आस-पास लोग बैठकर या खड़े-खड़े उसका आनंद लेते हैं। दर्शकों के साथ संवाद भी होता रहता है। उसकी सजावट, स्टेज प्रोपर्टी, वाद्ययंत्र और साजिंदे तथा पोशाक-पहेरवेश और चहेरे पर का मैकअप भी भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित, भूंगल जैसे वाद्य-माइक की भी आवश्यकता नहीं होती। संवाद दोहराए जाते हैं। प्रत्युत्तर में से अधिक स्पष्टता मिलती है। गान के समय लोगों की सहभागिता होती है। वंस मोर, दुबारा और फिर से सुनाने के आदेश होते हैं और कलाकारों व साजिंदों को पुरस्कृत किया जाता है। दर्शकों के साथ सहभागिता हमारी संस्कृति है। 'सहनौभुनक्त' शब्द का सही अर्थ यहाँ प्रकट होता दिखाई देता है।

प्रारंभ में माताजी-श्रीगणेश जैसे भारतीय देवी-देवताओं की वंदना होती है। कलाकार उनका कृपाप्रसाद लोक-समूह के समक्ष स्वीकार करते हैं। इस कारण लोकश्रद्धा की गूँज और दुगुनी होती है। झंडा-झूलण जैसे चरित्र लोगों को अपने से लगते हैं। उनके द्वारा पूछे जाते सवाल भी लोगों को अपने लगते हैं। इन सवालों में भी निहित होते हैं—भारतीय भावदर्शन, संस्कृति और जीवन-मूल्य। उसमें स्थित स्वदेशी संगीत, उसकी लय भी लोगों में प्रचलित लय के रूप में अपने से लगनेवाले होते हैं और पेशकश का ढंग भी प्रादेशिक गीत-लय से आबद्ध होता है।

भवाई भेष एवं लोकनाट्य विषय सामग्री को लोकसमाज में जिस कारण नेतृत्व मिलता है, उस बहादुरी, पराक्रम और राष्ट्र के लिए शहीद होनेवाले सपूतों के आस-पास का होता है। इसमें सत्य का पालन करते समय पुत्र-पत्नी को गौण माननेवाले हरिश्चंद्र होते हैं, पराक्रमी अभिमन्यु और रामचरित्र के उदात्त प्रसंग भी होते हैं।

इस तरह विषय-सामग्री, पेशकश का परिवेश और आहार्य अभिनय अर्थात् पहेरवेश, इन सबमें से प्रकट होते हैं—भारतीय संस्कृति, जीवन-मूल्य और जीवन-दर्शन। भारतीय कला के शास्त्र की भी समझ मिलती है। व्यवहार में उजागर होते शौर्य, विनम्रता, संवाद में से प्रकट होता राष्ट्रप्रेम; उनके तुरंत दृष्टिगोचर होते घटक हैं। लेकिन कला की भारतीय विभावना, सौंदर्य का हमारा खयाल कितना व्यापक, विस्तृत और सर्वग्राही है, उसका परिचय इसके माध्यम से प्रकट होता है, फैलता है और लोगों के दिलों में प्रवेश पाकर स्थिर होता है। प्रादेशिक संगीत, प्रादेशिक राग को बनाए रखती है भवाई। प्रादेशिक भाषास्वरूप, प्रादेशिक मान्यताओं को और वाणी-लय, लटकों-झटकों द्वारा किसी बात या विचार को मधुरता से लोगों के मन में आरोपित करने का राष्ट्रसेवा का एक बहुत बड़ा कार्य करता है भवाई का लोकनाट्य स्वरूप।

यह प्रादेशिकता, खंडभाग अखंड भारत के संस्कार, संस्कृति और दर्शन को ही पुरस्कृत करके प्रकट होता महसूस होता है। इसलिए विविधता में संरक्षित एकता है। एकात्म मानवभाव, एकात्मक बोध और एकात्मकता कितनी गहराई से अभिन्न रूप से संरक्षित है, उसका परिचय मिलता है भवाई लोकनाट्य स्वरूप द्वारा। भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन और भारतीय जीवन-मूल्यों को उजागर करती भवाई इसी कारण आज तक जीवंत रही है। उसमें भारत के शाश्वत भाव, सनातन मूल्यों और चिरंजीव विश्वभाव स्थित हैं। भवाई में उपनिषद् के सूत्र के शब्दों के 'सूक्ष्मातिसूक्ष्म' रूपभवाई के एक गीत में 'झीणाथी अति झीणो रे' में अनुरणन केवल मुझे ही नहीं, समग्र समाज को प्राप्त होता है। उपनिषद् के अभ्यासु होने के कारण उसकी महत्ता प्राप्त करता हूँ। निरक्षण, अबोध माने-जानेवाला समाज भी इस बहाने भारतीय दर्शन के भाव से दीक्षित होता है। फिर निरक्षर और अभ्यासु में कोई अंतर नहीं रह जाता है। श्लोक को लोगों तक पहुँचानेवाली, जीवंत रखनेवाली और बनाए रखनेवाली भवाई लोकनाट्य शैली इसी कारणवश केवल हमारे आस्वाद का ही नहीं, वरन् अभ्यास का विषय भी बनती है। भारतीय दर्शन से अनुप्राणित भवाई भारतीय संस्कार, संस्कृति और सदाचार दर्शन का प्रकट स्वरूप है। सा.अ.

'तीर्थ', २६४-जनकपुरी,
यूनिवर्सिटी रोड, राजकोट-३६०००५ (गुजरात)
दूरभाष : ०९८२५०७५०९८

बाल-कहानी

ओवरकोट

● **बद्री प्रसाद वर्मा अनजान**

पप्पू बहुत ही प्यारा हाथी था। वह चंपक वन के सभी छोटे-बड़े जानवरों के साथ दोस्ताना व्यवहार करता था। जंगल के सभी जानवरों की मुसीबत के समय मदद के लिए वह हमेशा तैयार रहता था।

एक दिन पप्पू हाथी झील में पानी पी रहा था। तभी उसके कानों में चंपक वन के राजा गब्बर शेर की चिंघाड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। आवाज सुनकर पप्पू हाथी समझ गया कि गब्बर भारी मुसीबत में है। पप्पू गब्बर को बचाने के लिए उस तरफ दौड़ पड़ा, जिधर से उसकी आवाज आ रही थी।

पप्पू हाथी को भागता देखकर उसके साथ हिरन, बाध, चीता, जेबरा, ऊँट, गैंड़ा, लोमड़ी, तेंदुआ, खरगोश, भालू सभी जानवर भागने लगे।

पप्पू हाथी ने देखा, कुछ शिकारी एक गहरे गड्ढे में गिरे गब्बर शेर को अपने जाल में बाँधने की कोशिश कर रहे हैं।

शिकारियों को देखकर पप्पू हाथी उन शिकारियों को मारने के लिए दौड़ा। दूसरे सभी जानवर भी शिकारियों को मारने के लिए दौड़ पड़े। शिकारी जंगली जानवरों को अपनी तरफ आते देखकर अपने साथ लाए जाल, फावड़ा, लोहे का पिंजड़ा और बंदूक-रस्सी सबकुछ छोड़कर जीप में बैठकर जंगल से भाग निकले।

शिकारियों को भगाने के बाद पप्पू हाथी गड्ढे में गिरे अपने मित्र गब्बर शेर से बोला, ''महाराज, अब घबराने की कोई जरूरत नहीं है। हम अभी आपको सही-सलामत इस गड्ढे से बाहर निकाल लेंगे।''

इतना कहकर पप्पू हाथी शिकारियों द्वारा छोड़ी गई रस्सी को गड्ढे में गिराकर बोला, ''आप इस रस्सी को दोनों हाथों से मजबूती के साथ पकड़ लीजिए, ताकि हम रस्सी को खींचकर आपको बाहर निकाल सकें।''

गब्बर शेर ने दोनों हाथों और दाँतों से रस्सी को मजबूती से पकड़ लिया। इधर पप्पू हाथी ने अपनी सूँड़ से रस्सी सहित गब्बर शेर को गड्ढे से बाहर निकाल लिया। बाहर आकर गब्बर शेर ने पप्पू हाथी को लाख-लाख धन्यवाद दिया।

पप्पू हाथी के कहने पर सभी जानवरों ने मिलकर पास पड़ी मिट्टी से गड्ढे को पाट दिया। उसी वक्त गब्बर शेर ने ऐलान कर दिया कि आज से इस चंपक वन में जहाँ कहीं भी शिकारी नजर आएँ, उन्हें मार डालो, ताकि वे हम जानवरों को पकड़कर न ले जा सकें। ऐलान सुनकर सभी जानवर अपने-अपने घर की ओर चल दिए। उस दिन से जंगल में शिकारियों का आना बंद हो गया।

सुपरिचित बाल-साहित्यकार। देश और विदेश की बाल पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। विदेशी रेडियो के हिंदी प्रसारणों पर रचनाएँ प्रचारित। ढेरों पुरस्कार प्राप्त।

एक दिन पप्पू हाथी ने सभी जानवरों की सभा बुलाकर कहा, ''कल हमारा जन्मदिन है। इस अवसर पर सभी को मेरे घर आना है। मगर मेरे जन्मदिन पर कोई उपहार नहीं लाएगा, मुझे किसी का उपहार नहीं चाहिए।''

पप्पू हाथी की बात सुनकर सारे जानवर अपने-अपने घर चले गए।

अगले दिन पप्पू हाथी के घर चंपक वन के जानवरों की भीड़ जुटने लगी। कुछ ही देर में पप्पू हाथी का पूरा इलाका मेहमानों से भर गया। पप्पू हाथी ने बड़ी धूमधाम से अपना जन्मदिन मनाया और सभी को केक काटकर खिलाया, साथ ही सभी को शानदार दावत दी।

दावत खाकर सभी अपने-अपने घर जाने लगे। तभी गब्बर शेर पप्पू हाथी के पास आकर बोला, ''पप्पू, तुम्हें मेरा उपहार लेना ही पड़ेगा। अगर तुमने मेरा उपहार लेने से इनकार कर दिया तो मुझे बहुत दुःख होगा।

''तुम्हें पता है, सर्दी आनेवाली है। जंगल के दूसरे जानवर सर्दी से बचने के लिए गरम स्वेटर, जर्सी और शॉल मौजा-मफलर का उपयोग करते हैं। मगर एक तुम हो कि सर्दी भर काँपते रहते हो। इसलिए मैंने तुम्हारे लिए विदेश से एक गरम ओवरकोट मँगाया है। इसे पहनकर तुम सर्दी से बचे रहोगे। इस पैकेट में तुम्हारा ओवरकोट है, इसे जन्मदिन के उपहार के रूप में स्वीकार करो।'' पप्पू हाथी गब्बर शेर का उपहार लेकर खुशी से उछल पड़ा।

पप्पू हाथी इस बात पर खुश था कि इस साल उसे सर्दी परेशान नहीं करेगी। न उसे ठंडी में दाँत किटकिटाने पड़ेंगे। ओवरकोट पहनकर सर्दी में भी खूब घूमूँगा। उपहार में ओवरकोट पाकर पप्पू हाथी मन-ही-मन खुश हो रहा था।

गल्ला मंडी, पोस्ट ऑफिस, गोला बाजार
गोरखपुर-२३३४०८ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९८३८९११८३६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का जनवरी अंक पढ़ा, निश्चय ही यह एक श्रेष्ठ हिंदी पत्रिका का प्रशंसनीय अंक है। समसामयिक घटनाओं की पड़ताल करते संपादकीय ने न केवल अमरीकी राष्ट्रपति की भारत विरोधी नीतियों को उजागर किया है, बल्कि चीन के नापाक इरादों से पाठकों को रूबरू किया है। ऋता शुक्ल की कहानी 'कभी न होगा अंत' जैसे को तैसा के सिद्धांत को दरशाती है। दीर्घ नारायण की 'जसी तुम आती रहना' एक समसामयिक विषय की रचना है, जो संदेश देती है हम बड़े आधुनिक बनते हैं, किंतु बात जब स्त्री-पुरुष के आपसी मेल-मिलाप की आती है, वहाँ उन्हें नर-मादा से अधिक कुछ नहीं समझते। समाधान के रूप में नायक की माता नायिका को अपने पुत्र की सहज सीख स्वीकार कर लेती है। माधव राठौर की कहानी 'खालीपन' फेसबुक के दीवानों की आँखें खोल देनेवाली है। इस अंक की जान कहना चाहूँगी भाई प्रेमपाल शर्मा के यात्रा-संस्मरण 'ये है अपना राजपुताना' को। सरल-सहज भाषा-प्रवाह, प्रसंगानुकूल वाक्य विन्यास, गहन ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी तथा महाराणा प्रताप से संबंधित घटनाओं का प्रामाणिक वर्णन। लगता है, जैसे पाठक लेखक के हमसफर हों, चेतक और झाला मानसिंह का बलिदान आँखें नम कर देता है। उन्हें कोटशः बधाई। गोपाल चतुर्वेदीजी ने राम झरोखे बैठ चुनाली नामक सर्व हितकारी त्योहार का हृदयहारी निरूपण किया है। इस अंक के लिए रचनापारखी संपादक, अपने फन में माहिर लेखक बंधु, सभी को साधुवाद।

—तुलसी देवी तिवारी, बिलासपुर (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' के फरवरी अंक की कहानियाँ अच्छी लगीं। श्री दिनेश बैस की कहानी 'थैंक्यू पापा' अच्छी रचना है। 'घर-घर मिट्टी के चूल्हे' कहावत को नया आयाम दिया है—'सबकी गैस के चूल्हे जंग खाए होते हैं' अच्छा लगा। परिवर्तन के प्रवर्तकों का प्रयास स्तुत्य है।

—देवकीनंदन कांडपाल, अल्मोड़ा (उ.खं.)

'साहित्य अमृत' के मार्च अंक में कवि देवेंद्र कुमार चौधरी अपनी छोटी सी कविता 'रजाई में दुबकने का मौसम' में साहित्यिक मर्म के एक सुंदर और सुबोध उद्घोषक जैसे दिखाई पड़ते हैं। यह कविता जाड़े की ठिठुरती धुंध में भी अपने अस्तित्व में बिल्कुल स्पष्ट है। फलतः ऐसी रचना के लिए कवि मेरी ओर से बधाई के पात्र हैं।

—कुंदन सिन्हा, मोतिहारी (बिहार)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की वैश्विक उपलब्धियों और विदेश नीति का विश्लेषण भी प्रकारांतर से प्रस्तुत किया गया, जो प्रबुद्ध पाठकों को चिंतन की नई दृष्टि देता है।...अयोध्या-विवाद, क्या सांसद और अधिवक्ता भी? सांसदों की अप्रत्याशित धन-वृद्धि, पंजाब नेशनल बैंक का घोटाला और कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें—ऐसे महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, जिन पर 'संपादकीय' में विवेचन और राष्ट्रीय छवि को धूमिल करनेवालों के प्रति सख्त हिदायतें ध्यातव्य हैं। 'प्रतिस्मृति' स्वरूप आचार्य विद्यानिवास मिश्र की अभिव्यक्ति 'ब्रज में मनुष्य ईश्वर नहीं, ईश्वर मनुष्य है' आध्यात्मिक चिंतन की ऊँचाई लिये है। अंक की कहानियाँ ध्यानाकृष्ट करती हैं। डॉ. सुशील कुमार फुल्ल की कहानी 'दान-पुन्न' युग-परिप्रेक्ष्य में कथ्य, भाषा और परिवेश के नए रूप को चित्रित करती है। 'अप्रैंटिस' (धर्मेंद्र कुशवाहा) में समय-समाज की प्रामाणिकता है। बड़ी ईमानदारी से अप्रैंटिसों की मनःस्थिति को रचना के धरातल पर उतारा है। गोपालनारायण आवटे की कहानी 'सैनिक' वर्तमान के बदलते यथार्थ की पहचान और सैनिकों के त्याग-बलिदान और आतंकी दहशत का दंश फिल्मी अक्स अंदाज ये अलग आयाम लिये है। 'धूल से भरे शब्द' (मनोज सिंह) जिंदगी के यथार्थ को खोल देना ही कहानी का गुण-वैशिष्ट्य है। गहरी संवेदना से भरपूर 'श्रद्धांजलि' (रामकुमार तिवारी) कहानी अपने कथ्यशिल्प में कसी है। 'जिंदगी' कहानी है तो छोटी पर आर्थिक अभाव के बीच अस्तित्व बोध का स्वच्छ चित्रण बड़ी कुशलता से इसमें हुआ है। रमेशचंद्र ने होली की मिथात्मक दृष्टि की प्रासंगिकता पेश की है। 'साहित्य का समाजशास्त्र' (प्रणव शास्त्री) में गहन वैचारिकता है। पवन चौहान की बाल-कहानी सुरुचिपूर्ण बन पड़ी है। इसमें 'चेतना' के माध्यम से भावों का आविष्करण है। विश्वविख्यात साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र, राजनारायण चौधरी, विश्वंभर पांडे 'व्यग्र', आर.सी. शुक्ल आदि के गीतों में फाग-का-राग मन को रंगीन बना देने में सक्षम है। बड़ी मार्मिक रचनाएँ हैं ये। बालकवि बैरागी के ज्ञानवर्धक दोहे नीतिपरक लगे। अन्य रचनाएँ भी पठनीय हैं और अपनी विशेष सार्थकता सिद्ध करती हैं। 'साहित्य अमृत' वाकई साहित्य का अमृत है, जो पाठक-मन में अमरत्व भरती है।

—डॉ. राहुल, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पढ़कर मन गद्गद हो गया। संपादकीय में राजनीतिक विश्लेषण के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय, अयोध्या विवाद, पंजाब नेशनल बैंक घोटाला जैसे प्रकरणों पर बहुत संजीदगी से लिखा है। 'ब्रज में मनुष्य ईश्वर नहीं, ईश्वर मनुष्य है' भावपूर्ण निबंध है। 'बीत जाए बसंत' में प्रेमरस से परिपूर्ण जीवनाकांक्षा का मनोहर बिंब है। 'भारतीय लोक संस्कृति का महापर्व : होली' आलेख बहुत ही सरस और सरल है। 'साहित्य का समाजशास्त्र' में प्रणवजी ने भारतीय संस्कृति, समाजशास्त्र और साहित्य का समाजशास्त्र यानी समाज के लिए समाज के लिए साहित्य का उद्देश्य और प्रासंगिक पर अच्छा लिखा है। 'खुलकर रोए बाबूजी' गजल गहराई तक प्रभावित और सोचने को मजबूर करती है। 'यह असार संसार' में शामिल बैरागीजी के कबीर शैली में लिखे ज्ञानवर्धक दोहे स्नेह, सहयोग, धैर्य, धर्म, दर्शन और आध्यात्मिक सीख देते हैं। 'हे पुष्पराज' और 'आदान-प्रदान' कविताएँ अपने कर्तव्य का पालन करके जीवन को सार्थक करने का संदेश देती हैं। पवन चौहान की बाल कहानी 'चेतना कहाँ गई' एक लड़की (चेतना) के परिश्रम, इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास की प्रेरणादायक कहानी है। कुल मिलाकर इस सफल और सुंदर आयोजन के लिए साहित्य अमृत को आभार और लेखकों को हार्दिक बधाई।

—अशोक बैरागी, सिरसाढ़ (सोनीपत)

वर्ग पहेली (१५१)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० अप्रैल, २०१८ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जून २०१८ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१४९) का शुद्ध हल

१आ		२सि		३शि	व	लो	४क
५म	६ह	फि	ल		ख		र
	म		७सि	ह	र	८न	ता
९भो	ला	१०भा	ला		११न	र	व	ध
ज		री				रा		र
१२प	च	१३प	चा		१४स	ज	१५ग	ता
री		१६न	प	वा	ना		ज	
क्ष			लू		१७त	र	क	१८श
१९क	ट	पी	स		न			नि

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री पुखराज वार्ष्णेय**
फ्लैट-३० सी, डी.डी.ए. एम.आई.जी.
पॉकेट-२, सेक्टर-७, निकट
रामफल चौक, द्वारका,
नई दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ९८१०८७१४६९

२. **सुश्री नीरजा शर्मा**
सी-५/२२, आर्चिड हार्मनी
एप्पल वुड्स, एस.पी. रिंग रोड
बोपल, अहमदाबाद-३८००५८ (गुज.)
दूरभाष : ९७१२८८२०८८

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १४९ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री सुभाष शर्मा (दिल्ली), शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), रजनीश कुमार त्रिवेदी (बरेली), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), शिवशरण दुबे (कटनी), फकीरचंद ढुल (कैथल), ब्रह्मानंद 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), जयंत नाहड़िया (नारनौल), विजयपाल सेहलंगिया (सेहलंग), रामप्रकाश राय (गोरखपुर), दीन स्नेही (ब्यावर), रितिक उपाध्याय (बाराबंकी), विनीत उत्प्रेती (अल्मोड़ा)।

बाएँ से दाएँ—

१. एक चर्म रोग (२)
३. सी.आई.डी. (३,३)
७. सहानुभूति रखनेवाला (४)
८. फौरन (२)
९. फेहरिस्त (३)
१०. शोरबा (२)
११. लड़कपन (४)
१३. गुस्से से गरम होना (२,२)
१५. नर्क (४)
१८. भीड़-भाड़ (४)
२०. शक्कर (२)
२१. मेघ (३)
२२. उत्पत्ति का हेतु (२)
२३. सीमा (४)
२५. कोमल शरीर (३,३)
२६. धन (२)

ऊपर से नीचे—

१. अंत्येष्टि (२)
२. आग बुझाने हेतु प्रयुक्त यंत्र (४)
३. सूक्ष्मदर्शी यंत्र (४)
४. भिक्षा के द्वारा अपना भरण-पोषण (४)
५. बहुत हलका मिश्रण (२)
६. हवा बहने का शब्द (६)
११. रसोईघर (६)
१२. गिरा हुआ (३)
१४. मन में होनेवाली मिथ्या धारणा (३)
१६. मुकाबले का (२)
१७. छलकता हुआ (४)
१८. नाश्ता (४)
१९. कम करवाना (४)
२२. अवाक, गूँगा (२)
२४. लक्ष्मी (२)

वर्ग पहेली (१५०) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१५१)

१	२		३		४	५		६
७					८			
			९				१०	
११		१२			१३	१४		
१५	१६		१७		१८		१९	
२०			२१					
		२२			२३			२४
२५							२६	

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

'कूड़ा-धन' लोकार्पित

६ मार्च को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में 'इंडिया न्यूज' के एडिटर-इन-चीफ श्री दीपक चौरसिया की प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित कृति 'कूड़ा-धन' का लोकार्पण लोकसभा अध्यक्ष मान. श्रीमती सुमित्रा महाजन के करकमलों से केंद्रीय सड़क परिवहन, राजमार्ग, जहाजरानी, जल संसाधन, नदी विकास व गंगा कायाकल्प मंत्री मान. श्री नितिन गडकरी के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। 'कूड़ा-धन' का विमोचन करने के बाद लोकसभा स्पीकर श्रीमती सुमित्रा महाजन ने कहा कि कोई भी चीज बेकार नहीं है, यह बात हमारी संस्कृति का हिस्सा रही है। हम अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लाल किले से स्वच्छता की बात करके लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। इस अवसर पर केंद्रीय मंत्री श्री नितिन गडकरी ने 'कूड़ा-धन' को स्वच्छ भारत मिशन को क्रांतिकारी किताब बताया। उन्होंने कहा कि कूड़े की इकोनॉमी १० लाख करोड़ की हो सकती है। इनोवेशन, आंत्रप्रेन्योरशिप, रिसर्च और टेक्नोलॉजी का उपयोग करके कूड़े को धन में बदला जा सकता है। गंगा के किनारे उनका मंत्रालय ११० बायो डाइजेस्टर बना रहा है, जिससे सीवर के पानी से मीथेन निकालने में इस्तेमाल किया जाएगा। लेखक श्री दीपक चौरसिया ने बताया कि २५ वर्ष की पत्रकारिता के दौरान जिस एक विषय ने मुझे सबसे ज्यादा उद्वेलित किया, वह विषय है स्वच्छता, जो सीधे-सीधे मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण संकट से जुड़ा है। ☐

दो पुस्तकें लोकार्पित

२१ फरवरी को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित सर्वश्री विवेक देवराय, एशले जे. टेलिस, रीस ट्रेवर द्वारा लिखित कृति 'भारत वापस पटरी पर' एवं विवेक देवराय, विद्या कृष्णमूर्ति, संजय चड्ढा द्वारा लिखित कृति 'भारतीय रेल : देश की जीवन-रेखा' का लोकार्पण केंद्रीय रेल एवं कोयला मंत्री मान. श्री पीयूष गोयल के करकमलों से राज्यसभा सांसद एवं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के अध्यक्ष मान. डॉ. विनय सहस्रबुद्धे के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। ☐

पुस्तक लोकार्पित

२६ फरवरी को नई दिल्ली के हिंदी भवन में स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर की ५२वीं पुण्यतिथि पर 'साहित्य अमृत' के संपादक मान. श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी की अध्यक्षता में प्रसिद्ध इतिहास लेखक डॉ. हरींद्र श्रीवास्तव की प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित वीर सावरकर की संघर्ष-गाथा '4 स्टॉर्मी ट्रायल्स ऑफ वीर सावरकर' का लोकार्पण राज्यसभा सांसद एवं प्रसिद्ध पत्रकार मान. श्री स्वपन दासगुप्ता के करकमलों से संपन्न हुआ। ☐

कृति विमोचित

२६ फरवरी को नई दिल्ली के उपराष्ट्रपति भवन में श्री संजीव गुप्ता की पुस्तक 'पुरस्कृत बच्चों की प्रेरक कहानी' का विमोचन भारत के उपराष्ट्रपति मान. श्री एम. वेंकैया नायडू के करकमलों से संपन्न हुआ। इस अवसर पर भाजपा के दिल्ली प्रदेशाध्यक्ष श्री मनोज तिवारी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री विवेक गौतम ने किया। ☐

'भाषा विमर्श' कृति लोकार्पित

विगत दिनों नई दिल्ली में ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया द्वारा आयोजित समारोह में पद्मभूषण डॉ. विंदेश्वर पाठक के करकमलों द्वारा डॉ. हीरालाल बाछोतिया के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केंद्रित ग्रंथ 'भाषा विमर्श' का लोकार्पण किया गया, जिसमें डॉ. इंद्र सेंगर ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर 'लेखक और पर्यावरण' पर विचार गोष्ठी और काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। संचालन डॉ. शिव शंकर अवस्थी ने किया। ☐

सम्मान एवं लोकार्पण समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में श्रीमती सविता चड्ढा की काव्य कृति 'अखरता है अब चुप रहना' का लोकार्पण श्रीमती किरण चोपड़ा द्वारा किया गया, जिसमें सर्वश्री आमोद कुमार, सरोजिनी प्रीतम, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, विनोद बब्बर ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर सर्वश्री राम लोचन को 'शिल्पी चड्ढा स्मृति सम्मान', उर्मिल सत्यभूषण को 'शिल्पी चड्ढा स्मृति साहित्यकार सम्मान', किरण चोपड़ा को 'शिल्पी चड्ढा स्मृति—हीरों में हीरा सम्मान' से सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. रवि शर्मा ने किया। ☐

लोकार्पण समारोह संपन्न

११ मार्च को देहरादून के विश्व संवाद केंद्र में उच्च शिक्षा मंत्री डॉ. धनसिंह रावत की अध्यक्षता में 'वार्षिकी २०१७' का लोकार्पण समारोह प्रो. अभिमन्यु कुमार के मुख्य आतिथ्य में आयोजित किया गया, जिसमें प्रसिद्ध लेखक व शिक्षाविद् डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. देवेंद्र भसीन ने किया। ☐

डॉ. सीतेश आलोक की तीन कृतियाँ विमोचित

२८ फरवरी को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के सभागार में इंद्रप्रस्थ साहित्य भारती द्वारा डॉ. रामशरण गौड़ की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में मुख्य अतिथि गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा द्वारा डॉ. सीतेश आलोक की तीन पुस्तकों 'भावार्थ गीता', 'आधारशिला' एवं 'चलती चक्की' का विमोचन किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री नरेश शांडिल्य, विनोद बब्बर एवं सुरेश ऋतुपर्ण उपस्थित थे। ☐

'नदी कहना जानती है' कृति लोकार्पित

११ मार्च को रायबरेली के लेखागार सभागार में डॉ. ओमप्रकाश सिंह की अध्यक्षता में आयोजित समारोह में श्रद्धेय रामनारायण रमन का सद्य:प्रकाशित नवगीत-संग्रह 'नदी कहना जानती है' का लोकार्पण डॉ. अवनीश सिंह चौहान के मुख्य आतिथ्य एवं श्री नाज प्रतापगढ़ी के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। इस अवसर पर सर्वश्री विनय भदौरिया, रमाकांत, आनंदस्वरूप श्रीवास्तव, राजेंद्र बहादुर सिंह राजन, शिवकुमार शास्त्री, संतोष डे, प्रमोद प्रखर, राकेश चंद्रा, हीरालाल यादव, दुर्गाशंकर वर्मा, राज ने अपने वक्तव्य दिए। संचालन श्री जय चक्रवर्ती एवं डॉ. विनय भदौरिया ने किया। आभार श्री रमाकांत ने व्यक्त किए। ☐

'शांतिधाम' कृति लोकार्पित

२४ फरवरी को गोमतीनगर, लखनऊ के सी.एम.एस. सभागार में

ज्ञान प्रसार संस्थान के तत्त्वावधान में श्री के. विक्रमराव की अध्यक्षता में प्रसिद्ध लेखिका सुश्री नीरजा द्विवेदी के कहानी-संग्रह 'शांतिधाम' का लोकार्पण डॉ. सुल्तान शाकिर हाशमी के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. विद्याविंदु सिंह के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर डॉ. उषा सिन्हा ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. अंजना मिश्रा ने किया। ☐

तीन पुस्तकें लोकार्पित

विगत दिनों दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में वरिष्ठ साहित्यकार श्री सीतेश आलोक की तीन पुस्तकों 'भावार्थ गीता : भाव समीक्षा', 'आधार शिला' एवं 'चलती चक्की—सामाजिक एवं आर्थिक लेखों का संग्रह' का लोकार्पण गोवा की राज्यपाल प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमती मृदुला सिन्हा के करकमलों से संपन्न हुआ। समारोह में सर्वश्री मृदुला सिन्हा, रामशरण गौड़, सुरेश ऋतुपर्ण, नरेश शांडिल्य, विनोद बब्बर, सुरेश ऋतुपर्ण, प्रवीण आर्य ने अपने विचार व्यक्त किए। आभार डॉ. लोकेश शर्मा ने व्यक्त किया। ☐

लोकार्पण एवं सम्मान समारोह संपन्न

५ मार्च को भीलवाड़ा में श्री श्याम प्रकाश देवपुरा की अध्यक्षता में साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं वैचारिक संस्था 'संदर्भ समीक्षा समिति' द्वारा पुस्तक लोकार्पण, सम्मान समारोह एवं काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री विट्ठल पारीक, कमलाकांत शर्मा 'कमल', राजेंद्र गोपाल व्यास, माया मृग ने अपने विचार रखे। इस अवसर पर इस संस्था की संस्थापिका श्रीमती रेखा लोढ़ा 'स्मित' के सद्य:प्रकाशित दोहा-संग्रह 'नागफनी का दंश' का लोकार्पण किया गया। साथ ही सर्वश्री कमलाकांत शर्मा 'कमल' को 'साहित्य शिखर सम्मान', राजेंद्र गोपाल व्यास को 'काव्य शिखर सम्मान', नरेंद्र दधीच को 'गीत गौरव सम्मान' एवं मुकेश शर्मा परवाना को 'गजल गौरव सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप सभी को शॉल, उत्तरीय, कंठहार, मेवाड़ी पगड़ी, सम्मान-पत्र एवं सम्मान चिह्न भेंट किए गए। संचालन श्री प्रह्लाद पारीक ने किया। द्वितीय सत्र में श्री दयाराम मेठानी की अध्यक्षता में काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री फतहसिंह लोढ़ा, सत्यनारायण व्यास मधुप व श्यामसुंदर ने अपने विचार रखे। इस अवसर पर लगभग पैंतीस से अधिक कवियों ने काव्यपाठ किया। संचालन श्री यशपाल शर्मा ने किया तथा आभार श्री वत्सल लोढ़ा ने व्यक्त किया। ☐

एकल काव्यपाठ आयोजित

विगत दिनों पटना के कामता सदन स्थित डॉ. शंकरदयाल सिंह स्मृति पुस्तकालय के प्रांगण में होली की पूर्व संध्या पर श्री संजय राही का एकल काव्य पाठ आयोजित किया गया। श्री संजय कुमार ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद श्री वीरेंद्र कुमार सिंह ने ज्ञापित किया।☐

जन्मशताब्दी आयोजित

२८ फरवरी को गुरुग्राम के एन.डी.सी. के प्रांगण में 'संस्कार भारती' के संस्थापक श्री लक्ष्मण राव इनामदार की जन्मशताब्दी के अवसर पर सहकार सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक मान. श्री मोहन भागवत, मुख्य वक्ता केंद्रीय कृषि एवं सहाकारिता मंत्री श्री राधा मोहन, मुख्य अतिथि हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री मनोहरलाल खट्टर ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

कंप्यूटर प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित

२० फरवरी को नई दिल्ली में गार्गी महाविद्यालय के सभागार में डॉ. हरिसिंह पाल की अध्यक्षता एवं श्री सुरेशचंद्र शुक्ला के मुख्य आतिथ्य में 'नागरी लिपि पर कंप्यूटर प्रशिक्षण कार्यशाला' का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. पार्वती शर्मा चांदला ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन सुश्री सौम्या, संस्कृति और सुहानी ने किया तथा धन्यवाद सुश्री पुष्पांकिता तिवारी ने ज्ञापित किया। ☐

होली प्रीति सम्मेलन संपन्न

३ मार्च को कोलकाता के ओसवाल भवन में श्री राधेश्याम झँवर की अध्यक्षता में राजस्थान परिषद् द्वारा होली प्रीति सम्मेलन एवं बासंती कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री शार्दूल सिंह जैन, राहुल अवस्थी, फारुक सरल, अंकिता सिंह, गिरिधर राय ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। संचालन श्री रूगलाल सुराणा ने किया तथा धन्यवाद श्री अरुण प्रकाश मल्लावत ने ज्ञापित किया। ☐

राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

२४ फरवरी को नई दिल्ली के कला संकाय सभागार में नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी द्वारा उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के सहयोग से एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन चार सत्रों में किया गया। प्रथम सत्र में 'हिंदी साहित्य और मानव मूल्य' विषय पर सर्वश्री पूरनचंद टंडन, सूर्यप्रसाद दीक्षित, राकेश शर्मा, राजनारायण शुक्ल ने अपने विचार व्यक्त किए। इस सत्र में 'सहृदय' पत्रिका के ३४-३५वें, ३६-३७वें एवं ३८वें संयुक्तांक का लोकार्पण किया गया। द्वितीय सत्र में 'मानव मूल्य और हिंदी गद्य साहित्य' विषय पर सर्वश्री प्रेम सिंह, प्रेम जनमेजय, धर्मपाल मैनी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. सुनील तिवारी ने किया तथा धन्यवाद डॉ. तृप्ता ने किया। तृतीय सत्र में 'मानव मूल्य और हिंदी कविता' विषय पर सर्वश्री करुणाशंकर उपाध्याय, जयप्रकाश, रामशरण गौड़ ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. आलोक रंजन पांडेय ने किया। चतुर्थ सत्र में मीडिया के विषय में सर्वश्री कुमुद शर्मा व दिनेश चंद्र दीक्षित ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. प्रदीप ने किया तथा धन्यवाद डॉ. जगदेव ने ज्ञापित किया। ☐

श्री सुभाष नीरव सम्मानित

२१ फरवरी को नई दिल्ली में भारतीय अनुवाद परिषद् द्वारा भारतीय विद्या भवन के सभागार में आयोजित समारोह में श्रीमती चंद्रकांता द्वारा श्री सुभाष नीरव को अनुवाद क्षेत्र में किए गए उनके महती योगदान के लिए 'डॉ. गार्गी गुप्त द्विवागीश पुरस्कार २०१६' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें इक्कीस हजार रुपए की राशि, शॉल, सरस्वती की प्रतिमा, प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री के. श्रीनिवासन, चंद्रकांता, हेमचंद पांडे, संतोष खन्ना, पूरनचंद टंडन द्वारा एक स्मारिका का विमोचन भी किया गया। ☐

मासिक गोष्ठी संपन्न

३ मार्च को शालीबंडा में अग्रवाल समाज के तत्त्वावधान में कवियों की संस्था गीत चाँदनी द्वारा विराट् हास्य-व्यंग्य कवि सम्मेलन श्री नरेश कुमार बंसल के निवास स्थान पर श्री नेहपाल सिंह वर्मा की अध्यक्षता

में आयोजित किया गया, जिसमें दो दर्जन से ज्यादा कवियों ने अपनी सरस रचनाएँ सुनाईं। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद श्री गणेश अग्रवाल ने ज्ञापित किया। ☐

संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों श्रीडूँगरगढ़ के संस्कृति भवन में डॉ. भँवरसिंह सामौर की अध्यक्षता में आयोजित राजस्थानी साहित्यिक पत्रकारिता पर संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह में सर्वश्री रणवीर सिंह, मालचंद तिवाड़ी, श्याम महर्षि, श्यामसुंदर भारती, रमेश मयंक, शंकर सिंह, चेतन स्वामी, गौतम अरोड़ा, भरत ओला, शंकरसिंह राजपुरोहित ने अपने विचार व्यक्त किए। सर्वश्री उदयवीर शर्मा, पदम मेहता, नागराज शर्मा, रामस्वरूप किसान, भरत ओला, गौतम अरोड़ा, कुमार अजय, दुलाराम सहारण, मनोज स्वामी, आनंद कुमार पुरोहित, उमेश सक्सेना, बृजेंद्र अरड़ावतिया, कमलेश शर्मा, चेतन स्वामी, मदन सैनी को सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें शॉल एवं प्रशस्ति-पत्र भेंट किए गए। आभार श्री रवि पुरोहित ने व्यक्त किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

२० फरवरी को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड द्वारा डॉ. दया प्रकाश सिन्हा की अध्यक्षता एवं प्रो. बृजकिशोर कुठियाला के विशिष्ट आतिथ्य में आयोजित सम्मान समारोह में सर्वश्री सतीश चंद्र मित्तल व रमेश चंद्र को 'संस्कृति मनीषी सम्मान', राजेंद्र राजा को 'महर्षि दधीचि सम्मान', एच. बालसुब्रमण्यम को 'संस्कृति गांथातरा कृति सम्मान', शांतिकुमार स्याल को 'दुर्गाभाभी सम्मान', देवेंद्र दीपक को 'संत रविदास सम्मान', सदानंद प्रसाद गुप्त को 'साहित्य कृति सम्मान', राकेश 'चक्र' को 'बाल साहित्य श्री सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप सभी को शॉल, पुस्तकें, प्रशस्ति-पत्र, डेढ़-डेढ़ लाख रुपए की राशि भेंट की गई। साथ ही 'पत्रिका-संपादक सम्मान' के अंतर्गत 'चक्रवाक' पत्रिका के संपादक आचार्य निशांतकेतु को एक लाख रुपए, 'साहित्य यात्रा' के संपादक डॉ. कलानाथ मिश्र को पचहत्तर हजार रुपए, 'मंगल विमर्श' के संपादक प्रो. ओमिश परूथी को पचास हजार रुपए, 'सृजन कुंज' के संपादक डॉ. कृष्ण कुमार 'आशु', 'शीतल वाणी' के संपादक डॉ. विरेंद्र 'आजम' और 'प्रणाम पर्यटन' के संपादक श्री प्रदीप श्रीवास्तव को 'लेखक नमन पुरस्कार' स्वरूप पच्चीस-पच्चीस हजार रुपए से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप सभी को शॉल व प्रशस्ति-पत्र भेंट किए गए। धन्यवाद डॉ. लोकेश शर्मा ने ज्ञापित किया। ☐

हिंदी साहित्य सम्मेलन संपन्न

८-१० मार्च को आंध्र प्रदेश में हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से महथी कला-श्रोतृशाला में डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित की अध्यक्षता में हिंदी साहित्य सम्मेलन का सत्तरवाँ त्रिदिवसीय अधिवेशन सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री पृथ्वीनाथ पांडेय, रमेश पोखरियाल 'निशंक', स्वामी हाथीराम ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर सर्वश्री एस. शेषारत्नम्, धनपाल राज हीरामन, ए. अरविंदाक्षन को हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की शीर्षस्थ मानद उपाधि 'साहित्यवाचस्पति' से सम्मानित किया गया। संचालन श्री श्यामकृष्ण पांडेय ने किया तथा कृतज्ञता श्री विभूति मिश्र ने ज्ञापित की। ☐

संगोष्ठी संपन्न

८ मार्च को वडोदरा में पश्चिमांचल हिंदी प्रचार समिति व गेल (इंडिया) लिमिटेड के संयुक्त तत्त्वावधान में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष्य में संगोष्ठी डॉ. मीरा रामनिवास के मुख्य आतिथ्य में आयोजित की गई, जिसमें श्री एस.के. मेहरोत्रा व श्रीमती मुक्ता मेहरोत्रा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर डॉ. मीरा रामनिवास को डॉ. माणिक मृगेश द्वारा 'भाषा-मनीषा सम्मान' से सम्मानित किया गया। द्वितीय सत्र में सर्वश्री दीपक, धवल परीख, किशोर डाभी, राखी सिंह व कल्पना शील ने गीत प्रस्तुति दी। संचालन श्रीमती श्यामा सिंह ने किया तथा आभार श्री धनंजय चौहान ने व्यक्त किया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों जयपुर में प्रो. पवन सुराणा की अध्यक्षता, श्रीमती चंद्रकांता व डॉ. इंदुशेखर तत्पुरुष के मुख्य आतिथ्य एवं सर्वश्री देवश्री कलानाथ शास्त्री, नंद भारद्वाज, दुर्गा प्रसाद अग्रवाल के सारस्वत आतिथ्य में स्पंदन महिला साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थान द्वारा सर्वश्री मृदुला गर्ग को 'स्पंदन शिखर सम्मान २०१८', मथुरेशनंदन कुलश्रेष्ठ को 'स्पंदन भाषाविद् सम्मान', मीता सिंह को 'स्पंदन सशक्त महिला सम्मान', राखी हजेला को 'स्पंदन श्रेष्ठ पत्रकारिता सम्मान', रचना समंदर को 'स्पंदन श्रेष्ठ पत्रकारिता सम्मान', एस. भाग्यम शर्मा को 'स्पंदन स्वयंसिद्धा सम्मान', रेखा गुप्ता को 'स्पंदन युवा समीक्षक सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप सभी को प्रशस्ति-पत्र, शॉल, प्रतीक चिह्न, श्रीफल व सम्मान राशि भेंट की गई। इस अवसर पर 'साहित्य समर्था' त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका द्वारा अखिल भारतीय डॉ. कुमुद टिक्कू कहानी प्रतियोगिता के देशभर से आए ४१ प्रतिभागी साहित्यकारों को अलंकृत किया गया। मणिपाल यूनिवर्सिटी में इस आयोजन का संयोजन करने हेतु सर्वश्री कुसुम शर्मा, साद उल्ला खान, अपर्णा मक्कड़, सुदेश बत्रा को सम्मान राशि एवं प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. आशा शर्मा व डॉ. सुशीला शील ने किया तथा आभार श्रीमती माधुरी शास्त्री ने व्यक्त किया। ☐

डॉ. बानो सरताज सम्मानित

विगत दिनों अलवर में श्री सुमति कुमार जैन की अध्यक्षता में डॉ. बानो सरताज को उनकी साहित्य-सेवाओं के लिए 'श्रीमती उषा जैन स्मृति सम्मान' के अंतर्गत उन्हें नकद राशि, शॉल, श्रीफल एवं सम्मान चिह्न भेंट किया गया। मुख्य अतिथि श्री आनंद प्रकाश जैन एवं विशिष्ट अतिथि श्री श्याम देवपुरा थे। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

११ मार्च को मेरठ के कीर्ति सभागार में समकालीन महिला साहित्य मंच द्वारा सुश्री रश्मि अग्रवाल की अध्यक्षता में आयोजित 'अखिल भारतीय महिला साहित्य सम्मेलन' एवं 'महिला साहित्य सृजन सम्मान' समारोह में लगभग तीस से अधिक कवयित्रियों ने काव्यपाठ किया। मुख्य अतिथि डॉ. सुधा गुप्ता एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. एस.सी. नौगरैया व सुश्री ममता नौगरैया रहीं। इस अवसर पर निरुपमा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'महिला साहित्यकार भाग-5' एवं डॉ. स्वप्ना उप्रेती की कृति 'साहित्य समीक्षा : नए आयाम' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर

पर सुश्री नीलम देवी, कुसुमलता 'अविचल', मधु प्रधान, सुधा गोयल नवीन, जयश्री शिंदे, रंजना प्रकाश, विनीता परमार, रजनी सिंह, सुवर्णा अ. जाधव, शिवाली अग्रवाल, पूनम चौहान, सुमन चौधरी, सुनीता शर्मा, संध्या तिवारी, रानी सुमिता, सीमा शिव हरे 'सुमन', आशा शर्मा, अनिता एस. कर्पूर, स्वप्ना उप्रेती, मंजू यादव को 'महिला साहित्य सृजन सम्मान' से सम्मानित किया गया। समकालीन महिला साहित्य मंच की महासचिव सुश्री निरुपमा द्वारा 'महिला साहित्यकार निर्देशिका-२०१९' के प्रकाशन की घोषणा की गई। □

हास्य-व्यंग्य कवि सम्मेलन संपन्न

१३ मार्च को हैदराबाद के गांधी दर्शन मंडप के सभागृह में हिंदी लेखक संघ हैदराबाद की ५१९वीं मासिक साहित्य गोष्ठी का आयोजन हास्य-व्यंग्य कवि सम्मेलन के रूप में श्रीमती एलिजाबेथ कुरियन 'मोना' की अध्यक्षता एवं श्री बृहस्पति शर्मा के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री गोविंद अक्षय, लतीफुदीन 'लतीफ', फरीदुदीन सादिक, दयाकृष्ण गोयल, विजया बाला स्याल, चंद्रप्रकाश दायमा, अब्दुल हमीद खान, झापड़ शमशाबादी, एल. रंजना, सुषमा बैद, रत्नकला मिश्र, कुंज बिहारी गुप्ता, दिनेश अग्रवाल, रत्नकला मिश्र, कुमुद बाला, एलिजाबेथ कुरियन 'मोना' ने काव्य-पाठ किया। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद सुश्री रत्नकला मिश्र ने किया। □

व्याख्यानमाला आयोजित

२९-३० जनवरी को गोरखपुर के दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय में पंडित विद्यानिवास मिश्र द्वारा स्थापित श्रद्धानिधि न्यास द्वारा 'संचार साधन : जन-संवेदना एवं समाज' विषय पर केंद्रित 'पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी स्मृति व्याख्यानमाला' का दो दिवसीय आयोजन तीन सत्रों में क्रमश: सर्वश्री अनंत मिश्र, कृष्ण चंद्र लाल व रामदेव शुक्ल की अध्यक्षता में आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री अरुण कुमार त्रिपाठी, विजयकृष्ण सिंह, चितरंजन मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन सर्वश्री दीपक त्यागी, कमलेश गुप्ता व विमलेश मिश्र ने किया। २०-२१ फरवरी को प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के सहयोग से श्रद्धानिधि न्यास ने 'भारतीय कला और शिल्प' विषय पर केंद्रित 'आचार्य गोविंद चंद्र पांडेय स्मृति व्याख्यान' का आयोजन तीन सत्रों में किया गया, जिसके प्रथम और तृतीय सत्र की अध्यक्षता श्री दयानाथ त्रिपाठी तथा द्वितीय सत्र की अध्यक्षता श्रीमती विपला दूबे ने की। स्वागत श्री राजवंत साव एवं संयोजन श्री प्रज्ञा चतुर्वेदी ने किया। धन्यवाद श्री महेश्वर मिश्र ने ज्ञापित किया। २२-२३ फरवरी को 'आधुनिक दार्शनिक विमर्श : अध्यात्म एवं स्वतंत्रता की अवधारणा' विषय पर केंद्रित 'पं. प्रसिद्ध नारायण मिश्र स्मृति व्याख्यान' का दो दिवसीय आयोजन तीन सत्रों में क्रमश: सर्वश्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, करुणेश शुक्ल और रामदेव शुक्ल की अध्यक्षता में आयोजित किया गया, जिसमें स्वागत श्री डी.एन. यादव व संयोजन श्री सुशील कुमार त्रिपाठी ने किया। धन्यवाद श्री महेश्वर मिश्र ने ज्ञापित किया। □

अज्ञेय स्मरण समारोह संपन्न

७ मार्च को कुशीनगर के बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय में स्वनामधन्य साहित्यकार स्व. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के जन्मदिवस पर 'अज्ञेय भारतीय साहित्य संस्थान' द्वारा प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता में 'अज्ञेय स्मरण समारोह' आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री रामदेव शुक्ल, चितरंजन मिश्र एवं अनिल राय ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री कौस्तुभ नारायण मिश्र ने किया तथा धन्यवाद प्रो. महेश्वर मिश्र ने किया। □

संगोष्ठी संपन्न

४-५ मार्च को अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, जयपुर एवं राजस्थान साहित्य अकादमी के संयुक्त तत्त्वावधान में चैंबर्स ऑफ कॉमर्स जयपुर के सभागार में इक्कीसवीं शताब्दी के उपन्यासों पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन छह सत्रों में डॉ. इंदुशेखर 'तत्पुरुष' की अध्यक्षता एवं डॉ. के.एल. जैन के विशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। इस अवसर पर सर्वश्री अरुण भगत, संतोष परिहार, राजेंद्र भटनागर, भगवान अटलानी, आनंद शर्मा, जितेंद्र निर्मोही, दीप्ति कुलश्रेष्ठ ने अपने विचार व्यक्त किए। □

साहित्यिक क्षति

नहीं रहे व्यंग्यकार श्री सुशील सिद्धार्थ

१७ मार्च को मशहूर व्यंग्यकार श्री सुशील सिद्धार्थ का हार्ट अटैक से निधन हो गया। वे करीब ६० वर्ष के थे। दो जुलाई, १९५८ को सीतापुर के भरागांव में जनमे सुशील सिद्धार्थ अवधी हिंदी के रचनाकार थे। उन्होंने व्यंग्य, कविता और आलोचना के साथ किताब घर प्रकाशन में संपादन किया। उनकी प्रमुख कृतियाँ व्यंग्य-संग्रह प्रीति न करियो कोय, नारद की चिंता, मालिश महापुराण साहित्यप्रेमियों के बीच काफी चर्चित रहे। उन्हें साहित्यिक योगदान के लिए उ.प्र. हिंदी संस्थान से दो बार व्यंग्य, दो बार अवधी कविता के लिए नामित पुरस्कार और आलोचना के लिए स्पंदन सम्मान से सम्मानित किया गया।

श्री केदारनाथ सिंह नहीं रहे

१९ मार्च को सुप्रसिद्ध साहित्यकार केदारनाथ सिंह का निधन हो गया। उनका जन्म १ जुलाई, १९३४ में उ.प्र. के बलिया जिले के चकिया गाँव में हुआ था। उन्होंने बनारस विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. और पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा केंद्र में आचार्य और अध्यक्ष के रूप में काम किया। उनके आठ कविता-संग्रह, चार आलोचना एवं अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उन्होंने 'साखी' एवं 'शब्द' अनियतकालीन पत्रिकाओं का संपादन किया। उत्कृष्ट साहित्य-लेखन के लिए उन्हें मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, कुमारन आशान पुरस्कार, जीवन भारती सम्मान, दिनकर पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, व्यास सम्मान आदि से सम्मानित किया गया।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि।